टूटा टी-सेट

Library Sri Pratap College,
Srinagar.

अपने पक्ष-समर्थन में दैत्य भी शास्त्रों के प्रमाण दे सकता है।

—शेक्सपियर

Even the devil can quote Scriptures.

—*Shakespeare*

टूटा टी-सेट

प्रवृत्तिवादी सामाजिक उपन्यास

Library Sri Pratap College,
Srinagar.

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

भारतीय ग्रन्थ निकेतन

दिल्ली-६

सूची-पत्रक

वाजपेयी, भगवतीप्रसाद, १८९९-

टूटा टी-सेट. द्वितीय संस्करण.

दिल्ली, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, १९६५.

१९९ पृ. १९ सेंमी.

प्रवृत्तिवादी सामाजिक उपन्यास.

१. आख्या.

891.433 0152,3M99 भा. ग्रं. नि. ३.

Accession Number.....22509

Cost......... Class No....................

द्वितीय संस्करण : १९६५

Library Sri Pratap College,
Srinagar.

मूल्य : ४.००

आवरण शिल्पी : पाल बन्धु

प्रकाशक : ©भारतीय ग्रन्थ निकेतन,
१३३, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-६

मुद्रक : राष्ट्र भारती प्रेस, कूचा चेलान, दिल्ली

Tuta ti set by Bhgavatiprasad Vajapeyi, 1899- 4.00

१

उसका नाम तो था नीलकमल, किन्तु घर के लोग उसे नीलू कहते। उसकी आँखें सदा कुछ पढ़ती-सी जान पड़तीं। यों वह बहुधा मौन रहती, किन्तु सामने आ जाने पर अगर कोई बात कहती, तो मुस्करा पहले देती।

अरुण को उसकी अनेक बातें पसन्द थीं; किन्तु उसकी दृष्टि में उसका कथन से पूर्व इस तरह मुसकराना तो कुछ अनुपम लगता था। कभी बाहर से आता हुआ उसे जो प्रियम्वदा के पास बैठा देखता, तो उसको बड़ी प्रसन्नता होती। कुछ उस प्रकार की, जो तन-मन को पुलकित तो करती है, पर कहने में नहीं आ पाती। अरुण बहुत चाहता कि वह थोड़ी देर तो वहाँ बैठी रहे; पर तब तक श्यामबाबू की पुकार ऊपर फट पड़ती—'नीलू! नीलू!!' अगर कहीं किसी ओर से कोई उत्तर न मिलता, तो श्यामबाबू बोल उठते—"कहाँ मर गयी!"

अरुण श्यामबाबू का इस तरह चीखना-चिल्लाना बिल्कुल पसन्द न करता था। लेकिन उन पर उसका कोई वश तो था नहीं। बेचारा मन मसोसकर रह जाता। अगर कभी प्रतिक्रिया में कुछ कहना भी चाहता, तो न कह पाता; क्योंकि तब तक नीलकमल उठकर चल देती।

बहुत दिनों तक वह समझ नहीं सका कि नीलकमल उससे इतना संकोच क्यों करती है! उसकी मान्यता थी कि मन के बहुतेरे संकल्प-विकल्प अपने आप स्पष्ट होते रहते हैं। उनके सम्बन्ध में किसी से कुछ पूछना कभी-कभी अप्रत्याशित आशंकाओं का आधार बन जाता है। इसलिए वह प्रियम्वदा से भी कुछ कहना नहीं चाहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि वह नीलकमल को सदा ध्यान से देखने लगा।

एक दिन की बात है, घर के अन्दर प्रवेश करते ही नीलकमल जो उठकर जाने लगी, तो वह बिना बोले न रह सका—"क्यों, बैठो न !"

नीलकमल ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"पापा के आने का वक्त हो गया। उनके लिए नाश्ता बनाना है।"

उत्तर में अरुण कुछ कह तो न सका, पर उसे एकटक देखता रह गया।

—इसकी नासिका कितनी सुन्दर है ! नयन तो बिना बोले बहुत कुछ कह देते हैं ! और अधरों के सन्धि-स्थल पर बायीं ओर का यह तिल !

फिर जब नीलकमल द्वार की ओर चल दी, तो अरुण ने देखा—'माँग एकदम सीधी है, कटार की धार-सी। और कानों के नीचे छल्ले बनाते से ये लोम ?'

अरुण की पलकें एक बार उठकर रह गयीं।

फलतः प्रियम्वदा बोल उठी—"बात क्या है ? कुछ कहना चाहते हो, तो बुला ही न लाऊँ नीलू को !"

अरुण तब कल्पना-जगत से उतरकर ठोस धरती पर आ गया। बाण-विद्ध होने पर भी कुछ सँभलता हुआ बोला—"तुम मुझे बहुत गलत समझ रही हो रानी ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि गति की प्रत्येक स्थिति के साथ मनोभावों का घनिष्ट सम्बन्ध होता है और संगीत तो उस सम्बन्ध को अपना एक निश्चित स्वर देता है।"

इतने में सुरेश अरुण के पैरों से लिपट गया। उसे गोद में लेकर अपना प्यार देता हुआ अरुण बोला—"प्रत्येक प्रकार के प्यार के लिए हमें संगीत के स्वर की कल्पना करनी पड़ती है।"

अरुण क्या कह रहा है, प्रियम्वदा कुछ समझ तो न सकी; किन्तु विस्मित होकर बोली—"तुम्हारी बहुतेरी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। फिर भी इतना मैं जानती हूँ कि नीलू को अभी तुम किस तरह देख रहे थे। जब कभी तुम उसे इस तरह देखने लगते हो, तब मुझे न जाने कैसा लगता है।"

"अच्छा नहीं लगता ?" अरुण ने हँसते हुए पूछा।

"अच्छा-बुरा मैं क्या जानूं ! हाँ, कुछ अनोखा लगता है। कुछ वैसा जिसकी मैं तुमसे आशा नहीं करती।"

"यही सन्देह नारी की दुर्बलता है।" अपने ही उत्तर के साथ अरुण विचार में पड़ गया। वह सोचने लगा—"और नीलकमल को सदा देखते रहने की कामना क्या है ?' पर एक क्षण को भी उसका यह विचार स्थिर न रह सका। तब वह सुरेश को फ़र्श पर उतारते हुए बोला—"वस्तुओं को समझने की चेष्टा में बुराई देखना सर्वथा अनुचित है। मान लो, नीलू को तुम्हारा यह सन्देह मालूम हो जाय, तो ज़रा सोचो, मेरी स्थिति क्या होगी !"

"पर नीलू से तो मैंने कुछ कहा नहीं। शायद कह भी नहीं सकती।"

प्रियम्वदा ने सुरेश के सिर को साड़ी के आंचल से ढक लिया। फिर उसे गोद में सम्हालते हुए उत्तर दिया—"और तुमने भी सिर्फ़ इसलिए कह दिया कि नीलू को ससुराल के लोग भी ले नहीं जाते। कुछ तो बात होगी, जो उसका स्वामी उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं होता !"

"कहोगी नहीं यह मैं जानता हूँ; किन्तु उपेक्षा के भाव संदर्भ पाकर जब चोट करेंगे तो नीलू को समझते देर ही कितनी लगेगी ! मैं नहीं चाहता कि मेरे साथ-साथ वह तुम्हें भी असभ्य और विवेकहीन समझे। तुम्हारे उत्तर का अन्तिम चरण इस बात का साक्षी है कि तुम भी इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए बेचैन हो।"

फिर बात आयी-गयी हो गयी।

सच पूछो तो नीलकमल के साथ अरुण का कोई नाता न था। पड़ोस में रहने के कारण वह कभी जो समक्ष आ जाती, तो उसके सम्बन्ध में वह अपने आप कुछ सोचने लगता। पास से निकलती हुई वह कभी उससे बोली न हो, ऐसा कम हुआ है। यदि और कुछ नहीं कहा तो मुसकराकर इतना तो कह ही दिया है—"ज़रा पोस्ट आफ़िस तक जा रही हूँ।"

कभी और कुछ नहीं सूझ पड़ा है, तो निकट से निकलती हुई इतना ही कहकर चली गयी है कि आज धूप बहुत तेज है।

एक दिन कुछ ऐसा हुआ कि नीलकमल मुख्य द्वार के दायें कपाट पर हाथ रक्खे हुए कुछ विचारमग्न-सी खड़ी थी। उसकी हलके हरे रंग की साड़ी में जो सिकुड़नें थीं; उनमें भी एक क्रम बोलता था। उसी रंग से मिलता हुआ चुस्त ब्लाउज़ उसका दीप्ति की कुछ ऐसी अभिनव झलक दे गया था कि अरुण की दृष्टि उस पर जा पड़ी। अकस्मात् उसे सामने से आता हुआ देखकर नीलकमल की पलकें विनत हो गयीं। उसी द्वार से अरुण को अन्दर जाना था। निकलने में सुविधा उत्पन्न कर देने के विचार से नीलकमल एक ओर हटकर, सिमिटकर दीवार से चिपक-सी गयी। फलतः आगे बढ़ता हुआ अरुण सोचने लगा—'आज नीलू कुछ अधिक गम्भीर है। बल्कि कुछ रहस्यमयी-सी जान पड़ती है।'

तब वहीं ठिठककर अरुण ने पूछा—"तबियत कुछ गड़बड़ है क्या?"

नीलकमल ने उसी सहज मुसकराहट के साथ उत्तर दिया—"नहीं तो। योंही खड़ी हो गयी। पोस्टमैन इसी वक्त आता है। सोचा—शायद कोई पत्र आता हो!"

अरुण ने लक्ष्य किया—उत्तर समाप्त होते-होते नीलकमल पुनः गम्भीर हो गयी है।

अब अरुण को स्मरण आ गया—'धीरे-धीरे वर्ष पूरा हो रहा है। ससुराल से न कोई लिवाने आता है, न पत्र का उत्तर देता है।'

फिर वह विचार में पड़ गया—'एक बार विश्वास खो देने के बाद ऐसा ही होता है!'

अन्दर जाकर उसने सुरेश को गोद में लेकर उसे अपना प्यार दिया, फिर प्रियम्वदा के पास बैठकर कह दिया—"आज बड़ी प्रसन्न जान पड़ती हो रानी!"

"मैं उदास ही कब होती हूँ?"

"होती तो हो। इतनी जल्दी भूल गयीं! उस दिन क्या हो गया

था, जब मैंने नीलू की ओर ज़रा-सा देखा भर था ?"

"उहँ ! तुम बड़े वो हो। जो बात हुई, हो गयी। उस पर इतनी छान-बीन की ज़रूरत ही क्या है ?"

"आज अभी मिली थी नीलू।"

"कहाँ ?"

"सदर फाटक पर।"

"तब तो कुछ बातें भी हुई होंगी।"

"हुई तो थीं।"

"सच-सच बताओ, क्या बातें हुईं ?"

"मैंने उससे कह दिया—मेरे घर मत आया करो। प्रियम्वदा बुरा मानती है।"

"हाय राम ! यह तुमने उससे क्या कह दिया ! अब ?" अवाक् होकर प्रियम्वदा सोच में पड़ गयी।

तब अरुण हंसने लगा। बोला—"अब तो तीर छूट ही गया !... पर इसमें चिन्ता की क्या बात है ? तुम्हारी इच्छा भी यही थी।"

"मेरी इच्छा-अनिच्छा का इसमें प्रश्न ही नहीं उठता। कोई कुछ कहे, नीलू बड़ी अच्छी लगती है मुझे। बड़ी सीधी और सच्ची, छल-कपट से दूर। गरीबी के दिन ठहरे, वरना उसे कमी ही क्या थी !"

प्रियम्वदा वास्तव में नीलकमल से प्रीति रखती थी। द्विविधा उसमें अगर कुछ थी, तो इतनी ही कि जिन स्थितियों से वह गुजर रही थी, उनमें अरुण के साथ वह किसी प्रकार का सम्पर्क होते देख न सकती थी। एक आशंका सदा उसके मन में बनी रहती। कहीं ये उसको अपनी पिक्चर में 'प्लेबैक' का चान्स न दिलवा दें ! यद्यपि वह जानती थी, नीलू को संगीत नहीं आता। फिर भी वह मानती थी कि प्रयत्न करने से सब कुछ हो सकता है। बहुतेरी लड़कियाँ शुरू-शुरू में बड़ी बोदी लगती हैं। पर कुछ ही दिनों के बाद वे थोड़ा-थोड़ा गाने लगती हैं। फिर अभ्यास बढ़ाती-बढ़ाती एक दिन आर्टिस्ट बन जाती हैं।

अब सुरेश की आँखें झपने लगी थीं। प्रियम्वदा ने उसे पालने में लिटाकर सुला दिया। वह स्टोव जलाने जा ही रही थी कि अरुण ने सिगरेट का एक कश लेकर उसका सारा धुआँ प्रियम्वदा के मुख पर उड़ेल दिया !

प्रियम्वदा नाक-भौं सिकोड़ती हुई बोली—"हटो, शैतानी मत करो मुझसे। पहले तुम्हें चाय बना दूं, फिर जरा नीलू के यहाँ हो आऊँ। तुम यहीं रहना। भैया कहीं जग न जाये। वैसे अभी दो घंटे तक तो जगेगा नहीं।"

अरुण ने मुसकराते हुए कह दिया—"अरे, मैं तो तुम्हारा मन ले रहा था; वास्तव में नीलू से मैंने कोई बात नहीं की।"

प्रियम्वदा हँस पड़ी। बोली—"सचमुच ?"

अरुण ने चश्मा उतारते हुए उत्तर दिया—"रानी तुम इतना भी नहीं समझतीं कि ऐसी बात भला मेरे मुंह से निकल भी सकती है !"

"हाँ, यही मैं भी सोच रही थी कि तुम्हारे मुंह से ऐसी बात निकली कैसे होगी !···चलो यह बड़ा अच्छा किया तुमने। मैं तो बड़ी चिन्ता में पड़ गयी थी।"

"तो अब इसी बात पर शपथ लो कि मुझ पर कभी सन्देह न करोगी।"

"शपथ-वपथ मैं नहीं लेती। न मैं तुम पर सन्देह ही करती हूँ। उस दिन की बात दूसरी थी।"

अरुण तब सरोद बजाने बैठ गया।

नित्य वह स्टूडियो से लौटकर इसी प्रकार सरोद लेकर बैठ जाता। यहाँ तक कि कभी-कभी रात के दो बजा देता। प्रत्येक झंकार में वह अनुभव करता—वह उसे पुलक-स्पन्दन दे रही है। अँगुलियों से जब वह तारों को छूता, तब उसे प्रतीत होता—यह मैं नीलकमल की पलकें चूम रहा हूँ।

उन घड़ियों में उसका लोम-लोम सिहर उठता। जब वह नितान्त विह्वल हो उठता, तब वहीं उसी तखत पर पार्श्व में सरोद रखकर सिर के नीचे तकिया लगाकर पलकें बन्द कर लेता। कभी-कभी तो स्वप्न में नील-कमल उसे सिरहाने बैठी जान पड़ती। कान के पास उसके कथन का

स्वर आने लगता—'आज बड़ी देर कर दी।'

तत्काल वह उठकर बैठ जाता। बत्ती का स्विच उसके पास लट्टू के रूप में लटकता रहता। झट उसे दबाकर बत्ती जला देता। जब कहीं कोई न देख पड़ता, तो फिर बत्ती बुझाकर लेट रहता।

उधर नीलकमल इन झंकारों को सुनकर करवटें बदलती रहती। भावना में वह इतनी डूब जाती कि कभी-कभी उसकी आँखें भर आतीं।

अरुण इन सभी प्रकार की पीड़ाओं की अलग-अलग अभिव्यक्ति करता, उनकी पृथक्-पृथक् स्वर-सर्जना में वह लीन हो जाता। उसकी यह प्रक्रिया एक साधना का रूप धारण कर रही थी। यहाँ तक कि नील-कमल को उसके विषय में कुछ-न-कुछ कहना ही पड़ जाता। एक दिन जब वह बरामदे में छज्जे के खम्भे के निकट खड़ी थी, अरुण पर दृष्टि पड़ते ही बोल उठी—"आज तो बड़ी रात तक मुझे नींद ही नहीं आयी।"

"क्यों?" अरुण ने प्रश्न तो कर दिया, पर उसे प्रतीत यही हुआ कि जैसे उसने पहले बिजली का बटन दबाकर फिर बुझा दिया हो।

नीलकमल बोली—"मैं यही सोचती रही कि कौन जाने, मृत्यु के क्षण ये स्वर सुनने को मिलेंगे या नहीं!"

एकाएक अरुण मर्माहत हो उठा। उसके उत्तर से उसने ऐसे आत्मीय प्रतिदान की कल्पना भी न की थी।

तभी नीलकमल ने कह दिया—"अच्छा, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जब मैं मरने लगूँ, तब तुम मेरे सिरहाने बैठकर यही झंकारें गुंजित कर देना। मैं पास रहूँ चाहे दूर!"

अरुण अब चुप न रह सका। बोला—"मैं तो नहीं, पर एक चीज जरूर ऐसी है, जो तुम्हारी यह आशा पूर्ण कर सकती है।"

"कौन-सी?" उत्सुक वाणी में नीलकमल ने पूछा।

अरुण ने कह दिया—"विद्रोह! अपने नव-निर्माण में अगर तुम वर्तमान के साथ विद्रोह कर सको, तो तुम्हारी यह कामना पूर्ण हो सकती है"

अरुण ने अनुभव किया—नीलकमल निःश्वास ले रही है!

२

तीसरे महले पर कुल मिलाकर चौदह फ्लैट थे। बरामदे के आगे कमर तक ऊँची मुंडेर थी, जिनके बीच-बीच में खम्भे थे। खम्भों के ऊपर बीच-बीच में कटाव और नक्काशीदार तख्ते, जिन पर गहरा हरा रँग किया हुआ था। इसी प्रकार का रँग खम्भों और दीवारों पर भी था। नित्य सवेरे चार बजे पाइप आ जाता। तीन घण्टे ठहरता और सात बजते-बजते चला जाता। पाँच से छः के बीच में दूध देनेवाला भैया आता। कभी-कभी जब किसी कमरे का द्वार उसे भीतर से बन्द मिलता, तो वह दरवाज़ा खटखटाने लगता। पानी भरनेवालों में अधिकांश रूप में स्त्रियाँ होतीं। पाइप आते ही वे सब क्रमशः आती-जाती बनी रहतीं। कभी जब कोई अपना भरा हुआ हंडा उठाकर, उसके स्थान पर कोई दूसरा बर्तन रखकर चल देती, तब ऐसा भी होता कि उसकी अनुपस्थिति में दूसरी आकर उसका पहले का रक्खा आधा भरा बर्तन इधर-उधर खिसकाकर अपना बर्तन रख दिया करती। उसे भर लेने के बाद दूसरे का पूर्ववत् रखकर चल देती। यदि उसी समय पहले रक्खे हुए बर्तनवाली आ जाती, तो इस पर बड़ी चखचख मचती। यदि कोई कहती—"तुमने मेरा बर्तन छुआ क्यों?" तब उसे उत्तर मिलता—"अरे चल, बड़ी छुआछूत वाली बनी है। सब जानती हूँ मैं। अभी पोल खोल दूंगी तो सारी इज्जत धूल मे मिल जायेगी!"

स्त्रियों की लड़ाई में पुरुषों का बीच में पड़ना निषिद्ध था। इसलिये जब एक बार चाँव-चाँव शुरु हो जाती, तो उसे शान्त होने में घण्टा आध-घण्टा लग ही जाता था। बहुधा ऐसी स्थिति में इन स्त्रियों से

स्वामी समझा-बुझाकर उन्हें अपने घर लिवा लाते।

सूर्योदय होते-होते बरामदे के आगेवाली चौकोर मुंडेर पर रक्खी अंगीठियाँ पत्थर के कोयले का धुआँ उगलने लगतीं। जिस ओर हवा का रुख होता, धुआँ उसी ओर मुड़ जाता। परिणाम यह होता कि एक ही दिशा की ओर सारा धुआँ इकट्ठा होकर उस ओर के सभी कमरों में भर जाता। उनमें निवास करनेवाले स्त्री-पुरुष बाहर निकल-निकलकर एक दूसरे को दोष देने लगते। सारा गृह-कार्य स्त्रियाँ करती थीं, इसलिए उपालम्भ की पात्री भी वही होती थीं।

शौचालय के पास नित्य ही प्रातःकाल एक क्यू लगा रहता। शौच के लिये जानेवाले लोग प्रतीक्षा में खड़े रहते। जिनको अपने आफ़िस जाने की जल्दी रहती वे अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना न रहते।

इन्हीं में एक थे भाग्यभाई करमभाई पटेल। बीड़ी पीते हुए जितनी देर वे खड़े रहते, किसी-न-किसी पर टीका-टिप्पणी जरूर करते—"ये अफ़ीमची है क्या ?"

सचमुच कुलकर्णी को आधा घण्टा तो लग ही जाता था।

इतने में बाबूभाई बोल उठाता—"आपको पता नहीं, यह मुर्गी-मेजर है। इसकी बीबी इसको ऐसी खरी-खोटी सुनाती है कि मेरा तो खून खौल उठता है। मगर यह इतना सरल है कि बेचारा सब सुन लेता है !"

तभी मुलगाँवकर कह देता—"अरे आपको पता क्या है ! यह इतना सीधा है कि बीबी की धोती खुद धोता है। एक दिन तो किसी ने इसको बीबी के पैर दाबते हुए देखा था !"

इसी क्षण यदि कोई बोल उठता—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता," तो मज़ा लेने के लिये कई लोग तर्क-वितर्क करने लगते।

उसकी इस बात पर कोई कह देता—"अपना-अपना भाग्य ठहरा। इसको कोई कैसे रोक सकता है ?"

इतने में अगर कहीं कुलकर्णी संडास से निकल पड़ता, तो कुछ लोग

एक स्वर से बोल पड़ते—'निकला, निकला !''

फिर सभी लोग एक साथ हँस पड़ते ।

तभी बीड़ी फेंकते हुए, ऊपर की ओर मुंह उठाकर पटेल साहब बोल उठते—"हँफ़ो-हँफ़ो, फव लोग हँफ़ो !"

इस तरह अन्त में जब सब लोग अट्टहास कर उठते, तभी पटेल साहब शौचालय के अन्दर प्रविष्ट हो जाते ।

अरुण के बाँयी ओर शान्तिबाई और उसके बाद प्रीतिलता रहती थीं । एक दिन कहीं शान्तिबाई प्रीतिलता के पास आकर बोली—"यह बड़ी बेजा बात है कि तुम्हारी अंगीठी का सारा धुआँ मेरे कमरे में भर जाता है । समझ गयी कि नहीं ?"

प्रीतिलता को मनोविनोद के नये-नये प्रयोग करने में विशेष आनन्द आता था । सहसा उसके मुंह से निकल गया—"चाची यह तो हवा की बात है । जिधर को चली, चल गयी ।"

"तुम साफ्टकोक क्यों नहीं इस्तेमाल करती ?" शान्तिबाई बोल उठीं—"समझ गयी कि नहीं ?"

प्रीतिलता बोली—"वह महँगा बहुत है ।"

अपनी समझ से उसने ऐसा उत्तर दिया था, जो निम्न-मध्यवर्ग की दृष्टि से सर्वथा ग्राह्य था । पर शान्तिबाई को अपनी व्यावसायिक शक्ति का कुछ गर्व रहता था । दो-चार सौ रुपये सहज ही उड़ जाने में उसे विशेष चिन्ता न होती थी । फिर ऐंठकर बात करने की आदत भी उसे पड़ गयी थी । इसके सिवा कल ही उसने नीलम का नग अपनी एक अँगूठी में जड़वाया था । अतः उसने कह डाला—"महँगी चीजें नहीं खरीद सकती, तो यहाँ गुजर न होगी । जो हमारे माफ़िक नहीं रहता, हम उसे निकालकर पानी पीती हैं । समझ गयी कि नहीं ? आइन्दा फिर कभी ऐसा धुआं हमारे कमरे में आया, तो मुझसे बुरा कोई न होगा !"

शान्तिबाई समझती थीं—इसके बाद तो अब यह मेरी धौंस में आ ही जायगी । कुछ-कुछ उसे नील के प्रभाव का भी भरोसा था । पर

प्रीतिलता को ऐसे अवसरों पर विपक्षी को धराशायी करने में मज़ा आता था। अतः उसने हाथ फटकारते हुए उत्तर दिया—"अरे चलो! बड़ी सेठानी बनती हो। फ्लैट मुफ्त में नहीं लिया है। दो हज़ार पिये बैठी हो। छप्पन चूहे खाय बिलैदो चली हज्ज को।"

शान्तिबाई को प्रीतिलता से ऐसी आशा न थी। फिर आज जो कहीं उसकी हेठी हो गयी, तो यह नीलम जड़वाना बेकार हो जायगा। अतः उसने बिना आगे बढ़े रहाई न हुई। दाँत किटकिटाती हुई वह आगे बढ़ गयी और हाथ बढ़ाकर उसने प्रीतिलता की दो चोटियों में से एक को झटकते हुए कह दिया—"क्या कहा, फिर तो कहना!"

प्रीतिलता ऐसे अवसरों पर चूकती न थी। उसने आव गिना न ताव, शान्तिबाई की कनपटी पर दो तमाचे जड़ दिये, तड़ातड़! साथ ही वह बोल उठी—"ले! और लेगी? कहती है—यहाँ गुज़र न होगी। गुज़र किसी के अहसान से होती है! कहने लगी—जो हमारे माफ़िक नहीं रहता, हम उसे निकाल के पानी पीती हैं! तू मुझे निकालेगी घर से! अरे मैं तेरी नथुनी न उतरवा दूं, तो मेरा नाम प्रीति नहीं। तूने मुझे समझा क्या है! तुझे अभी पता नहीं है कि प्रीति क्या-क्या कर सकती है!"

मकान भर में हंगामा मच गया। चारों ओर से एक साथ लोग बोल उठे—"सेठानी पिट गयी, पिट गयी!" अनेक स्त्रियाँ इधर-उधर से दौड़ पड़ीं।

किसी ने दूर से ही पूछा—"क्या हुआ?" किसी ने निकट आकर धीरे से प्रश्न कर दिया—"शुरुआत कैसे हुई?"

शान्तिबाई ने तब तक अपने बायें हाथ की अनामिका से अंगूठी उतार कर अन्टी में कर ली थी। वह अब रो रही थी। सिसकियाँ लेती-लेती वह सोच रही थी—'मैं ऐसी गलती कभी नहीं करती, जिससे मुझे बाद में पछताना पड़े। सारा दोष नीलम का है। मगर अब पिट जाने की बात फैलाने से तो कोई फ़ायदा है नहीं।'

तब उसने उत्तर दिया—"अरे बात में कुछ दम भी हो बहिन ! मैंने यों ही कुछ कह दिया, तो यह प्रीति उसका बुरा मान गयी। मैंने इसकी चोटी ज़रा-सी छू ली, तो इसने मुझे धक्का दे दिया ! बस, इतनी बात है।"

द्वादशी ने पूछा—"कहीं लग तो नहीं गया ?"

शान्तिबाई सोच रही थी—'लगा तो बहुत है। लगता है जैसे कनपटी में नहीं, छाती में किसी ने लात मार दी हो ! लेकिन फिर कहने से फ़ायदा ? अपनी इज्जत अपने हाथ।'

शोरगुल सुनकर नीलकमल जब अपने दरवाज़े पर आयी, तब प्रीतिलता को उसका स्वामी घर के भीतर लिवा लाया और तुरन्त चाय का बंडल लाने चला गया।

नीलकमल उसके निकट पहुँचते ही बोली—"यह बड़ा अच्छा हुआ। तुमने तो वह काम किया है, जो इस मकान में आज तक कोई किरायेदार नहीं कर सका !"

प्रीति कुछ तन्वंगी तो थी ही, साथ ही वर्ण भी उसका गेहुआँ था। अवस्था में वह नीलकमल से केवल तीन दिन छोटी थी। बोली—"दीदी, सच्ची बात यह है कि मनुष्य को, वह चाहे जितना साधारण हो, मैं कभी हीन नहीं मानती। लेकिन अगर वह असाधारण हो, तो केवल ऐश्वर्य के कारण मैं उसे बड़ा भी नहीं मानती। इसने जब मेरे स्वाभिमान पर चोट की, तब मैं भी अपने को रोक न सकी !"

नीलकमल को प्रीति की यह बात बड़ी प्यारी लगी। वह सोचने लगी कि साहस में यह मुझसे बढ़कर है। यही कारण है कि तेजस्विता की भूमि पर आकर इसका सौन्दर्य्य खिल उठता है। अतः उसका मर्म जानने के लिए उसने प्रश्न कर दिया—"एक तुम नहीं, सभी किरायेदारों को इससे यही शिकायत रही है। लेकिन इसने कहा क्या था तुमसे ?"

प्रीति ने सब कुछ बतलाते हुए अन्त में कह दिया—"मुझे अब दुःख इसी बात का हो रहा है कि इस पर मेरा हाथ कैसे उठ गया ! सच

पूछो तो बात का जवाब मुझे बात ही से देना चाहिये था।"

अब भीड़ छँट गयी थी और शान्तिबाई के आसपास की नारियाँ उसे उसी के घर लिवाये जा रही थीं।

द्वादशी कह रही थी—"अब जमाना बदल गया है बहिन। समय देखकर ही चलना ठीक होता है। वैसे प्रीति समझदार बहू है। उससे ऐसी शिकायत कभी सुनी नहीं गयी।"

इतने में दूसरी बोल उठी—"खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ बहिन, तुम इसका कुछ बुरा मत मानना। मैं उसे समझा दूंगी।"

शान्तिबाई अब अनुभव कर रही थी—'यहाँ सभी स्त्रियाँ उसी वर्ग की हैं, जो किरायेदारों का है। घुमा-फिराकर वे अपना ही पक्ष ऊँचा रखना चाहती हैं।'

घंटे भर बाद शान्तिबाई जो अपने दरवाज़े पर दिखाई पड़ी तो प्रीतिलता और नीलकमल ने उसे घेर लिया। प्रीतिलता बोली—"चाची, एक दूसरे को समझने में सबसे भूल हो जाती है। जैसे तुमसे हुई, वैसे मुझसे हो गयी। लेकिन मैं यह कैसे भूल सकती हूँ कि तुम मुझसे सब तरह से बड़ी हो और बड़े तो सदा से छोटों को क्षमा करते आये हैं। मुझे आशा है, तुम भी मुझे क्षमा कर दोगी।"

शान्तिबाई प्रीतिलता की यह बात सुनकर आश्चर्य में पड़ गयी। एक बार तो वह यह भी सोचने लगी कि हो-न-हो, नीलकमल ने ही इसे समझा-बुझाकर इस तरह संधि कर लेने को राजी कर लिया है। तभी नीलकमल ने भी कह दिया—"हाँ, बुआ, इसी में तुम्हारा बड़प्पन है। आओ चलो, प्रीति ने तुम्हारे लिये चाय बना रक्खी है।"

संतप्त शान्तिबाई बोली—"मुझको अब किसी के यहाँ मत ले चलो। बहुत हो चुका। इतना अपमान हो जाने के बाद···।" कहती-कहती वह रो पड़ी!

प्रीति हार्दिकता की बातें करने में भी कुशल थी। उत्तजित हो जाने पर वह जितनी भयानक हो उठती, गम्भीर और शान्त हो जाने के बाद,

वह प्रतिपक्षी की संस्तुति भी उसी सीमा तक कर लेती थी।

बार-बार प्रीति सोचने लगती—'यह कितने ग्राश्चर्य की बात है कि ग्रन्त में भी सेठानी ने द्वादशी चाची से मेरी कोई शिकायत नहीं की। क्रोध के स्थान पर हार्दिकता की वाणी में उसने कह दिया था—'ग्ररे बात में कुछ दम भी हो बहिन !'

क्या ग्रहंकारी व्यक्ति, एक बार भली-भाँति ग्रपमानित हो जाने पर, इसी भाँति लच जाता है ? या ग्रवसरवादी की ही यह एक स्थिति है ?

ग्रब प्रीतिलता ने कह दिया—"चाची, मान तो सबका एक-सा होता है। फिर बड़े ग्रादमी ग्रगर क्षमा नहीं करेंगे, उदार नहीं बनेंगे, तो छोटे जियेंगे कैसे ? रह गयी बात ग्रपमान का बदला लेने की; सो ग्रब तुम मुझे चाहे जितना मार लो, मैं चूं करूँ तो मेरा नाम प्रीति नहीं।"

शालीनता बड़ी-से-बड़ी ग्रवमानना को बात-की-बात में धो-पोंछकर स्वच्छ कर देती है।

शान्तिबाई ने ग्राँसू पोंछ डाले। होठों पर मुसकान लाती हुई ग्रन्त में वह बोली—"तू बड़ी शैतान हो गई है प्रीति !"

नयन नचाती हुई प्रीति एकदम से चिल्ला उठी—"बच गयी, बच गयी; चाची मैं सचमुच बच गयी। वरना मैं डर बहुत गयी थी। रह-रहकर यही मन में जाता था कि कहीं मर तो नहीं गयी !"

शान्तिबाई हँसने लगीं। बोली—"शैतान कभी मरता है ! तू भी कभी नहीं मरेगी।"

नीलकमल बोली—"तो चलो बुग्रा ! ग्रब इस शैतान के यहाँ की चाय पी ही ली जाय ! हाँ-हाँ चलो; ग्ररे ग्रब तो चलो !"

इस प्रकार शान्तिबाई को प्रीतिलता के यहाँ जाना ही पड़ा।

शान्तिबाई ग्रौर नीलकमल के सामने प्याले रखती हुई प्रीति बोली—"चीनी तो ग्रपनी-ग्रपनी तबियत की, एँ ?"

नीलकमल ने उत्तर में कह दिया—"एक चीनी ही क्यों दुनिया की सारी बातें तबियत पर ही निर्भर हैं।"

प्रीति मुसकराने लगी। टेबिल पर भजिया की तश्तरियां लगाती हुई झट से बोली—"और प्रीति पर नहीं ? तुम्हारा क्या खयाल है चाची?"

शान्तिबाई विचार में पड़ गयी। यद्यपि प्रीतिलता का इस तरह बोल उठना अब भी उसके मर्म को छेड़ता-सा जान पड़ता था। लेकिन वह यह भी अनुभव कर रही थी कि प्रीति मन-ही-मन लज्जित जान पड़ती है !

नीलकमल अपने प्याले में चम्मच डालकर उसकी चीनी घोलती हुई बोली—"प्रीति भी तबियत से ही होती है। कभी-कभी छोटी-सी पहचान छोटा-मोटा उलाहना, यहां तक कि छोटा-मोटा संघर्ष भी प्रीति उत्पन्न कर देता और फिर उसी में विलय हो जाता है।"

यद्यपि शान्तिबाई को ये सब बातें कृत्रिम जान पड़ रही थीं, लेकिन वह सोचती थी—'फिर और चारा क्या है ? आदमी समाज से अलग होकर रह ही कैसे सकता है ?'

तभी प्रीति ने कह दिया—"तब तो यह बात मेरे ही पक्ष में जा रही है चाची। देखती हूं तुमसे प्रीति किये बिना मेरा तो निर्वाह ही नहीं हो सकता।"

बात कुछ और गंभीर हो गयी थी। इसलिये प्रीति ने कुछ और आगे बढ़कर कह दिया—"मैंने तो यह तै कर लिया है कि अब चाची मुझे चाहे जो कुछ कह लें, मैं कभी बुरा नहीं मानूंगी।...अरे कुछ खाती भी जाओ चाची। ऐसी भी क्या बात है ! भजिया कुछ अच्छी नहीं लगी ?"

नीलकमल अनुभव कर रही थी कि उसमें हरी मिर्च बहुत तीखे प्रकार की पड़ी है और उसकी मात्रा भी कुछ अधिक है। इसलिए अवसर देखकर हँसते-हँसते उसने कह दिया—"मिर्च कुछ कम पड़ी है, क्यों बुआ ?"

शान्तिबाई बोलीं—"लगता है प्रीति ने तुझे भी अपनी शैतानी सिखा दी है !"

शान्तिबाई के इस कथन से भी रस की फुहार ग्रहण करती, मुंह पर रूमाल रखे हँसती-हँसती नीलकमल बोली—"यह शैतानी क्या बला होती है चाची ?"

अब सब कुछ भूलकर शान्तिबाई को अपना अतीत स्मरण हो आया। एकदम से वह हँस पड़ीं। बोलीं—"बला होती है कि कला, यह तो मैं नहीं कह सकती। लेकिन इतना जानती हूँ कि जब तक बच्चे नहीं होते, तब तक तुम जैसी जवान बहू-बेटियों की शैतानी कम नहीं होती।"

भजिया की मिर्च दाँत के नीचे कच्च से काटती हुई प्रीति ने मुँह बनाते हुए कहा—"ऊँ हूँ। बात में कुछ मजा नहीं आया। क्योंकि सच पूछो तो शैतानी जिसमें होती है, उसमें वृद्धावस्था तक चलती है। हमारी सास की एक मामी थीं। बीस वर्षों में सब मिलकर उनके ग्यारह बच्चे हुए। छप्पन वर्ष की होने पर भी वे बहुत चुस्त कंचुकी धारण करती थीं—और तब तक उनका एक दाँत भी नहीं गिरा था!"

नीलकमल ने अपना प्याला समाप्त करते हुए कह दिया—"कुछ स्थूल रही होंगी!"

शान्तिबाई शरीर से कुछ ठिगनी तो थीं ही, स्थूलकाय भी थीं। जिनकी चर्चा प्रीतिलता कर रही थी, उनका शरीर शान्तिबाई से कुछ मिलता-जुलता भी था। प्रीतिलता ने सोचा, अगर इस अवसर पर मैं सच्ची-सच्ची बात कह दूंगी, तो उसका प्रभाव शान्तिबाई पर मेरे पक्ष में और भी बुरा हो जायगा। अतएव उसने वास्तविकता को छिपाते हुए उत्तर दिया—"तुम्हारा अंदाज यों अक्सर सही उतरता है। लेकिन इस समय न जाने क्यों वह बिल्कुल गलत निकला! वे ऐसी कुछ अधिक स्थूल तो न थीं, पर उनकी आँखें तेरी जैसी ही काफी बड़ी थीं। फिर भी सुरमा लगाये बिना उन्हें संतोष न होता था! उनकी मान्यताएँ भी कुछ अजीब थीं। उनका कहना था कि सच्चा प्यार उसी को मिलता है, जिसके नयन बाण चलाने में कुशल होते हैं!"

प्रीति की इस बात पर शान्तिबाई हँस पड़ीं और बोलीं—"तेरी हर बात शैतानी से भरी होती है!"

मगर नीलकमल कुछ अनमनी हो गयी। यहाँ तक कि उसकी आँखें डबडबा आयीं। प्रीति उसकी ओर देखती-देखती विचार में पड़ गयी

एक बार तो उसके मन में यह भी आया कि मैं ऐसा कुछ नहीं जानती थी।"

तब तक शान्तिबाई बोल पड़ीं—"रो मत नीलू। भगवान को एक दिन तेरी याद जरूर आयेगी।"

चायपान समाप्त हो चुका था। नीलकमल आँसू पोंछती हुई उठ खड़ी हुई और शान्तिबाई भी चलने को उद्यत हो गयीं।

इसी समय प्रीति ने नीलकमल की ओर उन्मुख होकर कह दिया—"सुनती हूं, चाची रमी बहुत अच्छा खेलती हैं।"

शान्तिबाई बोली—"अब और कुछ नहीं। यों ही काफी देर हो गयी है।"

अवसर देखकर प्रीति ने कह दिया—'तो फिर शाम को तै रही।"

"शाम को? अच्छा, मगर मेरे घर।" शान्तिबाई ने उत्तर दिया।

अब नीलकमल के साथ अपने फ्लैट की ओर बढ़ती हुई शांतिबाई सोच रही थीं—'घटना का प्रारम्भ तो अच्छा नहीं हुआ, लेकिन अन्त ऐसा कुछ बुरा भी नहीं हुआ। इन लड़कियों के बीच में बैठना कभी खलेगा नहीं।'

और नीलकमल सोच रही थी—'पहले दूसरों का परिहास, फिर अपने आँसू!'

Library Sri Pratap College Srinagar

३

पहली तारीख को छः दिन शेष थे। शाम को अरुण की माँ ने उससे कहा—"चीनी चुक गयी है और चाय का वण्डल भी कल खाली हो जायगा।"

अरुण बोला—"घर-गृहस्थी की यह स्थिति मुझे पसन्द नहीं। महीने में जितनी चीनी खर्च होती है, उससे सवाई-ड्योढ़ी एक बार लेकर रख देता हूँ, फिर भी वह महीने से पहले कैसे चुक जाती है? और चाय तो मैं पूरा एक किलोग्राम ले आया था। मेरी समझ में नहीं आता, चीनी और चाय इतनी जल्दी कैसे चुक गयी! जब कि मेरी मान्यता है कि तुम्हारे जैसे नपे-तुले ढंग से चलनेवाली माँ मिलना दुर्लभ है।"

उसकी माँ बोली—"बात यह हुई बेटा कि दो बार में आध-आध सेर चीनी सुशीला की अम्माँ उधार ले गयी थीं। मैं सोचती थी, ले जाने के दूसरे दिन, नहीं तो तीसरे दिन लौटा ही देंगी। लेकिन घर तो सभी एक से होते हैं; सुशीला के बाबू को भी तनखा तभी मिलेगी जब तुमको मिलती है।"

बात जहाँ की तहाँ समाप्त हो गयी। अरुण चीनी और चाय ले आया। पर रात को चारपाई पर लेटे-लेटे नीलकमल की सिसकियों के स्वर उसकी कल्पना के कर्णपट पर उतरने लगे। क्या ऐसी कोई बात है कि वह स्वामी के प्रति अपना विश्वास खो बैठी है? पर उसके लिए क्या यह सम्भव है? फिर तत्काल उसके लम्पट मन ने कहा—'अगर सम्भव नहीं होगा. तो फिर मुझे सफलता कैसे मिलेगी?···हूँ, तो अब मुझे कुछ करना ही पड़ेगा!'

उसे जब कुछ और न सूझ पड़ा, तो पास ही लेटी प्रियम्वदा को लक्ष्यकर उसने कह दिया—"सुनती हो ?"

कुनमुनाती प्रियम्वदा बोली—"सब सुनती हूँ; अब सोओ, मुझे नींद लगी है।"

चिंतन की घड़ियों में हास्य-विनोद अरुण को काट खाता है। लेकिन उस समय उसके इस उत्तर के मर्म-स्पर्श पर उसे हँसी आ गयी। अत-एव उसने कह दिया—"तुम्हारी नींद के साथ मेरा कोई विरोध नहीं है रानी। मैं तो सिर्फ इतना जानना चाहता था कि सुशीला के बाबू को वेतन भला कितना मिलता होगा ?"

जानबूझकर उसने नीलकमल का नाम नहीं लिया।

चादर मुंह से हटाकर प्रियम्वदा मुसकराती हुई बोली—"ओः यह बात है! ···वेतन तो कहने को उन्हें दो-सौ मिलता है; लेकिन मिलता असल में डेढ़ सौ ही है; नीलू के व्याह में जो हज़ारों रुपये कर्ज़ लेने पड़े थे, पचास रुपये महीने उसमें कटते जाते हैं। फिर इतना बड़ा परिवार, आगत-स्वागत, मकान-भाड़ा, हारी-बीमारी। डेढ़ सौ रुपये में होता ही क्या है!"

एक निःश्वास और एक अक्षर का छोटा-सा शब्द 'हूँ!' रेलवे ऑफ़िस की नौकरी ठहरी। अरुण मनोमंथन में लग गया—

"परिस्थितियों को सही-सही परिवेश में समझना बड़ा कठिन है। भविष्य कब हमें कहाँ ले जायगा, कौन जान सकता है? जब आवश्य-कता अजगर की भाँति मुंह फैलाये सामने हो, तो हम कर ही क्या सकते हैं! जो सीमाओं में नहीं रह सकते, उन्हें तोड़ डालते हैं, मैं उन्हें अपराधी नहीं मानता। उसके अपराध को समाज की एक समस्या मानता हूँ। लेकिन अकेला चना तो भाड़ नहीं फोड़ सकता। हमें ऐसा समाज बनाना है जो पुरानी व्यवस्था के पैर काट डाले!'

कभी सोते-जागते, करवट लेते, कुछ उखड़ी-उखड़ी बातें भी अरुण के मन में आतीं—'मैं अगर प्रियम्वदा को अपनी बगल से उठा दूँ और उससे कहूँ कि ज़रा नीलकमल को बुलाओ, तो?'

पर उसकी यह विचित्र इच्छा फिर उसी को काटने लगती—'एकदम से तो हम सामाजिक व्यवस्था की उपेक्षा कर नहीं सकते। प्रियम्वदा यों भी मुझ पर कम सन्देह नहीं करती। फिर ऐसा कहीं हो सकता है कि नीलकमल को प्राप्त करने में प्रियम्वदा जैसी प्रियतमा को छोड़ दिया जाय! शिव-शिव! हमको यह क्या होता जा रहा है!'

'यह कौन-सी सभ्यता है?' जैसे किसी ने उसके कानों में कह दिया हो—'क्या मानवी सहानुभूति को वह सक्रिय रूप नहीं दे सकता? नीलू को वह अपने कमरे में क्यों नहीं बुला सकता?'

फिर जैसे कोई अन्तरिक्ष से बोल उठा हो—'लेकिन उसका यह अवसर तो नहीं है। वह उससे एकान्त में मिल सकता है। वहाँ वह उससे सब कुछ कह सकता है। कहते हैं—अत्यधिक प्रशंसा···किसी भी रूपसी की···कभी व्यर्थ नहीं जाती! वाणी में शक्ति होनी चाहिए।'

'लेकिन कोई अवसर तो होना चाहिए।'

उस दिन बड़ी रात तक वह करवटें बदलता रहा। एकाएक प्रियम्वदा उठ बैठी। उसने कुछ रुखाई के साथ कहा—"क्यों जी, आज तुम सो क्यों नहीं रहे?"

उत्तर में अरुण ने धीरे-से कह दिया—"मैं स्वयं भी अपने आपसे यही पूछ रहा हूँ रानी?"

प्रियम्वदा बोल उठी—"आज तुमको हो क्या गया है! दुनिया में क्या नहीं होता, लेकिन हम से मतलब?"

उसने कुछ जवाब नहीं दिया। उसके पास कोई जवाब था भी नहीं।

लेकिन फिर उसका मन उससे कहने लगा—'दुनिया में जो कुछ होता है, अगर वह ग़लत है, तो मैं उसे क्यों होने देता हूँ? फिर भी अगर होने देता हूँ, तो मेरा जन्म, मेरी मानवात्मा, मेरा सुख, आनन्द, जीवन की एक-एक साँस, उसका एक-एक क्षण—सब ग़लत है!'

उसकी तबियत नहीं मानी और वह उठकर बैठ गया। बत्ती जलायी, सिगरेट सुलगायी, एक कश लिया, द्वार की सिटकिनी खोली और कमरे

से बाहर होकर वह बरामदे में टहलने लगा।···मुझे कुछ करना है। मैं कुछ करके मानूंगा !···सीधा-सादा मनुष्य आज की दुनिया के लिए अभिशाप है।'

प्रियम्वदा कुछ घबरा गयी। वह दरवाज़े से लगकर खड़ी-खड़ी उसे देखती रही। उसी समय अरुण को कुछ ऐसा जान पड़ा—सीढ़ियों पर कोई नीचे से ऊपर आ रहा है। प्रत्येक पदध्वनि के साथ, उसके मन में यही प्रश्न उठता रहा—'कौन है, यह है कौन ?'

रात के ग्यारह बज रहे थे। इतने वह क्या देखता है—धीरे-धीरे पैर थहाते-थहाते जो आ रहा है, वह नीलकमल है ?

चप्पल से सिगरेट की अधजली टुकड़ी तुरन्त बुझाकर वह अपने कमरे के भीतर आ गया। चारपाई पर अभी लेटा ही था कि प्रियम्वदा ने पूछा—"बत्ती बुझा दूं ?"

उस समय अरुण की दृष्टि सुरेश के मुख पर थी, जो स्वप्न में मुसकरा रहा था।

दूसरे दिन स्टूडियो में छुट्टी थी। सारा दिन उसने घर में ही बिताया।

अरुण की मां ने पूछा—"आज तुम कहीं जाओगे नहीं बेटा ?"

संक्षिप्त-सा उसका उत्तर—"नहीं।"

दोपहर का समय था और आकाश कुछ खुला हुआ था। बरामदे में कुरसी डाले बैठा वह एक मैगज़ीन में किसी गीत की स्वर-लिपि देख रहा था। यकायक उसने देखा कि नीलकमल अपने कमरे के भीतर द्वार से सटी हुई खड़ी कह रही थी—"जाकर देखती हूं, आज शायद काम हो ही जाय !"

अब उसके मन में अमित उत्साह था। झटपट कमरे में जाकर उसने केश संवारे, मुख पर स्नो मला, कपड़े बदले। फिर चप्पल पहनकर वह नीचे फुटपाथ पर आ खड़ा हुआ।

चलते समय उसकी मां ने कहा—"अगरबत्ती का पैकेट लेते आना।"

उसने उत्तर में कह दिया—"अच्छा।"

फिर इसी क्रम में उसके मन में आया—'अगरबत्ती जलती है, तो उसकी सुगन्ध कमरे भर में फैल जाती है। एक नीलकमल है, जो किसी सरोवर में कभी खिलता है तो बिना समझे-बूझे बहुतेरे सामाजिक कौवे एक साथ काँव-काँव बोल उठते हैं!'

पुष्पों की दूकान के समक्ष वह फुटपाथ पर खड़ा था। सिगरेट पीना समाप्त करके चप्पल के तल्ले से टुकड़ी की अग्नि को कुचलकर उसे समाप्त करता हुआ वह उपर्युक्त बात सोच ही रहा था कि नीलकमल उसके निकट से होकर जाने लगी। कलफ़ के कारण श्वेत वस्त्रों से जो एक सुरसुराहट फूट रही थी, वह उसे बड़ी प्रिय जान पड़ी। तब एक दृष्टि डालकर उससे पूछा—"कहाँ?"

नीलकमल कुछ सकपका गयी। बोली—"यों ही ज़रा तारदेव तक।"

इस तरह एक फ़र्लांग तक दोनों साथ-साथ चलते रहे। कभी नीलकमल पीछे हो जाती, कभी उसके बराबर।

बार-बार उसके मन में आता—'आज यह क्या बात है? यह मेरे साथ क्यों आ रहे हैं?' और अरुण सोचता—'कहूँ कि न कहूँ? कहूँ भी तो क्या कहूँ? मान लो कि कुछ कहूँ भी तो कैसे कहूँ?''

जब कुछ समझ में न आता तो वह फिर आगे बढ़ जाता।

इतने में नीलकमल बोली—"कुछ कहते जाओ। चुप क्यों हो?"

अरुण बोला—"एक बात तुमको नहीं मालूम।"

लज्जा से उसका सिर झुक गया। उसने कुछ आश्चर्य से पूछा—"कौन-सी बात?"

अरुण ने बिना कुछ स्थिर किये हुए कह दिया—"बात बहुत साधारण है। सिर्फ़ इतनी कि मैं तुमको जान गया हूँ! मुझसे कुछ भी छिपा नहीं रह गया है। यहाँ तक कि इस वक्त तुम कहाँ और किस अभिप्राय से जा रही हो, यह भी मुझे मालूम है; और कल रात को बारह बजे तुम कहाँ से आयी थीं, यह भी मैं बता सकता हूँ।"

अरुण की बात सुनकर नीलकमल सन्न रह गयी। जैसे वह कुछ

घबरा गयी हो। लज्जा से उसका सिर झुक गया। कोई उत्तर न दे सकी।

अरुण ने देखा, उसकी आँखें भर आयीं हैं। पलकों से आँसू टपकना चाहते हैं।

हृदय पर पत्थर रखकर एकदम से खड़ी रह गयी और बोली—"जब आप सब कुछ जानते हैं, तब मैं आपसे क्या कहूँ? ज़िन्दगी जिधर ले जाती है, मैं उधर ही चल देती हूं।"

"हूँ, तो लक्ष्यहीन हो तुम!"

इसी समय नीलकमल के मन में आया। वह कह दे—'क्या जीवन अपने आप में एक लक्ष्य नहीं होता।' लेकिन तब तक अरुण आगे बढ़ गया था। तब वह बोला—"कुछ-कुछ मैं समझ रहा हूँ।" फिर जब नीलकमल उसके बराबर पहुँची, तब उसने कह दिया—

"अच्छा अब एक बात बताओ, इस प्रकार के जीवन में तुम्हें कुछ सुख का भी अनुभव हुआ है?"

"जहाँ विश्वासों के आधार न हों, निकटता और अपनेपन के पावन उद्दीपन न हों, वहाँ सुख की उद्भावना कैसे हो सकती है?"

नीलकमल कहती तो ठीक ही है। और भाषा कैसी प्राणमयी बोलती है! फिर भी उसने कह दिया—

"एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगी?"

"कहिये! बुरा तो उसको लगता है, जो अपना कुछ गुप्त रखता है। मेरा तो आपसे कुछ छिपा रहा नहीं, जैसा कि आपने अभी कहा।"

अरुण को नीलकमल का प्रत्येक उत्तर चुभता-सा जान पड़ता था। तब वह बोला—"अच्छा अब एक बात बताओ, तुमको इस समय कितने रुपये की आवश्यकता है?"

अरुण का इतना कहना था कि नीलू की भंगिमा बदल गयी। एक पुलक हास उसके अधरों और नयनों पर खेलता-खेलता स्थिर हो गया। अपने रंगीन नखों की ओर देखती हुई वह बोली—"जब आपका इतना सहारा मिल रहा है, तब मुझे कुछ नहीं चाहिये। हाँ, इस विषय में

आप अम्माँ से ही बात कर लें, तो अच्छा होगा।"

उस समय नीलकमल को वे घड़ियाँ स्मरण आ रही थी, जब वह गोखले साहब और महेश्वर बाबू के सम्पर्क में आयी थीं। कार्य-कारण के साथ उन सम्पर्कों की अन्तिम परिणति भले ही भयावह न हो पायी हो, पर उनकी सम्भावनाओं की कल्पना तो वह कर ही सकती थी।

अनेक बातें नीलकमल के मन में आ-जा रही थीं। कौन जाने अरुण बाबू का क्या मन्तव्य हो! फिर भी नीलू बोली—"चाचाजी, आपको तो मालूम है, कैसे दिन कटते हैं! मेरे पास बाहर निकलने को यही एक साड़ी है। लेकिन सुशीला को तो कालेज जाना होता है। तीन दिन से हमारे घर में साग नहीं बना है। छटाँक भर दानों से बटलोई भर दाल बनाई जाती है! कौर डुबो-डुबोकर हम सब खाना खाते हैं!"

अरुण सोचने लगा—'सौन्दर्य-पान का एक ही नाता होता है। कितना अच्छा होता, यह मुझे 'चाचाजी' न कहती।'

बात पहले ही समझ में आ गयी थी, अब पक्की हो गयी। अरुण ने तब उससे पूछा—"इस तरह कैसे काम चलेगा?"

नील आँसू पोंछ रही थी। स्पष्ट था कि वह और कुछ बतलाने में समर्थ नहीं है।

तब अरुण बोला—"रोने से काम नहीं चलता। किसी परिस्थिति को सुलझाने के लिए अगर कोई भी उपाय अस्थायी होता है, तो वह परिस्थिति कभी सुलझती नहीं है। तुम कहीं कोई नौकरी क्यों नहीं कर लेतीं?"

मुख पर आश्चर्य मिश्रित हास-सा झलक उठा, फिर भी साहस करके नीलू ने उत्तर दिया—"चाचाजी, आप समझते है, मैंने कोई कोशिश बाकी रखी है? नौकरी मिलती कहाँ है?"

तब उसे कहना पड़ा—"अच्छा, मैं कोशिश करूँगा। तुम इस समय मुझसे दस रुपये ले लो और घर लौट जाओ।"

नीलू बहुत संकोच में पड़ गयी। रुपये अरुण से लेकर वह कम्पित वाणी में बोली—"चाचा जी···ये रुपये मैं···आपको···आपको ?"

थोड़ा-सा उल्लास आते ही इतना सौन्दर्य ! सहसा एक मोहकता अनुभव कर अरुण ने उत्तर दिया—"उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन एक बात मुझे तुमसे कहनी है कि अब तुम रुपये के लिए कहीं जाना नहीं !"

दोनों जहाँ खड़े थे वहाँ फलों की दूकान पर अनन्नास का शरबत बन रहा था। तभी दूकानदार से उसने कह दिया—"दो गिलास बनाना !"

उसे याद आ रहा था—चलते समय माँ ने अगरबत्ती का पैकेट ले आने के लिये कहा था। और रुपये उसकी जेब में कुल दस ही थे। अब !

बारम्बार प्रियम्वदा का छोड़ा हुआ तीर उसे घायल करता जान पड़ता था।

४

खाना तैयार हो गया था और वह रसोई में जाकर पीढ़े पर बैठ ही रहा था कि सुशीला ने आकर कहा—"चाचाजी, स्टूडियो जाने से पहले दो मिनट को हमारे यहाँ हो लीजियेगा, अम्माँ ने कहा है।"

"अच्छी बात है, पर•••" अरुण बोला—"बैठो, खाना खाओ।"

प्रियम्वदा उसकी ओर देखने लगी और सुरेश अपनी दाल वाली कटोरी में गिलास का पानो उँडेल-उँडेल कर हाथ धोकर मुंह पोंछने का प्रदर्शन करने लगा। यहाँ तक कि न उसके हाथ साफ़ हो पाये, न मुंह। प्रियम्वदा हंस पड़ी और अरुण उसकी ओर देखता रह गया।

सुशीला बोली—"खाना तो मेरे यहाँ भी बन रहा है, चाचाजी। वैसे आपके यहाँ खाने में भी मैंने कभी संकोच नहीं किया।"

उसने देखा, बात कहती हुई सुशीला कुछ अनमनी हो उठी है। उसकी पलकें झुक गयी हैं।

अरुण प्रायः थोड़ी-सी चटनी तर्जनी पर उठाकर चखने लगा, तो उसे यह अनुभव करते देर नहीं लगी कि साग और चटनी में बड़ा अन्तर होता है।

इतने में सुशीला अपने घर लौट जाने को उद्यत होकर बोली—"अब मैं जाती हूँ। आप हमारे घर जरूर होते जाइएगा; भूलिएगा नहीं।"

सुशीला चली गयी। इतने में प्रियम्वदा ने कह दिया—"अब तक तो जरूरत पड़ने पर जीजी अम्माँ के पास आती थीं; आज उन्होंने तुमको भी याद कर लिया!"

अरुण ने पूछा—"ईर्ष्या हो रही है?"

"ईर्ष्या की बात नहीं; इसमें कुछ भेद की बात हैं। तुम क्या जानो ?"

'प्रियम्वदा के हर एक कथन में कुछ भेद रहता है' सोचता हुआ अरुण चुप हो गया। उसके मन में आया—'यह ठीक कहती है।' लेकिन फिर तुरन्त उसने कह दिया—"तो तुम्हीं चली जाओ न ?"

प्रियम्वदा बोली—"नहीं ऐसा नहीं हो सकता। जो बात वे अम्माँ से नहीं बताना चाहतीं, या समझती हैं कि उनसे नहीं हो सकती, उसी को पूछने या समझने को मैं उनके पास दौड़ी जाऊँ, यह मेरे लिए उचित नहीं है।"

पुनः अरुण के मन में आया—'शायद यह ठीक कहती है !'

भोजन के अनन्तर अरुण जब श्याम बाबू के घर जाने लगा तो प्रियम्वदा किन्हीं आशंकाओं से आतंकित होकर बोली—"जाते तो हो, मगर ···।"

सहसा उसे छींक आ गयी।

अरुण रूढ़ियों से बहुत चिढ़ता था। पत्नी की छींक पर वह उसकी ओर देखता रह गया। थोड़ी मुसकराहट भी उसके आनन पर मुद्रित हो उठी। तब उसने प्रश्न कर दिया—"मगर क्या ?"

प्रियम्वदा हँस पड़ी। बोली—"मैं यही कहने जा रही थी कि कहीं जीजी के फेर में न पड़ जाना !"

अरुण विचार में पड़ गया। उसके मन में आया—'क्या द्वादशी में कोई ऐसी बात है, जो प्रियम्वदा के लिए चिन्ता का विषय हो सकती है ? क्या वह सहज ही कोई जादू कर बैठती है ? क्या उसके भीतर कोई रहस्य बना रहता है ? या नारी प्रकृति ही सन्देहमयी होती है ? सन्देह पुरुष की नैतिकता पर—उसके ज्ञान, अनुभव विवेक और संतुलन पर।

'कुछ भी हो, अरुण अपने आपको सतर्क रक्खेगा; प्रियम्वदा की बात उसे याद रहेगी। बहस करने की अपेक्षा यह कहीं उत्तम है कि कर्त्तव्य के नाते जो अपना आदेय है, मनुष्य सदा उसी पर दृष्टि स्थिर बनाये रखे।'

बरामदे में आकर अपने बाँयीं ओर मुड़ते हुए अरुण ने देखा—सुशीला द्वार पर खड़ी हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने निकट बुलाकर जब अरुण से कोई कुछ कहता है, तब उसे अच्छा लगता है। इस कल्पना में उसे एक प्रकार का सुख ही मिलता है कि सम्बन्धित व्यक्ति के लिए उसकी एक उपयोगिता है। फिर जब बुलानेवाली कोई नारी हो, तब तो उसे साग और चटनी दोनों का स्वाद मिल जाता है।

उस समय भी उसका मन एक प्रकार के उत्साह से भर गया। मिश्री के टुर्रे उसके भीतर घूलने लगे। मन-ही-मन घुलता हुआ वह कहने लगा—'वन में नाचनेवाले मोर को तो कभी-कभी कोई देख भी लेता है; लेकिन जब मन में मोर नाचता है, तब उसे कौन देख पाता है!'

अरुण ज्यों ही श्याम बाबू के घर पहुँचा, उसने देखा—द्वादशी तो स्टोव पर चाय चढ़ाये हुए है; और नीलकमल बैठी पान लगा रही है।

यकायक हाथ जोड़कर नमस्ते करती हुई द्वादशी बोली—"आओ, पलँग पर बैठ जाओ आराम से।"

अरुण ने देखा—निवार का पलँग है और दरी के ऊपर पीले और हरे रँग के डोरों से बुनी हुई चादर बिछी हुई है। पतले-पतले दो मुलायम तकिये सिरहाने रक्खे हुए हैं। तब वह पलँग पर बैठ गया।

कमरे में एक ओर कई ट्रंक तर-ऊपर रखे हुए हैं, जिनमें बीच-बीच रंगीन कपड़ों के टुकड़े ऐसे क्रम से पड़े हुए हैं कि सब मिलकर सतरंगी छवि उत्पन्न कर देते हैं। अरुण के मन में आता है, यह नीलकगल की रुचि का प्रतीक है।···चीड़ की लकड़ी के एक बड़े सन्दूक में साफ़ धुले हुए चमकते बर्तन ऐसे क्रम से रक्खे हुए हैं, जो बड़े के भीतर क्रमशः छोटे होने के कारण परस्पर मिलकर वृत्ताकार झलक दे उठते हैं। अरुण के कानों में कोई कह उठता है इसी तरह लेटी हुई नीलकमल कभी निःश्वास लेती और कभी सिसकियाँ भरती-निकलती है।···कुछ बर्तन लकड़ी के खानेदार त तों पर औंधे मुँह लेटे हुए हैं। सामने एक कैलेण्डर में एक सुन्दरी का चित्र है, जिसमें कृष्ण एक पेड़ की डाल पर पैर लटकाये

बाँसुरी बजा रहे हैं, और राधा उस स्वर-लहरी में अपने तन-वदन की मर्य्यादा-रक्षा का ध्यान तक खो बैठी है और एक कौआ वक्र-ग्रीवा की मुद्रा में वृक्ष की शीर्षस्थ टहनी पर बैठा हुआ है ।···अरुण के मन में आया—आज के कलाकार की अपनी कामुकता का ही एक उदाहरण प्रस्तुत किया हुआ जान पड़ता है ।···एक ओर कोने में मिट्टी के दो घड़े हैं, जो लकड़ी के बने गोल ढक्कनों से आवृत्त हैं । तभी सहसा अरुण का ध्यान नीलकमल की देहयष्टि की ओर चला जाता है । बिजली की बत्ती दायीं ओर की दीवार पर लटक रही है, जिसका शीशे का आवरण छः पहल का है ।····तब वह सोचने लगता है—क्या यह उसके जीवन के पहलू हैं ?···

दीवारों पर हलकी हरी चमकदार रँगाई की गयी है । पीठ की ओर जो मेन्टलपीस हैं, उस पर लक्ष्मी-गणेश की दो मूर्तियाँ रक्खी हुईहैं । सब मिलाकर कमरे की सजावट अपना एक प्रभाव छोड़ जाती है । तब वह सोचता रह जाता है—'यह प्रभाव द्वादशी का है या नीलकमल का ?'

अभी दस नहीं बजे थे; और रेडियो सीलोन से एक गीत प्रसारित किया जा रहा था, जिसकी प्रथम पंक्ति थी 'सोने के दिन थे, चाँदी की रातें, याद आ ही जाती हैं प्यार भरी बातें ।' तभी सहसा नाक-भौं सिकोड़ते हुए द्वादशी ने कह दिया—"ज़रा किवाड़ तो भेड़ देना, सुशीला !"

सुशीला किवाड़ भेड़ती हुई बाहर चली गयी ।

द्वादशी बोली—"हम लोगों को यहाँ रहते हुए कई साल हो गये, लेकिन तुम कभी मेरे घर नहीं आये । ऐसा नहीं है कि यह बात कभी मेरे मन में आयी न हो । अनेक बार सोचा भी कि तुम को बुलाऊँ और अपना सुख-दुःख कहूँ तुम से । लेकिन फिर यही मानकर नहीं बुलाया कि दूसरों की व्यथा की कहानी आज के युग में सुनता कौन है ? आज मालूम नहीं क्यों, मन में आया कि एक बार कहकर तो देखूँ—क्योंकि युग चाहे जैसा बदल गया हो, लेकिन मानवता अभी जीवित है ।"

अरुण को जान पड़ा, कोई गम्भीर बात है । फिर मन में आया, हो

सकता है, नीलू ने बतला दिया हो कि ये रुपये वह अरुणबाबू से लायी है।

एक बार उसने सोचा—'यह अच्छा नहीं हुआ। रुपये देने की बात उसको बतलानी नहीं चाहिये थी। गुप्तभेंट की बात कहने की होती भी नहीं।' फिर यह भी सोचा कि यदि ऐसा ही था तो मुझे स्पष्ट कह देना था कि किसी को कुछ बतलाना नहीं।

इतने में नीलकमल ने एक तिपाई उसके सामने रख दी, जिस पर एक प्लेट में दाल-चिउड़ा और मूंगफली के साथ मैसूर के दो टुकड़े थे और दूसरे प्लेट में चाय।

अरुण ने देखा—द्वादशी ने न अपने लिये चाय बनवायी, न नीलू को ही दी। यह परिस्थिति उसे सहन नहीं हो रही थी। फिर भी उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। क्योंकि हो सकता है, उसने सोचा—चाय केवल उसी के लिए बनायी गयी हो।'

"आपको तो मालूम है कि मैं अभी भोजन करके आ रहा हूँ।" कहता हुआ अरुण जब द्वादशी की ओर उन्मुख था, तब गौरैया का जोड़ा खिड़की पर बैठा गर्दन हिलाता हुआ फुदक रहा था।

द्वादशी बोली—"तो क्या हुआ ? थोड़ा और सही।"

"नहीं, मैं सिर्फ चाय पी लूंगा। यह सब नीलू तुम ले लो।"

नीलकमल ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—'मैं नहीं लूंगी। थोड़ा-सा तो है ही, खाइये न ?"

"ऐसी बात है तो मैं" अरुण ने उत्तर दिया—"ज़रा-सा दाल-चिउड़ा ले लेता हूँ। मैसूर तुम्हारे लिये छोड़े देता हूँ।"

द्वादशी बोली—"अरे खाओ, इतने में अजीर्ण न हो जायगा !"

अरुण देख रहा था कि ग्रीवा के नीचे का ब्लाउज का वह भाग जो वक्ष-के सन्धि-स्थल तक एक त्रिकोण बनाता हुआ खुला रहता है, नीलकमल ने साड़ी के पल्ले से ढक लिया है। तभी अरुण ने कह दिया—"मेरे योग्य अगर कोई सेवा हो, तो एक पड़ोसी के नाते बतला देने में

आप को कोई संकोच न होना चाहिये।"

इतने में द्वादशी ने नीलकमल की ओर दृष्टि डालते हुए अरुण से पूछा—"सिगरेट तो तुम पीते हो न?"

उत्तर में थोड़ा मुसकराकर अरुण कुछ कहने ही जा रहा था कि द्वादशी ने कह दिया—"वैसे तुम कौन-सी सिगरेट पसन्द करते हो?"

अब उसे नाम बतलाना पड़ा। तभी द्वादशी बोली—"सुशीला न मिले तो खुद ही नीचे जाकर ले आ!"

नीलकमल उठकर जाने लगी, तो अरुण ने कह दिया—"कहीं से मँगाने की जरूरत नहीं है। मेरे यहाँ से ले लो, मेन्टल-पीस पर पैकेट रक्खा है।"

द्वादशी ने कह दिया—"नहीं-नहीं। नीचेवाली दूकान से ही ले आओ।"

नीलकमल कुछ सोचती हुई क्षण-भर द्वार पर खड़ी रही, फिर अधरों पर मुसकान-माधुरी की एक झलक देती हुई द्वार से बाहर हो गयी।

द्वादशी बोली—"तुमको शायद यह नहीं मालूम कि नीलू के बाबू की भी कभी अच्छी आमदनी थी। बैंक में ढाई-सौ रुपये पा रहे थे; पर एक बार जाली चेक पास कर देने के कारण इस बुरी तरह फँस गये कि बड़ी मुश्किल से बच पाये। साढ़े तीन हजार रुपयों का मामला था। उसी की पूर्ति में हमारे पास जो थोड़ा-बहुत जेवर था, सब समाप्त हो गया! हम लोगों ने सोचा, जेवर गये सो गये, नौकरी तो बच गयी। लेकिन बैंक के मैनेजर का खयाल इनकी तरफ़ से कुछ ऐसा खराब हो गया कि उसने दूसरे महीने ही इन्हें अलग कर दिया। और यह तो तुम जानते ही हो कि जब किसी आदमी का सम्मान खो जाता है, तो समाज में अपना माथा ऊँचा करके चलना उसके लिए कितना कठिन हो जाता है! नौकरी छूट जाने के बाद हम आगरा पन्द्रह दिन भी न टिक सके। नीलू के ब्याह में जो देना हो गया था, उसके कारण और तबाही आ गयी। आजकल दिन किस तरह कट रहे हैं यह मैं ही जानती हूँ!"

द्वादशी ने अपने दुःख की यह कहानी धीरे-धीरे रुक-रुककर कुछ इस ढँग से कही कि उसकी आँखों गीली हो गयीं। वह रो पड़ी।

दया और करुणा अरुण के अन्दर कम नहीं थी। किसी को सामने रोता हुआ पाकर ऐसा नहीं है कि उसके लिए कुछ करने का मन न होता हो। लेकिन जब अपने चारों ओर दुःख-ही दुःख, प्रश्न-पर-प्रश्न, समस्या-पर-समस्या उठ-उठकर खड़ी हो जाती हो, तब मनुष्य कहाँ तक करे!

लेकिन अरुण की समस्या दूसरी है। नीलकमल को वह किस तरह दुःखी नहीं देख सकता। वह अकसर सोचा करता है, सुन्दर व्यक्ति को अगर दुःख मिलता है तो इसका मतलब यह हुआ कि समाज पशुओं का है।

एक निःश्वास के साथ उसने कह दिया--"इतने विस्तार के साथ तो मुझे कुछ नहीं मालूम था; लेकिन इतना मैं जानता था कि आप लोग कष्ट में हैं।"

द्वादशी ने आँसू पोंछ डाले। अरुण ने इतना और जोड़ दिया—"मेरे लिये आपने जो काम सोचा हो उसे अब बतला ही दें।"

कमरे का किवाड़ नीलकमल अधखुला ही छोड़ गयी थी। द्वादशी जब उसे बन्द करने लगी, तो अरुण सशंकित हो उठा। उस समय वह कुछ कहने की परिस्थिति में भी नहीं था।

हमारे बहुतेरे अनुमान अविश्वास की सन्तान होते हैं। दूसरो को दोषी ठहराने की अपेक्षा यह अच्छा है कि पहले अपना विश्वास अटल रक्खा जाय—चाहे जैसे हो, आस्थाओं का सन्तुलन खोया न जाय।

५

अरुण ने इतने में देखा—द्वादशी ने अपना ट्रंक खोल डाला है। सोने के टाप्स की एक जोड़ी निकालकर अरुण की ओर बढ़ाते हुए उसने कह दिया—"ये टाप्स इनकी भाभी ने मेरे विवाह के अवसर पर, मुझे मुंहदिखावे में दिये थे।"

कहते-कहते द्वादशी की आँखों में फिर आँसू झलक उठे। अरुण ने कह दिया—"रोओ मत भाभी।"

द्वादशी ने टाप्स उसके हाथ में रखते हुए कहा—"इनको कहीं गिरवी रख दो; और जितने रुपये मिल सकें ला दो। नीलू के बाबू से तो यह काम होगा नहीं। तुम्हारी बात और है।"

अरुण बहुत विचार में पड़ गया। उससे कुछ कहते न बना। अलबत्ता उसने अनुभव किया—'भाभी ने जो कुछ बतलाया है, उसमें कोई अंश मिथ्या नहीं हो सकता।'

चाय उसने आधा कप ही पी पायी थी। अब जो उसकी ओर देखा, तो द्वादशी बोली—"लाओ उसे फेंक दूं; ठण्ढी हो गयी होगी।"

केतली को स्टोव पर रखकर बाकी बची हुई चाय को वह पुनः गरम करने लगी। साथ ही उसने इतना और कह दिया—"मैं इनको बेचना नहीं चाहती। वेतन मिलने पर छुड़ा लेने का मेरा पक्का इरादा है।"

अरुण के मन में आ रहा था—'मुझ में कौन-सी ऐसी बात है जिसके कारण भाभी मुझ पर विश्वास करती हैं। इस विश्वास का आधार क्या है?'

"इतने में द्वादशी बोली—"अब इसे जेब में रख लो। किसी को कुछ बतलाने की जरूरत नहीं।"

अब उसने द्वार की कुण्डी नीचे गिरा दी और कपाट आधा खुला छोड़ दिया। तब तक सुशीला आ गयी।

अरुण ने देखा, उसके हाथ में एक पुराना इटैलियन उपन्यास 'ब्लैक ट्यूलिप' है। सीढ़ियों से भागती हुई आयी है, इसलिए साँसों के आरोह-अवरोह के प्रकार में उसका स्थिर वक्ष उठता-गिरता हुआ कभी आगे बढ़ता है, कभी पीछे हटता है!...इस अरुण को क्या हो गया है? इसकी दृष्टि पहले नारी के वक्ष पर ही क्यों जाती है?...एक साधारण-सा उत्तर वह अपने को दे लेता है—'क्योंकि यौवन उसे प्यारा है।'

अब उसके भाल पर पसीने की बूंदें आ गयी थीं।

इतने में द्वादशी ने उसके कप में चाय डालते हुए सुशीला से कह दिया—"जा, देख तो सही, नीलू कहाँ रुक गयी?"

अरुण ने कह दिया—"अब कहीं जाने की जरूरत नहीं।"

इतने में नीलू आ गयी और दो सिगरेट उसने अरुण के सामने रख दीं। बिना कुछ और कहे अरुण ने चाय समाप्त कर सिगरेट सुलगा ली।

अनेक विचार उसके मन में आ रहे थे—'नीलकमल की समस्या के सम्बन्ध में भाभी ने कुछ नहीं कहा?...सुशीला वयस्का हो रही है, उसका विवाह कैसे होगा?...ये टाप्स अगर भाभी छुड़ा न सकी तो एक वर्ष में ही डूब जायेंगे!...अगले मास बीस तारीख के बाद इनकी हालत फिर पतली हो जायगी! तब इस परिवार का खर्च कैसे चलेगा?'

इन्हीं विचारों के साथ अरुण उठकर खड़ा हो गया। चलते समय उसने कह दिया—'अच्छा अब मैं चलता हूँ।"

अरुण अभी द्वार के बाहर पहुँचा ही था कि द्वादशी ने कह दिया—"मेरा खयाल है तुम घण्टे भर में लौट आओगे।" अरुण बिना कोई उत्तर दिये अपने कमरे में आ गया। उस समय भी वह अपने मन से पूछ रहा था—'भाभी मुझ पर इतना विश्वास क्यों करती हैं?' फिर उसने

मन-ही-मन सोचा—'क्या यह बात मैं भाभी से पूछ नहीं सकता ?'

दूसरे दिन अरुण चरनीरोड स्टेशन पर गाड़ी से उतर कर ज्यों ही प्लेटफार्म पर आया, त्यों ही अचानक नीलकमल सामने पड़ गयी। उसने पूछा—"कहाँ से आ रही हो ?"

वह बोली—"दादर मेनरोड से।"

अरुण ने जानबूझकर उससे यह नहीं पूछा कि उसका वहाँ कौन रहता है। उसने यह भी नहीं पूछा कि वह किस काम से गयी थी। वह यही अनुभव कर रहा था, आज वह कुछ प्रसन्न दिखलायी पड़ती है। एक सुन्दर वैनिटीपर्स भी उसके हाथ में था।

उस दिन पानी बरस रहा था। अरुण के हाथ में छाता था, किन्तु नीलकमल उसके साथ चलती-चलती भीग रही थी।

अरुण ने अपना छाता उसको देते हुए कहा—"इसे तुम लगा लो, भीग जाने पर भी मुझे कोई कष्ट न होगा।"

नीलू उसकी बात पर थोड़ा मुसकराई। फिर संयत और गम्भीर होकर बोली—"नहीं, आप ही लगाये रहिये। अभी बूँदें बड़ी नन्हीं-नन्हीं पड़ रही हैं। फिर यहाँ से घर पहुँचने में देर कितनी लगेगी ?"

अरुण ने अब छाता उसके हाथ में देते हुए कहा—"बचपना छोड़ो, मैं जो कहता हूँ उसे मानो।"

नीलकमल उस समय उसके सामने आकर उसे एकटक देख रही थी। अरुण उसके सिर पर छाता ताने खड़ा हुआ था। अब उसके मुख पर दो-चार बूँदें मोती-सी झलक रही थीं। क्षण-भर तक तो वह कुछ न बोली, फिर छाता अपने हाथ में लेते हुए कह दिया—"चाचाजी, आप कितने अच्छे हैं, यह मैं अक्सर सोचा करती हूँ।"

"शायद तुमको यह नहीं मालूम है कि कोई वस्तु हो या व्यक्ति, उसके सम्बन्ध में यह सोचना ठीक नहीं कि वह अच्छा-ही-अच्छा है। बहुतेरी वस्तुएँ ऊपर से देखने में बड़ी सुन्दर और प्यारी जान पड़ती हैं। न वे एक दम से अच्छी हैं न बुरी। प्रत्येक के साथ अपना एक दृष्टिकोण

Library Sri Pratap College

होता है, जिसके अनुसार वे अच्छी या बुरी प्र ीत होती हैं ।"

अरुण ने देखा, नीलकमल विचार में पड़ गयी है ।

अब पानी ज़ोर से बरसने लगा था । कुछ लोग दूकानों के अन्दर जाकर खड़े हो गये थे और कुछ जल्दी पहुँचने के लिए पग बढ़ाकर चल रहे थे । बिजली की बत्तियाँ, मोटर-गाड़ियों के हार्न, साइकिलों की घण्टियाँ, ट्राम-गाड़ियों के चलने और सावधान करने की आवाज़ें, फुट-पाथ पर चलनेवालों के आकस्मिक मिलन, स्पर्श और साधारण धक्के के साथ 'सॉरी', 'दैट्स ऑल राइट', 'डोन्ट माइन्ड' 'ह्वाई शुड यू बादर योरसेल्फ़' आदि स्वर मिलकर एक ऐसा वातावरण बना रहे थे कि दोनों की बातचीत बीच-बीच से कट जाती थी । जब कभी दोनों साथ-साथ चलते, कन्धे आपस में मिलते से जान पड़ते । अरुण प्रायः आगे ही रहता । लेकिन जब कोई व्यक्ति सामने से आता हुआ बिलकुल आगे पड़ जाता, तब वह स्वभावेन ठिठक जाता और नीलकमल आगे बढ़ जाती ।

अरुण की बात पर थोड़ी देर कुछ सोच लेने के अनन्तर नीलकमल बोली—"आप चाहे जो कुछ कहें और चाहे जो कुछ सोचें, लेकिन अभी तक मैंने आपके सम्बन्ध में जो कुछ सुना, देखा और अनुभव किया है, उसका मेरे मन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है । मैं ही नहीं, अम्माँ भी सदा आपकी प्रशंसा करती रहती हैं । मेरी हालत तो यह है कि कभी-कभी यह सोचने लगती हूँ कि काश मैं आपकी कुछ सेवा कर सकती !"

नीलकमल की इस बात ने अरुण के मन के तार-तार झंकृत कर दिये । वह सोचने लगा—'यह स्वर जहाँ से उठता है, वह वाणी जहाँ से फूटती है, इस भावना को जहाँ से स्पन्दन मिलता है, वहीं मेरा वास है ।'

क्या जवाब दे उसे, कुछ सूझ नहीं पड़ा । तब तो पहले सोचा हुआ स्थिर और अटल विचार उसके मन में समाया हुआ था, उसी को लेकर उसने कह दिया—"तुम पगली हो, नीलकमल ! तुम जो कुछ कह रही

हो उसका अर्थ तुमको नहीं मालूम है। अब ज़रा सोचो, जो कुछ तुम नहीं कह पा रही हो, उसका क्या अर्थ होगा ?"

अब मकान निकट आ गया था। नीलू ने छाता समेटकर उसे दे दिया। दोनों सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। सीढ़ियाँ चढ़कर जब दोनों अपने-अपने मकान की ओर बढ़ने लगे, तब नीलकमल अपनी आँखें पोंछ रही थी।

श्यामलाल बाबू जब सायंकाल अपनी नौकरी से लौटते, तो चुपचाप घर में आकर पहले कपड़े बदलते, फिर नित्यकर्मों से निवृत्ति पाकर भोजन पर बैठ जाते। बहुधा बात कम करते, करते भी तो मतलब भर की। कोई चीज़ घर में क्यों नहीं है, इस बात से उनका सम्बन्ध न रहता। अभाव की बात वे सुनना पसन्द नहीं करते थे। जो वस्तुएँ जीवन के लिए अनिवार्य रूप से उपयोगी हैं, उनका कहना था कि उनकी व्यवस्था तो होनी ही चाहिये। क्यों नहीं हुई, इस सम्बन्ध में कोई कारण सुनना वे पसन्द नहीं करते थे। अपने-अपने कर्तव्यों का उत्तरदायित्व वे हर एक व्यक्ति का अलग-अलग मानते थे।

उनके सम्बन्ध की इन बातों का ज्ञान अरुण को पहले बिलकुल न था। श्यामबाबू से उसकी कभी बात न होती थी। अगर वह उनके कमरे में जाकर बात करता, तो अपना अन्तरंग रूप वे प्रकट ही करते, इसकी बहुत कम सम्भावना थी। फिर अपने घर बुलाकर माँ तथा प्रियम्वदा के सामने बात करना तो और भी मुश्किल था।

अन्त में एक दिन अकस्मात् श्यामबाबू ग्रैण्टरोड स्टेशन पर मिल गये। अरुण को सामने देखते ही वे कुछ ऐसे अस्त-व्यस्त हो उठे कि एकाएक उनके मुख से निकल पड़ा—"अरे आप !"

अरुण ने कह दिया—इसीलिए मैंने यहाँ का पता आपसे पूछा था।"

स्टेशन से दोनों साथ-साथ चलकर अभी सड़क पर ही आ पाये थे कि उन्होंने अरुण से पूछा—"आप इस समय स्टुडियो से ही आ रहे होंगे।"

अरुण ने उत्तर दिया—"जी हाँ।"

"तो फिर आइये, कुछ खाया-पिया जाय !"

अरुण श्यामबाबू का मुंह देखने लगा। थोड़े फासिले पर रेलवे कर्मचारियों से सम्बन्धित एक क्लब था, जिसमें रात के बारह बजे तक खान-पान के साथ सुरा-पान की व्यवस्था रहती थी।

अन्दर पहुंचते ही एक कुरसी ग्रहण करते हुए श्यामबाबू ने पूछा—"पीने के बारे में आपका क्या ख्याल है ?"

अरुण अपने जीवन के सम्बन्ध में, एक रहस्यात्मक वातावरण बनाये रखने में, विशिष्ट प्रकार के सुख का अनुभव करता था। अपने मन का मर्म वह किसी से बहुत कम प्रकट करता था। यहाँ तक कि अपने खान-पान की रुचियों के सम्बन्ध में, किसी को कुछ बतलाना उसे स्वीकार न होता था। यह उसका एक रचनात्मक पक्ष था। कभी-कभी एक परिस्थिति के अनेक अर्थ लगाने में वह एक विचित्र प्रकार के आनन्द का अनुभव करता। अतः सहज भाव से उसने कह दिया—"ख्याल का सवाल नहीं उठता; क्योंकि मैंने कभी पी ही नहीं।"

श्यामबाबू ने सुन रक्खा था कि फिल्म-उद्योग में बहुत कम लोग इससे बच पाते हैं। अतः अरुण के विषय में कुछ सोचते हुए श्यामबाबू बोले—"जिनको जीवन में दुःख या संकट का सामना करने का अवसर नहीं मिला, उनके लिये वह चीज है भी नहीं।"

तब अरुण ने अपनी मान्यता के अनुरूप स्पष्ट कह दिया—"क्षमा कीजियेगा, दुःख चिरन्तन है। उसकी स्थिति मनुष्य जीवन के लिए अनिवार्य है। इस धरती पर आज तक तो ऐसा कोई माई का लाल पैदा हुआ नहीं, जिसे जीवन में कभी दुःख न मिला हो। सच पूछिये तो सभी भोगवादी धनी-मानी और सम्पन्न होते हैं। आपने यह क्या कह डाला कि सुखी व्यक्तियों के लिये यह चीज है भी नहीं ?"

इतने में व्हाय आ गया और श्यामबाबू के मुख पर प्रसन्नता झलक उठी।

श्यामबाबू की नाक कुछ चौड़ी थी; केश काफ़ी बिखरे हुए। उनकी भृकुटियों के बीच के रोंएँ अलबत्ता कुछ मिले-जुले जान पड़ते थे। मुंह पर चेचक के दाग़ थे। गले की बायीं ओर एक मसा था। अरुण अभी उनके चेहरे की ओर देख ही रहा था कि वे बोल उठे—"मेरे ख्याल से अगर आप थोड़ी-सी ले लें तो इसमें कोई बुराई न होगी। और शायद आपको मालूम न होगा कि हर बुराई का एक भला पक्ष होता है।"

अरुण ने कह दिया—"छोड़िये इस पक्षापक्ष को। मेरे ख्याल से अगर आप आज से इस चीज को बिलकुल त्याग दें, तो बड़ा उत्तम हो। बाल-बच्चे वाले आदमी ठहरे; और अब तो सुशीला भी ब्याह योग्य हो गयी है। ऐसी दशा में सुरा-सेवन आपके लिये अनुचित ही नहीं, पाप है।"

ब्वाय यह कहकर जाने लगा—"पहले आप लोग तय कर लीजिये तब···।"

इसमें श्यामबाबू ने कह दिया—"ठहरो, पहले तुम एक-एक पेग ले आओ।" फिर अरुण की ओर उन्मुख होकर हँस पड़े। बोले—"आप क्या जानें कि पाप किस चिड़िया का नाम है?"

अब अरुण को कहना पड़ा—"मुझको तो थोड़ा-बहुत ज्ञान है भी; पर आप उसके ज्ञान का दावा करें, तो मुझे कुछ सोचना पड़ेगा। और हो सकता है ऐसा भी कुछ कहना पड़ जाय, जो आपको बुरा लगे। पर छोड़िये इस बात को, अब असली बात पर आ जाइये और मुझको इस पेय के लिये क्षमा कर दीजिये।"

श्यामबाबू ने कुछ ऐसा मुंह बना लिया कि उनकी आँखें चिमिरखी-सी हो उठीं। कीड़ा खाया हुआ दाँत झलकाते हुए वे बोले—

"ऐसा नहीं हो सकता। मेरे पास जब टका नहीं रहता, तब बीबी तक तो क्षमा करती नहीं। मेरे सिर में आप देख ही रहे हैं कितने बाल हैं! कहना न होगा कि बीबी के व्यंग्य-वचनों ने ही इनका सफ़ाया किया है! और समाज की हालत यह है कि जलेबी के दोने में की कल्पना ही वह चील बनकर उस पर टूट पड़ता है। आपको शायद यह भी नहीं मालूम

कि मेरे भी कभी दिन थे, मैं भी कभी फ़ाख्ता उड़ाया करता था !"

ब्वाय चला गया था।

फिर पान-सामग्री लाकर ब्वाय जो टेबिल पर रखने लगा, तो अरुण ने कह दिया—"या तो आप मेरे हिस्से की भी लीजिये, या फिर उसे लौटा दीजिये।" पीने की अतीव इच्छा होने पर भी वह सामने आया हुआ पेय लौटा रहा है; यह सोचकर अपनी समझ से वह बहुत बड़ा त्याग कर रहा था। किन्तु वह सोचता था—'कभी-कभी थोड़ा-सा पाखण्ड भी बहुत बड़ा काम सिद्ध कर देता है।"

श्यामबाबू बोले—"आज को छोड़कर फिर कभी मैं आप से, इसके लिए, आग्रह नहीं करूँगा।"

तब हँसते-हँसते अरुण को कहना पड़ा"—"सब से बड़ी मुश्किल यही है कि आपके अनुरोधों पर अन्त में मुझे झुकना ही पड़ता है।"

इस प्रकार अरुण को श्यामबाबू का साथ देना पड़ा।

जब श्यामबाबू की आँखों पर कुछ सुर्खी आ गयी, तो उसने उनसे प्रश्न कर दिया—"अच्छा तो दादा, अब मैं आपसे कुछ पूछ सकता हूँ ?"

"शौक़ से।"

श्यामबाबू की मूंछें खिचड़ी हो चुकी थीं। उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध था कि वे मूंछों में ही हँस लेते हैं !

अब अरुण बोल उठा—"मेरा अभिप्राय यह है कि इन घड़ियों में कोई भी प्रश्न आप से किया जा सकता है। अपनी बड़ी-से-बड़ी और गम्भीर चिन्ता-कथा पर आप से बातें की जा सकती हैं।"

"बेशक-बेशक !"

"तो बतलाइये—नीलू का जीवन आप क्यों बरबाद कर रहे हैं ?"

उसके इतना कहने पर श्यामबाबू यकायक गम्भीर हो गये।

ब्वाय ने आकर पुन: पूछा—"और कुछ ?"

श्यामबाबू ने उत्तर दिया—"एक पेग और, मगर एक क्यों, दो।"

अरुण ने कह दिया—"सिर्फ़ एक, दो नहीं।"

श्यामबाबू बोल उठे—"देखिये अरुण बाबू, आपको मना करने का कोई हक़ नहीं है। जो मैं कहूँ, आपको वह मानना ही पड़ेगा।"

अरुण बोला—"अगर आप नहीं मानते, तो मैं चला जाऊँगा। मैं आपके इस व्यसन को और बढ़ावा देने के पक्ष में नहीं हूँ।"

वास्तव में वह केवल प्रदर्शन के लिए उठकर चला जा रहा था।

श्यामबाबू ने उठते हुए उत्तर दिया—"बैठिये-बैठिये। अपनी बात का उत्तर तो लेते जाइये।" फिर उन्होंने ब्वाय से कह दिया—"···तुम ले तो आओ।"

ब्वाय चला गया, अब तक अरुण के दिमाग़ में एक सुरसुराहट उत्पन्न हो चुकी थी। संगीत चल रहा था, जिसकी स्वर-लहरी उसे बहुत खल रही थी। इधर-उधर काँटा चम्मच बोल रहे थे और एक सुन्दरी नाचने लगी थी।"

अब श्यामबाबू बोले—"अक्सर यह प्रश्न मेरे मन में भी उठा है—फिर उठते-उठते उसने मेरी छाती पर बीस मन का पत्थर रख दिया है! आशा है, आप मेरी बात समझ रहे होंगे!"

अरुण ने देखा, श्यामबाबू की आँखें डबडबा आयी हैं। वह जानता था कि उनका पारिवारिक जीवन कितना कष्टमय है। पर उसे इस बात का पता न था कि वे रोते भी हैं।

श्यामबाबू ने तब एक घूंट पेय कण्ठ के नीचे उतारकर सामने रक्खे पैकेट से एक सिगरेट निकाल ली, फिर दियासलाई से उसे जलाकर पीना शुरू कर दिया।

अवसर पाकर अरुण बोला—"एक ज़माना था, जब लोग मानते थे कि इससे ग़म ग़लत किया जा सकता है; पर आज का युग इसको जीवन युद्ध से भागने जैसा पाप मानता है।"

"फिर आपने पाप का नाम ले लिया!"

"लेना ही पड़ता है, दादा! आप को पता होगा—लोगबाग सत्य को भी बेचते नज़र आते हैं।"

श्यामबाबू सुरापान करते-करते एकाएक रुक गये। फिर मूछों पर उनका रूमाल जा पहुंचा। सुरा के बूंद पोंछ-पोंछकर वे बोले—"सत्य स्थानान्तरित होकर बिक तो जाता है, लेकिन उसका रूप छिपाये नहीं छिपता। यह बात दूसरी है कि छिपाये रखने की अवधि में उसके क्रय का लाभ हमें मिल जाय। आप को पता है, आजकल लोग जिस घर को लूटते हैं, उस घर के लोगों को भूखों मरता देखकर जो रोटी के चन्द टुकड़े डाल देते हैं, तो प्रकारान्तर से प्रचारित यही करते हैं कि मैं बड़ा दयालु और परोपकारी व्यक्ति हूँ! आप फ़ालो तो कर रहे हैं न! हँ-हँ क्या दुनियाँ है!"

तब प्रभावित होकर अरुण बोला—"मैं देखता हूँ, राजनीति में ऐसा नित्य होता है।"

अरुण समर्थन तो कर रहा था, पर भीतर-ही-भीतर यह भी सोचता जाता था—'ऐसा आक्षेप मुझ पर भी हो सकता है।···लेकिन अगर दादा को मेरा भेद वास्तव में मिल गया है तब तो मैं कहूँगा, यह मनुष्य नहीं, उससे कुछ ऊपर ऐसा कुछ है, जो सुरा के हर घूंट में सदा अवसाद पीता है!'

तब निश्चयात्मक रूप से उसे जान पड़ा, जैसे सचमुच दादा ने मेरा भेद पा लिया है।

आशंका से आदमी सतर्क तो होता है; पर तब उसका आत्मबल भी मंद पड़ जाता है।

अरुण भी विचार में पड़ गया।

इतने में श्यामबाबू निःश्वास लेते हुए बोले—"सब कुछ सोचने के बाद, अन्त में यही कहना पड़ता है कि हम कर ही क्या सकते हैं? क्या नीलू खुद अपनी ससुराल नहीं जा सकती? यह तो उसी का सवाल है और इसका हल भी उसी को निकालना चाहिये।" लेकिन तभी वे आँख पोंछते हुए बोले—"मैं उसका पिता होकर भी उसके लिए कुछ नहीं कर पाता!"

इतने में ब्वाय आ पहुँचा। बोला—"और कुछ?"

श्यामबाबू ने सिर हिला दिया। भजिया का एक टुकड़ा कण्ठ के नीचे उतारते हुए उन्होंने दूसरा पेग मुंह से लगाया ही था कि अरुण ने उत्तर दिया—"कुछ भी हो दादा, हमें अकर्मण्य नहीं बनना चाहिये। अगर प्रगति का कोई मार्ग हम नहीं निकालते, तो हमें पतन से कौन रोक सकता है?"

कथन के साथ अरुण सोचने लगा—'यह मैं अपने-आप से भी कह रहा हूं; मुझे अपना मार्ग बदलना है। अगर प्रियम्वदा को कुछ मालूम हो गया तो बड़ा अनर्थ हो जायगा! वह कुछ भी कर सकती है!'

भीतर-ही-भीतर कांप उठा अरुण—'पत्नी या प्रेयसी, हमें एक को ही चुनना पड़ेगा।'

अब श्यामबाबू के मुख पर क्षोभ का-सा भाव आने लगा। फिर भी वे संयत वाणी में बोले—"आपको जो कुछ कहना हो, सब एक साथ कह डालिये। मुझे जो कुछ भी कहना होगा, अन्त में कहूंगा।"

अरुण ने देखा, उनकी आंखें ही नहीं, कण्ठ की आवाज भी बदल गयी है। उसने पूछा—"आप जानते हैं, इसका क्या परिणाम होगा?"

प्याज का टुकड़ा दांत से काटते-काटते श्यामबाबू ने उत्तर दिया—"परिणाम! परिणाम जानने की क्या जरूरत है, मैं नहीं समझता। वह पहले से जाना भी नहीं जा सकता। आपको मालूम है, उसके लिए हम अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं मानते। एक कारवां है, जो चला जा रहा है; कुछ लोग आगे हैं, कुछ पीछे। हम तो बीच के राही हैं, हमें क्या पता कि पड़ाव कहां पड़ेगा, रात कहां बीतेगी!"

"गैरजिम्मेदारी की हद हो गयी। सभी ऐसा सोचने लगें, तो हमारी क्या स्थिति होगी!"

संगीत चल रहा था—"आगे तिहारी मर्जी...।"

अरुण ने उत्तर दिया—"मनुष्य का इससे बढ़कर पतन और क्या हो सकता है कि वह कर्तव्य की मांग के आगे अपने सारे हथियार डाल दे और सिर पर एक बेशर्मी लादकर कह दे कि मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं! पुरुषार्थ और प्रयत्न से मुंह मोड़कर ग़म ग़लत करने के लिए

सुरापान करे। मैं इस जंगलीपन को पशुवृत्ति मानता हूँ। सच पूछिये तो आप ही जैसे पामर नपुंसकों ने हमारे देश को बदनाम कर रक्खा है!"

"देश को बदनाम किया है राजनीति के उन पुजारियों ने, जो अपने पद और प्रतिष्ठा के लालच में पड़कर नित्य न्याय का गला घोंटा करते हैं। गुण के स्थान पर सम्बन्धों को महत्व देते हुए, वे ज़रा नहीं हिचकते और स्वार्थ-सिद्धि में नयी पौध का भविष्य अन्धकारमय बनाते रहते हैं! देश को बदनाम कर रक्खा है उन आधुनिक चारणों और चाटुकारों ने, जो नयी-नयी योजनाओं की सृष्टि में भ्रष्टाचार को पनपने देते हैं। देश को बदनाम करने की सारी ज़िम्मेदारी उन लोगों पर है, जो समाज के पीड़ित वर्गों का ध्यान न रखकर उसे जड़ तथा निष्प्राण बनाते जाते हैं!"

"आप जैसे सिरफिरे, पथ-भ्रष्ट और पतित व्यक्ति के मुख से राजकीय व्यवस्था की यह आलोचना शोभा नहीं देती।"

बातें शायद और आगे बढ़ जातीं, लेकिन ब्वाय ने आकर हस्ताक्षर के लिए एक वाउचर सामने रखते हुए कहा—"आपको साहब याद कर रहे हैं!"

अरुण जानता था कि क्लब की व्यवस्था हमारी इस बात को सहन नहीं करेगी। अतः वह कुछ सशंकित हो उठा। श्यामबाबू के मुंह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। अरुण ने कहा—"चलिये।" तब वे अभी कुर्सी से उठे ही थे कि क्लब के सेक्रेटरी ने नज़दीक आकर अँगरेज़ी भाषा में कह दिया—"आप लोग इतना ध्यान तो रक्खा करें कि यहाँ और लोग भी हैं।"

श्यामलाल बाबू की आँखें अब लाल हो गयी थीं। सम्भव था कि वे कोई ऊटपटाँग जवाब दे देते। अतएव अरुण ने भी अँगरेजी में कह दिया—"हम लोग अभी डिवीज़नल सुपरिण्टेन्डेन्ट मिस्टर खाडिलकर से मिलकर आ रहे हैं। वे एक नया आदेश निकालने जा रहे थे, जिसके अनुसार आगे किसी भी क्लब को शराब की सप्लाई का परमिट बड़ी कठिनाई से मिला करेगा। अभी एक आदमी को संतुष्ट रखने से आपका काम

चल जाता है। पर उस आदेश के अनुसार भविष्य में आप पाँच आदमियों के मुखापेक्षी हो जायेंगे! इसी विषय पर हम लोग बहस कर रहे थे। हमारी कोशिश तो यही रहेगी कि ऐसा न होने पाये!"

"खाडिलकर साहब से आपका क्या सम्बन्ध है, मैं जान सकता हूँ?"

अरुण ने उत्तर दिया—"जनाब वे मेरी बीबी के भाई के साले के मामू हैं!"

तब उसने मराठी में कह दिया—"बरा-बरा।" फिर हिन्दी में कहने लगा—"आप लोग कूं और कुछ माँगता?"

अरुण ने उत्तर दिया—"नथिंग बड़ा बाबू।"

सेक्रेटरी हाथ हिलाता हुआ चला गया।

श्यामबाबू ने वाउचर पर हस्ताक्षर करके ब्वाय को दे दिया। प्लेट में अभी भजिया के दो टुकड़े बचे हुए थे। श्यामबाबू उनको भी मुँह में डालने लगे। तभी अरुण ने कह दिया—"चलो, जान बची लाखों पाये। अब कभी इतना ज्यादा न पीना कि ऐसी जगह अपमानित होना पड़े।"

श्यामबाबू की आँखों में आँसू छलछला आये थे। रूमाल से उन्हें पोंछते और मुँह चलाते हुए उन्होंने उत्तर दिया—"आपने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। मेरा तो दिल बैठना शुरू हो गया था!"

जब वे अरुण के साथ-साथ चलने लगे, तो उनके पैर डगमगा रहे थे।

गेट पार करके अभी दोनों सड़क पर आये ही थे कि श्यामबाबू बोले—"अगर आप नीलू की समस्या हल कर सकें, तो मैं बड़ा आपका अहसान मानूंगा। आपको पता नहीं कि मैं कितना दुःखी रहता हूँ!"

बात करते-करते वे आँसू पोंछते जाते थे।

६

चार दिन के वाद अरुण जब सिगरेट का धुआँ उड़ाता हुआ अपने फ़्लैट की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था, तब नीलू ऊपर की पहली सीढ़ी पर खड़ी दिखाई दी। उसकी साड़ी बिलकुल श्वेत थी, जिसकी सलवटों में एक क्रम था। श्वेत ब्लाउज के नीचे जो कंचुकी वह पहने हुए थी, वह इतनी कसी हुई थी कि उसके इधर-उधर की मांसल देह तक उभरी हुई जान पड़ती थी, जैसे कंचुकी उसकी देहलता में समा गयी हो। उसके कानों में श्वेत टाप्स तो थे ही, चप्पल भी वह श्वेत ही पहने हुए थी। ग्रीवा में जो माला वह धारण किये हुये थी, उसके मोती वक्ष-प्रदेश से कण्ठ की ओर जाते हुए उत्तरोत्तर छोटे होते गये थे। सुवासित पाउडर से लिप्त गले से मन्द मादक सौरभ फूट रहा था। दिन थे, जब ऐसे अवसरों पर अरुण के ऊपर की सीढ़ी पर चढ़ आने तक नीलकमल यथावत् खड़ी रहती थी। पर उस दिन उसको आता हुआ जानकर भी वह सीढ़ियाँ उतर रही थी। एक सीढ़ी पर जब दोनों आमने-सामने हो गये, तो उनके नयन मिल गये। दोनों ने एक दूसरे को ध्यान से देखा।

अरुण मुसकराता हुआ बोला—"कहाँ ?"

नीलू ने संकोच से पलकें गिरा लीं। केवल इतना कह दिया—"वसन्तप्रभा के यहाँ।"

अरुण के मन में आया—'अगर वह चाहे तो अब भी उसको पा सकता है।' पर वह विचार में पड़ गया—'वह एक जिम्मेदार व्यक्ति है। फिर उसकी प्रियम्वदा क्या किसी से कम है!'

खाना खाते समय वह अपने आप में खो गया था। प्रियम्वदा ने

पूछा—"बात क्या है ? किसी से कहा-सुनी तो नहीं हो गयी ?"

अरुण मुसकराता हुआ थोड़ा रुककर सम्हल गया। फिर उसने सिर हिलाकर कह दिया—"नहीं तो।"

सुरेश पालने में पड़ा सो रहा था। थोड़ी देर खड़ा हुआ वह उसे इकटक देखता रहा। पसीने की बूंदें उसके मुख पर आ गयी थीं। अरुण ने हाथ बढ़ाकर रेग्यूलेटर घुमाते हुए पंखा चला दिया।

"पंखा मत चलाओ" शब्दों के साथ प्रियम्वदा ने जब उसे मना कर दिया, तो वह पंखा बंद करते हुए कुछ बोला नहीं। तब खस का पंखा हाथ में लेकर वह उस पर डुलाने लगा। फिर उठा और रेडियो ऑन करके उसे अत्यन्त मन्द-स्थिति में छोड़ दिया। प्रियम्वदा उसके पास बैठ-कर प्रातःकाल के बनाये हुए शेष बचे पुवे खाने लगी।

अरुण ने पूछा—"बासी चीज़ खाने की यह कौन-सी आदत है तुम्हारी ?"

प्रियम्वदा ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"इसमें आदत का सवाल ही नहीं उठता। घर-गृहस्थी में क्या नहीं होता ? बासी चीज़ें अगर खराब न हुई हों तो कौन उन्हें फेंक देता है !"

अरुण विचार में पड़ गया—'प्रियम्वदा ठीक कहती है।'

फिर उस दिन वह जल्दी सो गया। प्रियम्वदा भी उसके पलंग पर नहीं गयी। रात को तीसरे पहर थोड़ी देर के लिये अरुण की नींद उचटी, पर उसने बत्ती का स्विच दबाने की आवश्यकता नहीं समझी। सोचा—'सुरेश की नींद उचट जायगी।'

इसी समय उसे नीलू का ध्यान हो आया। सिगरेट पीता हुआ वह खिड़की खोलने लगा। उसकी आहट से प्रियम्वदा की नींद उचट गयी। सहमी-सी उठकर वह जो उसके निकट आयी; तो देखा, स्वामी खिड़की पर खड़े शून्य गगन की ओर ताक रहे हैं। झट से उसने अरुण के कन्धे पर हाथ धरते हुए पूछा—"सच-सच बतलाओ, क्या बात है ?"

अरुण घूमकर पीछे हट गया। बत्ती जलाने को जो उसने हाथ बढ़ाया

तो प्रियम्वदा ने उसके हाथ पर अपना हाथ रखते हुए कह दिया—"बत्ती मत जलाओ, भैया जग जायगा।" तब अरुण उसको बाहुपाश में भर कर चूमने लगा—और बोला—"बात यह है, यह।" प्रियम्वदा सिहर उठी।" पर आलिंगन के प्रकार में पड़कर जब अरुण और आगे बढ़ने को तत्पर हुआ तो प्रियम्वदा ने निषेध की वाणी में कह दिया—"ना, भैया अभी बहुत छोटा है !"

अरुण लज्जित होकर बोला—"मुझे ध्यान नहीं रहता रानी ! मैं बहुत गिरा हुआ आदमी हूँ; हूँ न ?"

अब प्रियम्वदा संकुचित हो उठी। बोली—"नहीं तो; मैं तो तुम्हें लाखों में एक समझती हूँ।"

"ख्याल है अपना-अपना" अरुण ने उत्तर दिया।

"होता रहे" प्रियम्वदा जैसे कुछ लाड़ के स्वर में बोली—"मुझे अपने ख्याल से मतलब है।"

अरुण सोच रहा था—'प्रियम्वदा ठीक कहती है।'

तभी प्रियम्वदा बोली—"तुम इस समय खिड़की पर कैसे आ गये, यह मेरी समझ मे नहीं आया।"

अरुण पहले कुछ नहीं बोला।

उसे ध्यान आ गया कि बेला ने कहा था कि और तो सभी प्रकार के पुरुषों का विश्वास किया जा सकता है। केवल एक जाति संसार में ऐसी है जिसका विश्वास न करने में ही कुशल है। और वह जाति है कला-कार की।

ध्यान आते ही वह अनावश्यक रूप से मुसकरा पड़ा। फिर इसी क्रम में नीलकमल का मुख यह कहता हुआ सामने उसके आ गया—'जब तुम इतना सहारा दे रहे हो, तब मुझे और किसी चीज की आवश्यकता नहीं।'

संध्या होने में अभी देर थी। अरुण उस दिन स्टूडियो से जल्दी लौट आया था। निर्देशक को ज्वर आ गया था, इस कारण रिकार्डिंग बन्द कर दी गयी थी। गिरगांव तक आते-आते झुटपुटा हो रहा था। ट्रेन के जिस डिब्बे में वह बैठा था, दादर स्टेशन पर नीलकमल यकायक उसी में आ गयी। बैठने को स्थान कहीं था नहीं। कई स्त्री-पुरुषों के बीच वह अकेली खड़ी हो गयी।

तब दृष्टि पड़ते ही अरुण ने कह दिया—"इधर निकल आओ नीलकमल !"

फिर अपने पास बैठे लोगों से उसने कहा—"वेरी काइन्ड ऑफ यू। थोड़ी-सी जगह तो बनानी ही पड़ेगी।"

कृतज्ञता-ज्ञापन के प्रकार में नीलकमल उसके निकट आती-आती पहले थोड़ा मुसकराई, फिर हाथ का रेशमी रूमाल उसने अधरों से लगा लिया। उपस्थित लोगों के बीच जगह बनाती हुई वह अरुण के बाईं ओर बैठ गयी। उसकी देह-यष्टि के स्पर्श से अरुण थोड़ा कण्टकित हो उठा।

एक बार उसके मन ने कहा—'क्या यह पूछने में कोई हर्ज है कि वह कहाँ से आ रही है ?' पर तभी नीलू ने उसके हाथ में एक मासिक-पत्र देखकर उसे लेने को अपना हाथ बढ़ा दिया।

ट्रेन प्रायः हिलती डोलती है। सटे बैठे हुए लोगों के कन्धे, बाहु और पैरों के घुटने आपस में टकरा जाते हैं। वस्त्रों का स्पर्श तो एक अद्भुत सुरसुराहट उत्पन्न कर देता है।

नीलू के मन में एक बात आती, एक मन से निकलकर भीतर-ही-भीतर विलय हो जाती। त्वचा और शिराएँ ही नहीं प्रभावित हुई, लोम-राशि में एक सिरहन भी वह अनुभव कर रही थी। कुछ लोग बार-बार उस पर दृष्टि डाल रहे थे। एक व्यक्ति पास बैठे हुए अपने मित्र के कान में मुंह डालकर फुसफुसाने लगा था, जो अपने दोनों पैर हिला रहा था।

इतने में अरुण ने धीरे से पूछा—"कहीं काम मिला ?"

नीलू कुछ संकुचित होती हुई बोली—"अभी तो नहीं मिला चाचा

जी ! आज कुछ आशा हो गयी है—शायद एक मराठी नाटक में संवाद बोलने का चान्स···।"

"मुझे बड़ी खुशी होगी।"···अरुण उत्तर देते हुए सोचने लगा—'हालाँकि मानव-प्रकृति वहाँ भी अपना काम करेगी।'

इतने में पास बैठे लोगों में से एक ने अपना टाफ़ी का पैकेट खोल डाला।—"एक तुम लो डियर, एक तुम मोरेराम, एक तुम उड-बी डाइरेक्टर, मगर तुमको दो।"

सभी व्यक्तियों के चेहरे खिल उठे।

अरुण जब एक टॉफ़ी नीलू को देने लगा, तो वह संकुचित हो उठी। धीरे से बोली—"इच्छा नहीं हो रही है। अच्छा हो आप मुझे क्षमा कर दें।"

अरुण ने फिर आग्रह नहीं किया। उसके मन में आया—'बड़ी भावुक जान पड़ती है। आज जैसा जगत बन गया है, उसको देखते हुए बहुत पीछे है। इसीलिए काम नहीं मिलता। इसीलिए कोई लिफ़्ट नहीं देता। बेचारी संघर्षों में पिस रही है। मगर फिर यह आधुनिक वेश-विन्यास—यह छवि-माधुरी !'

उसने मत्थे पर हाथ रख लिया। परेल स्टेशन पार हो गया था। सहसा अरुण ने पूछा—"नाटक में संवाद बोलने का काम किसके हाथ में है ?"

"मेरी एक सखी वसन्तप्रभा के स्वामी हैं—बड़ी साधु प्रकृति के, परोपकारी और उदार। कल उन्होंने रेडियो-स्टेशन पर मिलने के लिये कहा है। देखिये क्या होता है !"

—'हूँ, वसन्तप्रभा के स्वामी, बड़ी साधु-प्रकृति !'

अरुण सोचने लगा—'साधु प्रकृति के लोग बड़े परोपकारी होते हैं। किसी को काम-दिलाने में उनका कोई आन्तरिक स्वार्थ नहीं होता !··· उसे पूछना ही पड़ेगा।'

"उनका नाम क्या है ?"

"नाम ? नाम तो उनका···" नीलू सोचने लगी, फिर पलकें उठाती-गिराती हुई बोली—"विष्णुपद शिवपद गोखले।"

"अच्छा नाम है।" अरुण ने उत्तर दिया। साथ ही उसने देखा—नीलू जब पलकें उठाती-गिराती है, तब बहुत अच्छा लगता है।...जान पड़ता है, उसके मानस-लोक में कोई विपर्यय हो रहा है। फिर उसके मन में आया—अच्छे-भले नामवालों के काम भी बड़े ऊँचे होते हैं !

एक मुसकान उसके मुख पर क्रीड़ा करने लगी। गाड़ी चली जा रही थी ! बाम्बे-सेण्ट्रल भी पार हो गया था। नीलू जो मासिक-पत्रिका पढ़ रही थी, उसके अक्षर और शब्द चलते-से जान पड़ते थे। कभी जो उसकी दृष्टि सामने बैठे लोगों पर जा पड़ती, तो उसे यह सोचकर कुछ कुतूहल होता है कि ऐसी क्या बात है जो इन लोगों की दृष्टि मुझ पर अटक जाती है ? क्या मुझ में कोई विचित्रता है ? क्या मैं अपने व्यक्तित्व में कोई ऐसा आकर्षण रखती हूँ कि लोग मुझे देखते रह जाते हैं ? उसे कुछ संकोच भी हो रहा था और वह कुछ गौरव का भी अनुभव कर रही थी।

फिर वह विचार में पड़ गयी।

शिवपद जी का व्यक्तित्व सचमुच प्रभावशाली है। पर इनकी रुचियाँ अजीव हैं। रूमाल को तहाकर डेढ़ इंच की पट्टी बनाकर गले में लपेट लेते हैं; कमीज़ का कालर उसके ऊपर रहता है। बायें हाथ में रिस्ट-वाच के नीचे भी इसी तरह की एक रेशमी पट्टी बाँधते हैं। कान के ऊपर जो सफ़ेद बाल हैं उनको एक खास तरह की पेन्सिल से काला कर लेते और चाय में सन्दल-आयल की दो बूंदें डालकर पीते हैं। स्वागत-सत्कार में तो अति कर देते हैं। भाभी से कहने लगे—इनको कोई ऐसी चीज खिलाओ, जिसको ये सदा याद रक्खें। और यह बात तो उन्होंने कई बार कह डाली कि तुम अब तक मुझसे क्यों नहीं मिलीं ? मैं जब चाय पी रही थी, तब उन्होंने पूछा—'तुम्हें मधुरता से विशेष अनुराग तो नहीं है ? मैं जरा फीकी चाय पसन्द करता हूँ।' और भाभी जब मुझे अन्दर ले जाने लगी, तब तो उन्होंने यहाँ तक कह डाला—'जाओ-जाओ, स्त्रियों में पर-स्पर जैसी बातें होती हैं, वैसे तो मैं कर नहीं सकता।' आदमी सब तरह से दिलचस्प जान पड़ता है।'

ग्रैण्टरोड निकल गया था। वार्ता का अन्य प्रसंग सोचते हुए अरुण ने पूछा—"घर से कै बजे निकली थीं ?"

नीलू बोली—"ग्यारह बजे वसन्तप्रभा के यहाँ पहुँच गयी थी।"

अरुण ने कह दिया—"शायद वही लड़की है, जो तुम्हारे जन्म-दिन पर आयी थी और जिसने तुमको एक वेनेटी-पर्स दिया था।"

नीलू मुसकराती हुई बोली—"हाँ, वही।"

इतने में चरनीरोड स्टेशन आ गया। दोनों प्लेटफ़ार्म पर उतर पड़े। सड़क के फ़ुटपाथ पर आकर अरुण ने पूछा—"खाना तो अभी तुमने खाया नहीं होगा ?"

पलकें उठाते हुए नीलकमल ने उत्तर दिया—"नहीं।"

अरुण बिना कुछ कहे उसे एक ऐसे होटल में ले गया, जहाँ खाना बहुत अच्छा मिलता था। नीलू को एक केबिन में बिठलाकर अरुण तुरन्त आदेश देने चला गया। थोड़ी देर में दो प्लेट भजिया, साथ में चटनी और शीशे के दो गिलासों में एक पेय आ गया।

नीलू अवाक्-स्तब्ध हो उठी। उसके मन में आया—'यह मैं कहाँ आ फंसी ! ये सुरा पीते हैं, मैं इसकी कल्पना भी नहीं करती थी ! खैर, जैसे भी हो, मुझे अपनी रक्षा तो करनी ही होगी, तब वह बोली—"मुझे तो आप क्षमा ही कर दें।"

अरुण ने जवाब दिया—"कोई किसी को क्षमा नहीं करता; अपने-अपने अधिकार का उपयोग सब करते हैं।"

नीलू पहले कुछ नहीं बोल सकी। बात-की-बात में उसकी आँखें डबडबा आयीं। अब तक वह अरुण से कई बार पचास-साठ रुपये ले चुकी थी। एक बार उसके मन में आया--'मैं कृतज्ञता अथवा उपकार को किसी मूल्य पर बेच नहीं सकती।'

इतने में अरुण ने कह दिया—"यह तो तुम मानोगी कि अभाव सबके जीवन में रहते हैं। संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं, जिसे कोई दुःख न हो। और तुम कम दुःखी नहीं हो, इतना मैं जानता हूँ। ऐसी दशा में, कुछ

घड़ियों के लिए अगर हम अपने दुःखों को भूलने की चेष्टा करें, तो इसमें मैं कोई बुराई नहीं मानता।"

दृढ़ता से नीलू बोली—"मैं आप से बहस नहीं करना चाहती। बस इतना ही चाहती हूँ कि आप इसके लिये मुझे मजबूर न करें।"

कथन के साथ वह सोचने लगी—'मैं कभी इनसे कोई सहायता न लूंगी।

तब अरुण ने कह दिया—"सिर्फ आज; अगर आज तुमने मेरा कहा न माना, तो मुझे बड़ा दुःख होगा। मैं यही समझूंगा, तुम मेरे विषय में कुछ अन्यथा सोचती हो।"

उत्तर में कुछ कहती-कहती वह एक क्षण तो रुक गयी। उठी हुई पलक एक बार विनत हो उठीं—'कहीं आंसू न आ जायँ।' फिर मन में आया, सुरापान के बाद तो फिर पतन की अन्तिम सीढ़ी ही शेष रह जाती है!'

अन्त में उसने कह दिया—"ऐसा मत कहिये। आप नहीं जानते, मैं आपका कितना आदर करती हूँ!"

"अगर तुम मेरा आदर करती होतीं, तो मेरा आग्रह कभी टाल नहीं सकती थीं।" नीलू के कानों में कोई कहने लगा—'जब घर में खाने को न होगा, सुशीला भूखी ही कालेज चली जायगी, तब?'

तब उसकी आँखें डबडबा आयीं! वह रुकती-रुकती बोली—"अगर आप नहीं मानते, तो···।"

तब दोनों गिलास एक साथ ऊपर उठ गये और उनके शिरोभाग एक-दूसरे से टकराने की स्थिति में आ गये!

अरुण गिलास होठों से लगाने जा ही रहा था कि यकायक उसके मस्तिष्क में कल्पना की एक ऐसी लहर दौड़ गयी कि वह अपने भविष्य का एक भयानक स्वप्न देखने लगा: 'नीलकमल के पति संयोगरंजन शोकविह्वल अवस्था में चुपचाप मूक, दग्ध और जड़ होकर बैठे हुए हैं। उनके सम्मुख नीलकमल का प्राण-विहीन शव रखा हुआ है। उसका सिर तो उनकी अपनी दायीं जानु पर है। वह स्वयम् अवाक् होकर स्थिर खड़ा-का-खड़ा रह गया है। कोठी के सभी आवासों के वयस्क

Library Sri Pratap College

नर-नारियों से उसका घर ही नहीं, बरामदा भी एक छोर से दूसरे छोर तक भरा हुआ है। कहा जाता है कि नीलकमल ने विषपान कर आत्मघात कर लिया है !

इस घटना का समाचार सुनकर जो आता है, वही केवल एक प्रश्न कर देता है—'मगर इस आत्मघात का कारण ?'—लोग तरह-तरह के जवाब देते हैं। कोई कहता है—'विश्वासघात के कारण ही मनुष्य आत्मघात नहीं करता। ऐसा भी होता है कि अपने ही किये पाप को, जब वह सहन नहीं कर सकता, वह आत्मघात कर लेता है !'

सहसा इस परिस्थिति की कल्पना में डूबकर अरुण बोल उठा—"ठहरो ! सुरापान करने के लिये अनुरोध के रूप में अब तक जो भी तर्क तुम्हारे सामने मैंने उपस्थित किये हैं, मैं उन्हें वापस लेता हूँ। अब यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है कि तुम सुरा-पान करो या न करो। व्यक्तिगत रूप से मेरा कोई आग्रह नहीं है।"

नीलकमल के लिये यह स्थिति नयी थी। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो उसके पैरों में चप्पल नहीं है। अपने घर के आँगन में ही वह टहल रही है। अकस्मात् आगे बढ़ते-बढ़ते वह दहकते हुए अंगार पर अपना पैर रखने जा ही रही थी कि बाद की परिस्थिति में उसे बोध हुआ—अरे यह तो हिमाद्रि-शिला है !

सुरा से भरा हुआ गिलास ऊपर उठकर टेबल पर गया। उसकी गम्भीर भंगिमा में अचानक हास की रेखा दौड़ गयी।

नीलकमल बोल उठी—"तुम मनुष्य नहीं, देवता हो ! तुमको पहचानना बड़ा कठिन है। मैं ऐसा कुछ न जानती थी। अब तक मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में जो कुछ सोचा था, तुमने इन क्षणों में उसे बिलकुल मिथ्या और व्यर्थ सिद्ध कर दिया ! लाओ तुम्हारे पावन चरण चूम लूं, ताकि पाप की आशंका का कोई भी मैल मेरे मन में न रह जाय !"

दो घूंट सुरा कंठ के नीचे उतारता और विद्रूप हास्य के साथ मुंह बनाता अरुण बोला—"कलाकार को समझने में एक तुम ही नहीं,

बहुतेरे लोग इसी तरह भूल कर बैठते हैं !"

नीलकमल ने दाँयें हाथ से अरुण के पैर छूकर अँगुलियों को अपने होठों से लगा लिया। चुम्बन की मुद्रा में पलकें आधी खुली रह गयीं। फिर सर्मपिता-सी बनकर वह विह्वल-प्राणा बोली—'अन्तर मम विकसित करो अन्तर-तर हे !'

अरुण नीलकमल की आँखों की पुतलियों पर टकटकी लगाये हुए था। कभी अधरों की चीरन रह-रहकर विकसित हो उठती; कभी आगे के श्वेत दो दाँत भी उठते।

इतने में अरुण ने गिलास हाथ से उठाते हुए कह दिया—"एक बात तुम्हें नहीं मालूम है, नीलम।"

उस क्षण नीलकमल को जीवन का सारा दुःख-दर्द दूर होता-सा जान पड़ता था। एक मधुर मादक स्वप्न-सा देखती, मन्द-मन्द मुसकराती हुई वह बोल उठी—"एक क्या, हो सकता है, मुझे ऐसी बहुतेरी बातें मालूम न हों, जिनका सम्बन्ध तुमसे—केवल तुम से है !"

अरुण ने पूछा—"जैसे !"

नीलकमल बोली—"जैसे तुम्हारा यह प्यारा सम्बोधन !"

"अच्छा नहीं लगता ?"

"लगता है।" कहती-कहती नीलकमल इतनी सिहर उठी कि उसे प्रतीत हुआ, जैसे उसके उरोजों के शिखर कुछ और तन गये हों !

अब एक-एक क्षण उसे कल्पनातीत जान पड़ता था।

मुसकराता हुआ अरुण बोला—"तो मैं तुम्हें नीलम ही क्यों न कहा करूँ ?"

"तो कहा करो न, पूछते क्यों हो मुझसे ! ऐसा तो है नहीं कि सभी कुछ तुम मुझसे पूछ-पूछकर करोगे ?"—कथन के साथ नीलकमल सोचने लगी—'ऐसी घड़ियाँ जीवन में कम आती हैं। आँखें मूंद लेने पर कहीं कोई शेष नहीं रहता !'

विनत नयन होकर वह आगे और कुछ कहने जा रही थी, तभी

अरुण ने पूछा—"कल तुम कहीं दिखायी ही न पड़ीं !"

"कल ? जानते हो, जब तुम रात के ग्यारह बजे सरोद बजा रहे थे, तब मैं रो रही थी !"

"अरे ! मगर क्यों ?"

"तुम्हारे संगीत ने मेरी प्राणान्त पीड़ा का अंचल थाम लिया था !"

"या जीवन भर की कामनाएँ, सारी-की-सारी एक साथ जाग उठी थीं ?"

"ऊँहँ, उनमें आग लग गयी थी !"

"वह्नि-शिखाओं के एक बार ज्वलन्त हो उठने के बाद फिर तो दर्द कुछ शान्त हो जाता है।"

अरुण अब अपना पेय समाप्त करने जा रहा था। तब तक नील-कमल निःश्वास लेती-लेती बोली—"मैं सोचती हूँ, इस पेय के बदले अगर तुम मुझे विष पिला देते, तो भी मैं इन्कार न करती !"

"तब तुम अपने आपको धोखा दे रही हो ! इस तथ्य में कुछ भी वास्तविकता होती, तो तुमने यह गिलास खाली कर दिया होता !"

नीलकमल से तत्काल कोई उत्तर न बन पड़ा। तब अन्त में उसने कह दिया—"अच्छा, अगर यह पेय मैं पी डालूं तो कैसा हो ?"

"पीकर देख लो।"

"तुम कहो तो पी लूं।"

"और न कहूँ तो ?"

"तब मैं नहीं पी सकती !"

"जब तुम्हें कामनाओं की पीड़ाओं को जला डालने में अच्छा लगता है, तब मेरा ख्याल है, यह पेय भी अच्छा ही लगेगा।"

"तो फिर पी लूं ?"

और कथन के साथ नीलकमल ने गिलास होठों से लगा लिया।

पहला घूंट पीने के बाद उसने मुंह बनाते हुए कहा—"यह तो बड़ी कड़वी है। मैं इसे कैसे पी सकूंगी।" अपना गिलास वह मुंह से

लगाये हुए थी। उसका हाथ काँप रहा था। हृदय की बढ़ी हुई धड़कनों के साथ एक बार तो ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके आगे अँधेरा छा गया है; ऐसा अँधेरा जो इस नरक को स्वर्ग बना देता है!

अरुण मुसकराते हुए बोला—"कड़वी भेषज बिन पिये, मिटै न तन की ताप।···पियो-पियो और इतना जान लो कि प्रत्येक सुअवसर अपने लिये बना है।"

अभी पाँच मिनट भी नहीं हो पाये थे कि नीलकमल ने अनुभव किया—'पंखे की हवा बड़ी प्यारी लग रही है। काश यह संसार भी ऐसा सुहावना होता।'

भजिया का एक टुकड़ा मुंह में डालते हुए अरुण बोला—"अन्त में तुमको इस दवा की सारी कड़वाहट मधुर जान पड़ेगी?"

"क्यों? ऐसी भी कोई दवा होती है, जो पहले कड़वी और बाद को मीठी लगती हो!" अब नीलू के मुख पर उल्लास खेलने लगा था।

अरुण ने सिगरेट का एक कश लेकर कह दिया—"मैं अवसर को मानता हूँ। उसका भक्त हूँ; उसकी पूजा करता हूँ।"

जब पेय का दो तिहाई अंश इस प्रकार की बातों में समाप्त हो गया, तब दो थालों में खाना आ गया। अरुण बोला—"कुछ कहती जाओ, नीलम! ऐसे क्षण जीवन में बार-बार नहीं आते। तुम भी मुझको दादर स्टेशन पर बार-बार नहीं मिलोगी।"

भोजन करते समय जब नीलकमल मौन हो गयी, तो अरुण ने अपनी थाली के बैंगन की कलौंजी नीलू की थाली में डाल दी और उसकी थाली की कलौंजी अपनी थाली में रख ली।

प्रतिक्रिया में नीलू के पलक उठ गये, वह उसकी ओर एकटक देखती रह गयी। फिर एक निःश्वास लेकर वह बोली—"यह आपने क्या किया?"

ऐशट्रे में सिगरेट की राख झाड़ते हुए अरुण बोला—"क्यों? इसमें तुमको कोई आपत्ति है?"

नीलू ने उत्तर दिया—"आप बड़े हैं। अगर आपकी जूठन मैं ग्रहण

भी कर लूं तो इसमें कोई बुराई नहीं है। लेकिन अ-आप आपको तो मेरी जूठन ग्रहण नहीं करनी चाहिये।"

अरुण उस समय नीलू के वक्ष-कन्दुकों को देखता हुआ सोचने लगा—'सौन्दर्य कभी जूठा नहीं होता।' तब उसने उत्तर दिया—"तुम्हें शायद मालूम नहीं कि हम सब एक हैं। एक हो जाने पर आपस के आदान-प्रदान में जूठन का भाव नहीं रहता। तुमको भी ऐसा नहीं सोचना चाहिये नीलू।"

नीलू चुप रह गयी। अरुण पुनः बोल उठा—"जब तुम मौन हो जाती हो, तब मुझे मृत्यु की याद आ जाती है!"

नीलू कम्पित हो उठी, उसके नयन सजल हो गये। तब वह आंसू पोंछती हुई बोली—"आप मेरे साथ बड़ा अन्याय कर रहे हैं!"

"ओः, तो तुम उस मृत्यु से डरती हो, जो कभी अन्याय नहीं करती। तुम्हें मालूम है, मैं संगीत-निर्देशक ही नहीं, गायक भी हूं। ऐसा गायक जिसको सभी जगह सम्मान मिलता है। लेकिन सरकार ने कभी वह मुझे समादर नहीं दिया, जो अन्य लोगों को। मेरा विश्वास है 'दिवंगत हो जाने पर ही लोग मेरा मूल्यांकन करेंगे। उस समय उनके वे चाटुकार सलाहकार भी पछताएँगे और मानेंगे कि सचमुच उनके साथ न्याय नहीं हुआ।' उस समय तुमको मेरा स्मरण आयेगा। मेरा आग्रह टाल देने की बातें सोच-सोचकर ऐसा नहीं है कि तुम अपने आंसू रोक सको। मैं कभी सोच नहीं सकता कि तुम मेरा आग्रह टालोगी!"

तब नीलू बोली—"पर आप जानते हैं, इस बात का वचन देना मेरे लिये कितना कठिन है। हम सबकी अलग-अलग अपनी-अपनी सीमाएँ हैं, इतना तो आप मानेंगे ही।"

"मैं सीमाओं को नहीं मानता। जब मैं तुमको अपना समझता हूँ, तब तुमको भी यह अधिकार हो जाता है कि तुम मुझे अपना समझो।"

उसके गिलास में थोड़ा-सा पेय, जो उस समय तक बाकी रह गया था, उसको एक साथ कण्ठगत करते-करते तत्काल उसने अपने बैग के

भीतर से पास बुक निकालकर नीलू के सामने पटक दी। इसके बाद एक तेवर के साथ वह बोला--"बीस हज़ार से ऊपर ही मेरा बैंक-बैलेन्स होगा। यह सब तुम्हारा है। जितना तुम कहो, उतने का चेक काटकर अभी तुम्हें दे दूं!"

नीलू को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। इतनी प्रसन्नता उसे जीवन में कभी नहीं हुई थी। कमरे की प्रत्येक वस्तु अब उसे सत-रंगी जान पड़ती थी। उमंग में आकर अपने गिलास का आधे से कुछ अधिक बचा हुआ पेय उसने एक वार में समाप्त कर कर दिया!

खाना चलता रहा। नीलू अपना सारा दुःख भूल गयी। यह परिस्थिति उसके लिए बिलकुल नयी थी। उसकी धमनियों में एक ऐसी उत्तेजना उत्पन्न हो रही थी, जिसका उसने कभी अनुभव नहीं किया था।

उमंगों का स्फुरण क्रमशः बढ़ता जाता था। नीलू कभी इस स्थिति में न आयी थी कि उसको सारी आस्थाएँ, विश्वास और नैतिकता के सारे प्रतिबन्ध जड़ और खोखले जान पड़े हों! वह अपने आपको एक ऐसे प्रवाह में पा रही थी, जिसमें आदमी तो क्या, भारी-से-भारी पेड़ अपनी दस-दस हाथ लम्बी जड़ें तक उखड़ते टुकुर-टुकुर देखते समूल बहे चले जाते हैं! अन्त में टेबिल की ओर अपना वक्ष-प्रदेश झुकाकर उसने कह दिया—"तुम्हारी यह कृपा, नहीं-कहीं अब मैं इसे प्यार ही कहूँगी, मेरे लिए बहुत है। मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि तुम मुझे इतना चाहते हो!"

उस क्षण अरुण टेबिल पर अपनी कोहनियाँ टिकाये हुए था। यहाँ तक कि उसका मुख नीलू के मुख के पास पहुँचना चाहता था। पर थोड़ा स्थिर रहकर पलक उठाये मुग्धविह्वल होकर उसने देखा—नीलू के नयनोत्पल मुंद रहे हैं, अधर-से-अधर मिलने को तत्पर हैं। उसका एक हाथ नीलू की ग्रीवा पर पहुँच रहा है।

तभी प्रथम चुम्बन लेते-लेते उसके मुंह से निकल गया—"मुझे तुमसे

ऐसी ही आशा थी।"

अब बादल छँट गये थे। त्रयोदशी की उजली रात बड़ी सुहावनी जान पड़ती थी। गिरगाँव मेनरोड के फुट-पाथ पर साथ-साथ चलते हुए अरुण ने कहा—"ऐसा करो नीलम कि तुम अपने कमरे में पहले पहुँच जाओ, मैं थोड़ी देर बाद आऊँगा। हमारे रास्ते का हर एक पग जोखिम से भरा हुआ है। इसलिये हमें बहुत सम्हल-सम्हलकर चलने की आवश्यकता है।"

नीलू हँसने लगी।

अरुण बोला—"इसमें हँसने की क्या बात है?"

गम्भीर होती-होती नीलकमल ने उतर दिया—"हँसने की तो बात ही है। तुम किस-किसको चकमा दोगे? माना कि बहुत दिनों तक घर के लोग हमारा भेद न जान पायेंगे; लेकिन तुम उस ईश्वर को कैसे चकमा दोगे जो हमारा नियन्ता है?"

"सब बकवास है। कोई किसी का नियन्ता नहीं है। हम स्वयम् अपने नियन्ता हैं। जिन पावन घड़ियों की सृष्टि आज हमने अपने जीवन में की है, उनके संचालक हम स्वयम् हैं। दादर-स्टेशन पर जिस डिब्बे में तुमने क़दम रक्खा था, उसके अन्दर बैठा हुआ मैं मिल जाऊँगा, इसका उस समय तुमको बिलकुल ज्ञान नहीं था। नहीं था न?"

नीलकमल मुसकरा रही थी। अरुण बोलता चला जा रहा था—"उसके बाद हमने परस्पर मिलकर एक-दूसरे का जो अनुभव प्राप्त किया, उसके नियन्ता हमीं हुए न?"

नीलकमल ने कोई उतर नहीं दिया। अब भी उसका मन यही कह रहा था—"मैं नहीं मानती कि इन संयोगों की रचना में भगवान का कोई विधानात्मक हाथ नहीं है।

नीलकमल जब अपने कमरे में पहुँची, तो श्यामबाबू सो रहे थे।

सुशीला भी लेट रही थी। द्वादशी माला फेर रही थी। एक मिनट के भीतर माला समाप्त करती हुई वह बोली—"आज बड़ी देर कर दी।"

"हाँ देर हो गयी। मैंने सोचा, कुछ-न-कुछ प्रबंध कर के ही चलना ठीक होगा।"

"तो कुछ काम हो गया?"

"हाँ, पचास रुपये का चेक मिला है।"

द्वादशी आकाश की ओर हाथ जोड़कर बोली—"हे भगवान! तुम्हारे कितने बड़े-बड़े हाथ हैं!"

७

नीलकमल की कुछ सखियां और थीं, जिनमें एक थी वसंतप्रभा। उसके स्वामी शिवपद गोखले रेडियो-स्टेशन में मराठी नाटक-विभाग के अधिकारी थे। उनको हस्त-रेखाओं का थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य था। उनके निष्कर्ष भी कभी-कभी सही निकलते; किन्तु उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध था कि वह स्त्रियों की हस्तलिपि का भेद बतलाने में बड़ी रुचि रखते हैं।

नीलकमल का जैसा अनिश्चित जीवन व्यतीत हो रहा था। उसका किंचित् आभास गोखले महाशय को वसन्तप्रभा से मिल गया था। नीलकमल को यद्यपि उन्हें अपनी हस्तलिपि दिखलाने की कतई इच्छा न थी, किन्तु गोखले बाबू इस विषय में बड़े ही कृपालु और परोपकारी थे। यदि कोई अपना हाथ दिखलाने में संकोच करता प्रतीत होता, तो वे सोचने लगते कि इसके जीवन में अवश्य ही कोई विलक्षण बात होगी। तब इस रहस्य को जानने की लालसा उनमें इतनी प्रबल हो उठती कि उसका हाथ देखने का प्रस्ताव वे स्वयं कर देते।

संयोग की बात, एक दिन नीलकमल ऐसे समय आ पहुँची, जब वसंतप्रभा रसोई-घर में बैठी खाना पकाने में संलग्न थी। गोखले साहब ने नीलकमल को आग्रह के साथ अपने सामने आसन दिया। फिर शिष्टाचार की बातों के साथ उसका हाथ देखने का भी प्रस्ताव कर दिया। नीलकमल को कुछ संकोच तो हुआ, किन्तु वह इनकार न कर सकी। उसे आशा थी, गोखले साहब मुझे कुछ काम अवश्य दिलायेंगे। पर जल्दीबाजी वह नहीं करना चाहती थी। सोचती थी—हर एक कार्य के लिए एक अवसर होता है।

गोखले साहब नीलकमल का हाथ अपने हाथ में लेकर बड़ी देर तक देखते रहे। नीलकमल को कभी जो एक प्रकार की सिहरन का अनुभव होता तो वह भीतर से कम्पित हो उठती। पर संकोच के मारी बेचारी कुछ कह न सकती।

अन्त में गोखलेजी ने कह दिया—"तुम्हारे जीवन में चढ़ाव-उतार बहुत होंगे।"

नीलकमल को सहसा अरुण का ध्यान हो आया—'वे जब सरोद बजाते हैं, तब मैं अपनी पलकें मूंदकर आनन्द-विह्वल हो उठती हूँ। ऐसा जान पड़ता है, मानो वे उन पलकों को अपना प्यार दे रहे हों!'

स्वामी की बात वह सोचना न चाहती थी। मुश्किल से दस दिन वहां रह पायी थी। वे दस दिन अब भी उसके जीवन पट पर अंकित थे। एक दिन एकाएक वे बोल उठे थे—"मुझे सब मालूम हो गया है। तुमसे अब इस सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। अच्छा हो, तुम अपने पिता को पत्र लिखकर बुला लो। मैं उसी दिन तुमको सदा के लिए विदा कर दूंगा।"

वह कुछ बोलने की स्थिति में न थी। फिर भी उसने पूछा—"किस कारण मुझे ऐसा प्राणान्तक दंड दे रहे हो, क्या मैं जान सकती हूँ?"

उस समय वे इतने आवेश में थे कि तपाक से बोल उठे—"बात करना दूर रहा, मैं अब इस घर में तुम्हारी शकल भी नहीं देखना चाहता।"

इतना कहकर वे तुरन्त कहीं चले गये। यहाँ तक कि विदाई के समय तक नहीं लौटे। कई मास बाद पता चला था, कॉलेज मे लौटते समय पीछा करने और छेड़ने के कारण जिस युवक की उसने एक बार चप्पल से मरम्मत कर दी थी, उसी ने उन्हें बहका दिया था। किसी से अपने नाम पत्र लिखवाकर पोस्ट-आफिस में छोड़ दिया और फिर वही उनको दिखा दिया। बिना इस बात की परीक्षा किये कि उस पत्र की हस्तलिपि मेरी है भी या नहीं, उन्होंने इतना बड़ा दण्ड मुझे दे डाला था!

एकाएक नीलकमल का हाथ कांप उठा और उसके मुख पर पसीना

आ गया। वह विचार में पड़ गयी—'अगर कहीं कुछ ऐसा उलट-फेर हो गया...।'

इतने में गोखले साहब बोले—"तुमको प्रेम करनेवालों की संख्या काफ़ी बड़ी होगी, किन्तु सफलता किसी एक को ही मिलेगी।"

अब नीलकमल चुप न रह सकी। बोली—"इस तरह की बातें सुनने का मुझे अभ्यास नहीं है गोखले साहब!" उसने झट से अपना हाथ खींच लेना चाहा, पर तब तक गोखले साहब बोले—"तुमको अर्थ-कष्ट रहेगा, किन्तु तुम्हारा कोई कार्य रुकेगा नहीं। जिस व्यक्ति पर तुम विश्वास करोगी, वह तुमको कभी धोखा न देगा।"

बहुत झुककर हाथ देखने में कभी-कभी गोखले साहब का सिर नीचे हो जाता और नीलकमल का मुख ऊपर। तब एक ऐसा भी क्षण आया, जब नीलकमल की दृष्टि गोखले साहब की खोपड़ी पर जम गयी, जो कुछ गंजी हो चली थी। बड़ी कठिनाई से वह अपनी हँसी रोक पायी।

तब तक गोखले साहब बोले—"थोड़ा आगे चलकर उसका नतीजा तुम्हारे हित में होगा। पर सन्तान-योग तुम्हारा बड़ा कमज़ोर है।"

अब नीलकमल ने अपना हाथ खींच लेना चाहा। गोखले साहब उसे और भी ज़ोर से थामते हुए बोले—"ठहरो। हाँ, तुम्हारे सम्बन्ध में समाज मे तरह-तरह की बातें उठा करेंगी, लेकिन तब तक कला के क्षेत्र में तुम्हारी कीर्ति इतनी अधिक बढ़ जायगी कि कोई तुम्हारे मुँह पर कभी कुछ कह न पायेगा।"

अब नीलकमल के मुख पर एक उल्लास की झलक दिखायी देने लगी थी। तब तक गोखले साहब ने कह दिया—"स्वामी के साथ तुम्हारी खटपट अवश्य रहेगी, किन्तु बाद में उसको भी तुम्हारे सामने अपनी हार स्वीकार करनी पड़ेगी।"

गोखले साहब बहुत रस ले-लेकर ये बातें कहते जा रहे थे। अन्त में नीलकमल ने रूमाल से मुँह का पसीना पोंछते हुए यह कहकर अपना हाथ खींच लिया कि बस इतना बहुत है।

कथन के साथ न जाने क्या सोचकर वह मुसकरा रही थी, यद्यपि उसकी आँखें सजल हो उठी थीं।

इतने में ही अपना काम समाप्त करके वसन्तप्रभा भी आ गयी। नीलकमल के नयनोत्पल सजल देख उसे समझते देर न लगी कि स्वामी ने उसका मर्मस्थल झकझोर दिया है। उनका यह व्यवहार उसे अच्छा न लगा।`` नीलकमल उनके प्रति क्या सोच रही होगी ? इस विचार से वह पहले तो कुछ संकुचित हुई; किन्तु प्रसंग बदलकर वातावरण हलका करने के उद्देश्य से उसने स्वामी की ओर अपना हाथ बढ़ाते हुए कह दिया—"बहुत दिनों से मुझे टरका रहे हो आज तो तुमको मेरा हाथ देखना ही होगा।"

गोखले साहब इस समय मनोविनोद के सिन्धु में डुबकियाँ लगा रहे थे। अपने ज्योतिष-ज्ञान की धाक जमाते हुए एक मुसकान के साथ उन्होंने वसन्तप्रभा की हथेली थाम ली। रेखाओं पर कुछ संपुटित नेत्रों से ज्योंही उन्होंने एक दृष्टि डाली, वसन्तप्रभा ने अपना हाथ खींचते हुए कह दिया—"चलो, अब रहने ही दो। देख लिया तुम्हारा ज्योतिष का पाखण्ड ! मैं तो पहले से ही सब समझती थी; किन्तु सोचती थी कि हो-न-हो तुम्हें कुछ ज्योतिष आती ही हो।"

गोखले साहब कुछ अप्रतिभ से होकर, बोले—"क्यों क्या हुआ ?"

"हुआ क्या, तुम्हें तो इतना भी पता नहीं कि स्त्रियों का दायाँ नहीं, बायाँ हाथ देखा जाता है।" कहते हुए वसन्तप्रभा ने नीलकमल की ओर देखकर हँस दिया।

नीलकमल को लगा कि जीत वसन्तप्रभा की नहीं, उसी की हुई है। तब वह भी हँसने लगी।

इतने में ही गोखले साहब ने कह दिया—"सच कहा है किसी ने कि स्त्रियों के ज्ञान का क्षेत्र बिलकुल रबड़ जैसा होता है; चाहे जितना फैलाओ, छोड़ दो तो फिर अपनी जगह पर ! अरे तुम्हें यह भी नहीं मालम कि दाएँ हाथ की रेखाओं में स्त्री के पति का भविष्य अंकित

होता है। तुम्हारा भविष्य अब स्वतन्त्र तो रहा नहीं। वह मुझमें मिल गया है। ब्याह के बाद नारी का स्वतन्त्र व्यक्तित्व क्या अर्थ रखता है ? खैर जाने दो। तुम कहती हो तो लाओ, बायाँ ही देख लूं।"

गोखले साहब को अपने मन की तरंगों के साथ खेल करने में बड़ा आनन्द आता था। उनकी पत्नी वसन्तप्रभा स्नेहशीला अवश्य थी; पर इसके साथ-ही-साथ वह मानिनी और ईर्ष्यालु भी कम न थी। उसके दो बच्चे भी थे। एक प्रकार से उनका गार्हस्थ्य जीवन अपने आप में परिपूर्ण था। फिर भी न जाने क्या बात थी, जिसे गोखले साहब नीलकमल में तो देखते थे; किन्तु वसन्तप्रभा में न देख पाते थे !

फिर उनके मन में आया—अगर इस अवसर पर वसन्तप्रभा मेरे हाथ में नीलकमल का हाथ—उस हाथ पर रक्खी और रेंगती मेरी अँगुलियाँ भी देख लेती, तो न जाने क्या-क्या सोच जाती ! ···निश्चिन्त होकर वे तब वसन्तप्रभा का हाथ देखने लगे। उस हाथ को अपने हाथ में देर तक रखकर वे उसी भाँति उलटते-पुलटते रहे, जिस तरह नीलकमल के हाथ को। दोनों प्रकार के हाथों की कोमल मांसलता, उनकी रक्ताभ लालिमा और गुदगुदी की तुलना करने में उन्हें स्पष्ट बोध हो गया कि नीलकमल की बात ही और है।

फिर वसन्तप्रभा की हस्त-रेखाओं के सम्बन्ध में बोलते हुए उन्होंने बतलाया—"तुम्हारे गुण-शील-स्वभाव की सारी बातें इन रेखाओं में लिखी हुई हैं। जहाँ तक कर्तव्य-पालन का सम्बन्ध है, किसी भी पति के लिए तुम आदर्शपत्नी बन सकती हो। तुममें स्नेह की कमी नहीं है। स्वामी की सामान्य रुचियों के अनुसार चलने में भी तुम निपुण हो; किन्तु तुममें उस तेवर का अभाव है, जो भाँति-भाँति की चंचल मानवी वृत्तियों के साथ घुल-मिलकर किसी भी प्रेमी या पति को सदा प्रसन्न और पुलकित बनाये रखता है। तुम उसकी प्यास जरूर बुझा सकती हो; किन्तु सुषुप्त-प्राय तृष्णा-लालसा को जगा नहीं सकती। ···तुम्हारे पास पैसा आता है तुम उसे उस समय के लिये संचित नहीं रख सकतीं, असामान्य वैभव-सर्जना

में, आनन्दभोग के लिए, जिसकी कभी-कभी बहुत आवश्यकता होती है। क्रीड़ा-कौतुक की अपेक्षा तुम्हें मूकविह्वल रहना अधिक रुचिकर होता है। आन्दोलित भविष्य-कल्पना की अपेक्षा तुम्हें विश्वास अधिक प्यारा है। अन्त में यह जानकर तुम्हें बुरा नहीं लगना चाहिये कि दाम्पत्य जीवन की भौतिक उन्नति में तुम्हारा निस्तेज व्यक्तित्व सदा बाधक ही रहेगा।"

नीलकमल को लगा कि गोखले साहब प्रकारान्तर से अपने ही मन की गाँठें खोल रहे हैं। उसका ध्यान फिर अचानक अरुण की ओर चला गया। उसने सोचा—'कहीं अरुण भी प्रियम्वदा चाची में इस तेवर का अभाव पाकर उसकी पूर्ति मुझसे न करना चाहते हों!'

प्रारम्भ में स्वामी का कथन वसन्तप्रभा बड़े चाव से सुन रही थी। जिन बातों की उन्होंने सराहना की, उन पर हँसते हुए उसने कहा— "छोड़ो, इन बातों को! न मैं खुशामद करना जानती हूँ, न खुशामद कराना मुझे पसन्द है। मैं जैसी हूँ ठीक हूँ।"

किन्तु जब गोखले साहब ने समीक्षा करते हुए उसके व्यक्तित्व को निस्तेज और अनातुर बतलाया, तब वह उसे सहन न कर सकी। जली-कटी सुनाना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। इसलिये उसने कुछ आश्चर्य के साथ कह दिया—"हाय राम अब तक तुमने ऐसी कोई बात मुझको नहीं बतलायी! आज ये नयी-नयी बातें तुम्हारे मन में कैसे पैदा हो गयीं?"

कुछ मुसकराते हुए गोखले साहब बोले—"मेरे मन में तो नहीं पैदा हुई; तुम्हारे हाथ की रेखाओं ने जो कुछ बतलाया, वही मैंने कह दिया। इसमें बुरा मानने की तो कोई बात है नहीं!"

वसन्तप्रभा ने इसके उत्तर में और कुछ कहना उचित नहीं समझा। किन्तु एक ग्रन्थि उसके मन में अवश्य पड़ गयी।—'हूँ, सब कुछ लुटा देने के बाद अब मेरी स्थिति यह है!' स्वामी के सामने से उठकर जब वह अपने कमरे में जाने लगी, तो उसने नीलकमल को भी साथ ले लिया।

गोखले साहब रात में सोने से पूर्व दूध जरूर पीते थे। उस दिन गिलास जैसे ही उन्होंने अपने होठों से लगाया, वैसे ही उनको वह सामान्य से कुछ अधिक गर्म जान पड़ा। पलँग के पास जो एक छोटी टेबिल रखी रहती थी, गिलास उन्होंने उसी पर रख दिया।

स्वामी को दूध पिलाते समय वसन्तप्रभा तब तक खड़ी रहा करती थी, जब तक पूर्ण रूप से वे उसे पी नहीं लेते थे। पर उस दिन वह उन्हें गिलास देकर तुरन्त चली गयी। दस मिनट के बाद जब वे दूध पीने लगे, तब उनको कुछ ऐसा बोध हुआ, जैसे चीनी कुछ अधिक डाल दी गयी हो ! फिर भी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना उन्होंने दूध पी लिया। उसी समय बेबी हेमन्तप्रभा, जो अभी सात वर्ष की थी, एक छोटी तश्तरी में सौंफ़ और धनियाँ के बीज ले आयी।

गोखले साहब ने पूछा—"तुम्हारी माँ क्या कर रही हैं ?"

बेबी ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं। चुपचाप बैठी हैं !"

गोखले साहब जान गये, उसको मेरी बातों ने प्रभावित कर दिया है। बड़ी रात तक करवट बदलते हुए अन्त में वे सो गये।

वसन्तप्रभा दो बच्चों की माँ हो जाने पर भी जब अपना अपमान अनुभव करती, तब अपने सामान्य धरातल से उचककर वीरांगना युवती की भाँति क्रुद्ध होकर बिलकुल आकाश-विहारिणी बन जाती थी ! उस समय वह यह नहीं समझती थी कि मेरी ही तरह मेरे स्वामी भी क्षुब्ध प्रतिहिंसा में पड़कर अनिष्ट संकल्प कर सकते हैं। घंटों बीत जाते, किन्तु ऐसी दशा में वह स्वामी से एक शब्द तक बोलना पसन्द न करती थी। केवल चाय-नाश्ता ही नहीं, दैनिक भोजन का त्याग कर देने को भी वह तत्पर हो उठती थी।

वर्षा तो केवल अड़तालिस घंटे तक ही हुई, किन्तु श्यामघन कई दिनों तक घिरे रहे। वर्षा के पानी ने जल-प्लावन के से दृश्य उपस्थित कर दिये

थे। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई थी। बाँध के टूटने से अनेक नहरों का जल आस-पास बसे हुए ग्रामों में भर गया था। कई करोड़ की लागत से बनाये गये विशाल बाँध की दीवार फट जाने से बाँध का लाखों घन-फुट पानी गाँवों तथा उपनगरों को तबाह कर रहा था।

प्रकृति का यह प्रलय-प्रकोप कई दिनों तक चलता रहा; तब कहीं आज सूर्य भगवान के दर्शन हुए थे। आकाश कई दिनों के बाद आज स्वच्छ हुआ था। मकान में यत्र-तत्र पक्षी चें-चें करते फुदक रहे थे। पास-पड़ोस के रेडियो से संगीत की मधुर स्वर-लहरियाँ गूंज रही थीं। लेकिन गोखले-साहब का अपना रेडियो अब तक बन्द था।

नित्यकर्म से निवृत्ति पाने से पूर्व वे एक कप चाय अवश्य पान कर लेते थे। उस दिन चुपचाप पलँग से उठकर नित्यकर्म में लग गये। उनके घर में, आये दिन ऐसे झगड़े होते ही रहते थे! हेमन्तप्रभा और ब्रह्मपद नाम के दोनों बच्चे माँ के पास बैठे हुए मराठी भाषा में 'आई चहा' बार-बार बोलकर उसे उठाने की चेष्टा कर रहे थे। पलँग से उठकर बेबी ने अलमारी खोलकर बिस्कुट का डब्बा निकाल लिया था।

इतने में ब्रह्मपद ने आँगन में खड़े होकर कह दिया—'आइ, अन्ना। फिर हाथ मटकाकर उनके चले जाने का संकेत भी कर दिया। इसके बाद बेबी ने भी कह दिया—"हाँ, अन्ना साहिब सचमुच बुश्चर्ट पहनकर चले गये। क्यों आई, अन्ना साहिब इस वक्त तो कभी जाते न थे, आज क्यों चले गये?"

बिना कोई उत्तर दिये वसन्तप्रभा ने स्टोव जलाते हुए कह दिया—"चुपचाप बैठो, शोर मत मचाओ। चाह और हलुवा मैं अभी बनाये देती हूँ।"

बेबी उछलने लगी—"आज होइल हलवा।"

ब्रह्मपद अभी 'हलवा' शब्द शुद्ध रूप में कह नहीं पाता था। वह नन्हीं हथेलियाँ मटकाते हुए—"आई हउवा!"

वसन्तप्रभा उसकी छवि-माधुरी पर मुग्ध होकर एक बार उसे एकटक

देखती रह गयी। फिर तत्काल उसकी आँखें भर आयीं, थोड़ी देर में उसने दोनों बच्चों के लिए नमकीन, दाल-चिउड़ा, गाँठिया-पापड़ी तथा हलवा, साथ में चाय का प्याला अलग-अलग प्लेटों में रख दिया।

बेबी ने उठकर रेडियो चालू कर दिया।

आँसू पोंछती हुई वसन्तप्रभा तत्काल उठ खड़ी हुई। फिर उसने रेडियो के पास जाकर उसे दिल्ली के बजाय बम्बई-स्टेशन पर संचालित कर दिया। संयोग की बात कि उससे जो गीत प्रसारित हो रहा था। उसका भाव भी कुछ उसी प्रकार का था, जो उसके क्षुब्ध मानस को स्पर्श कर उठता था! '···जी नहीं मानता, तो क्या करूँ मैं!' सोचती हुई वह क्षण भर वहीं खड़ी रही। जब वह गीत भी उसकी भावना को व्याकुल करने लगा, तब उसने उसे बन्द कर दिया।

हेमन्तप्रभा बोली—"रेडियो बन्द। झाला!"

फिर ब्रह्मपद भी हाथ नचाते हुए बोला—"आई बन्द!"

वसन्तप्रभा तब फूट-फूटकर रो पड़ी!

८

एक दिन की बात है, महेश्वरजी ने एक ऐसे बौद्धिक व्यक्ति की जीवन-कथा बतलायी जो विवाह के कतई पक्षपाती न थे! उसका कहना था कि विवाह करने के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि केवल बीवी-बच्चों के कारण हम अपना सुखद भविष्य नष्ट कर डालते हैं! उनके पालन-पोषण की चिन्ता में रात-दिन घुला करते हैं। आर्थिक सामर्थ्य के साथ-साथ हम अपनी मानसिक शान्ति इस सीमा तक खो बैठते हैं कि चालीस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते जीवन का सारा उल्लास ही समाप्त कर डालते हैं! सच पूछिये तो अपनी गृहस्थी जमाने में ही हमारी सारी जवानी खप जाती है!

महेश्वरजी इन बातों को खूब रस ले-लेकर कहते। कभी चाय-पान के साथ, कभी इडली और दोसा के साथ।

एक दिन तो इस प्रकार की बातें सुनकर चिन्तामणि को ताव आ गया। नाली में पान थूककर एकदम से उत्तेजित होकर वह बोली—"मैं जानती हूँ, आप ये बातें मुझे सुना-सुनाकर कह रहे हैं। अच्छी बात है, कल ही मैं चली जाती हूँ बाबू के यहाँ। फिर जो मन में आये, कीजियेगा।"

महेश्वर बाबू ऐसे अवसरों पर पहले तो खिलखिलाकर हँस पड़ते, फिर धीरे-से कह देते—"तुम तो बड़ी जल्दी नाराज़ हो जाती हो। मैं तो एक विचार दे रहा हूँ तुमको। मेरा मतलब यह थोड़े ही है कि मैं इन बातों का समर्थक हूँ। मेरा अभिप्राय तो सिर्फ यह है कि हम लोग ठण्डे दिल से इन बातों पर विचार करें।"

फिर तत्काल दृष्टि घुमाकर पूछ बैठते—"तुम्हारा क्या ख्याल है

नीलकमल ?"

उस दिन नीलकमल ने अधिक कुछ न कहकर केवल इतना कह दिया—'मेरे विचार से ऐसे लोगों का जीवन युवावस्था में भले ही कुछ प्रेरणामय रहता हो, किन्तु उनका बुढ़ापा बड़ा बुरा कटता होगा !"

चिन्तामणि ने इसी समय कह दिया—"मेरा तो ख्याल है कि ऐसे लोग बुढ़ापे में बहुत ज़लील, बल्कि दयनीय किस्म की ज़िन्दगी बिताते होंगे। संकट पड़ने पर रात-बिरात कौन उनकी सेवा करता होगा ! आज के युग में चौबीसों घंटे की नौकरी मनुष्य तो बजा नहीं सकता, कुत्ते की बात दूसरी है।"

ऐश-ट्रे में सिगरेट की राख झाड़ते-झाड़ते कुछ गम्भीर होकर महेश्वर बाबू बोले—'तुम मूल विषय से अलग होकर बात कर रही हो। उनका यह मतलब ही नहीं, जो तुम लगा रही हो। वे यह कहाँ कहते हैं कि हमें जीवन-संगिनी की आवश्यकता नहीं ? उनका तो सिर्फ यही कहना है कि विवाह स्त्री-पुरुष दोनों को एक-दूसरे का गुलाम बना देता है। उनका विरोध उन सीमाओं से है, जिनमें रहकर हम अपनी स्वतन्त्रता दूसरे के आगे उसी प्रकार गिरवी रख देते हैं, जैसे किसी महाजन के यहाँ कोई आभूषण। उनका कहना है कि विवाह हमको जड़ बना देता है ! वह चेतना हममें कहाँ रह जाती है जो एक पक्षी में होती है ! विवाह का मतलब ही है अपने पंख कटवा देना !"

चिन्तामणि बोलने ही वाली थी कि इतने में महेश्वर बाबू ने अपना एक कत्थई दाँत झलकाते पूछा—"तुम्हारा क्या ख्याल है, नीलकमल ?"

नीलकमल ने उत्तर दिया—' मेरा तो यही विचार है कि उनका दिमाग़ खराब हो गया है ! अगर जल्दी उनकी चिकित्सा की व्यवस्था न हुई तो उन्हें पागलखाने की शोभा बढ़ानी पड़ेगी।"

महेश्वर बाबू सिगरेट की राख झाड़ते हुए बोले—"तुमको मालूम नहीं कि ये विचार उस व्यक्ति के हैं, जो एक बड़े शहर में, डी० वाई० एस० पी० हैं। कभी उसके घर में जाकर देखो, तो पता चले कि वह

 Library Sri Srinagar.

कैसी ऐश की ज़िन्दगी व्यतीत करता है !"

बातें शायद अभी और चलतीं, लेकिन तब तक पड़ोसी मिस्टर कमल भाई गुलाबभाई देसाई की सुपुत्री केसरक्यारी ने आकर कह दिया—"आपका फ़ोन है।"

फलतः महेश्वर बाबू उठकर दूसरे कमरे में चले गये।

उस दिन के बाद नीलकमल को कई दिन तक उनके यहाँ जाने का तो अवसर नहीं मिला; किन्तु महेश्वर बाबू उसे लिबर्टी में, साढ़े छः बजे के शो में, ले जाने में सफल हो गये।

ऐसे अवसरों पर नीलकमल प्रायः कतरा जाती थी। लेकिन महेश्वर बाबू का कहना था कि रेडियो-प्लेयर को उस प्रकार की समस्त कलाओं का ज्ञान होना चाहिए, जो एक कुशल अभिनेता में होती हैं।

नीलकमल किसी व्यक्ति के साथ सिनेमा देखने को तभी तैयार होती थी, जब उसके परिवार की कोई महिला भी संग में अवश्य रहती थी। ऐसी अवस्था में उस महिला को बीच में बैठा लेना उसकी एक नीति बन गयी थी।

उस दिन भी उसे विश्वास था कि महेश्वर बाबू अगर चिन्ता-दीदी को अपने साथ न ले आयेंगे, तो सीधे उसी सिनेमा-हाउस में, ठीक समय पर उनके मिल जाने की व्यवस्था तो अवश्य करेंगे। किन्तु जब चिन्तामणि नहीं आयी तो वह आश्चर्य में पड़ गयी।

गेट के भीतर पैर बढ़ाते ही उसने पूछा—"दीदी नहीं आयीं ?"

महेश्वर बाबू कुछ हिचकचाते हुए बोले—"मैंने कह तो दिया था। मालूम नहीं क्यों नहीं आयी। हो सकता है कोई आवश्यक काम लग गया हो।"

नीलकमल विचार में पड़ गयी। उससे कुछ कहते न बना। टिकट-घर के पास ही वह खड़ी रह गयी।

महेश्वर बाबू बोले—"परेशानी क्या है ?"

नीलकमल कुछ कहना तो चाहती थी, पर संकोचवश कह नहीं पा

रही थी।

तब महेश्वर बाबू ने कह पिया—"क्या तुमको मेरे साथ बैठकर सिनेमा देखने में कुछ हिचकिचाहट हो रही है ?"

"हिचकिचाहट की बात न भी हो; लेकिन मुझको यह तो मालूम होना चाहिए कि वे क्यों नहीं आयी ? आप चाहे जैसा सोचें, लेकिन दीदी को भी बुरा लग सकता है । मैं सोचती थी कि उनको आप जरूर साथ लायेंगे। नहीं तो इस समय उनके यहाँ आने का कोई प्रबन्ध तो अवश्य कर देंगे ।"

"मैंने अभी कहा न कि पूर्व सूचना के अनुसार उसको यहाँ इस समय मिल जाना चाहिये था। पता नहीं कौन-की दिक्कत आ गयी, जो वह अब तक नहीं आयी। मगर अब यहाँ रुकने में तो कोई लाभ है नहीं। ऐसा ही है, तो एक-आध बार हॉल के भीतर से यहाँ आकर उसे देख जाऊँगा। हो सकता है, घर से निकलने में देर लग गयी हो !"

नीलकमल सोच रही थी—'महेश्वर बाबू जान-बूझकर उन्हें साथ नहीं ले आये।'

दो-चार मिनट बाद महेश्वर बाबू बाहर गये भी थे; परन्तु लौटे तब जब सिनेमा की मूलकथा चित्र-पट पर आने लगी थी। पहले तो नीलकमल इसी उलझन में अन्यमनस्क बनी रही कि अब क्या किया जाय ? फिर उसका चित्त चित्रकथा के अवलोकन में बँट गया।

महेश्वर बाबू जान-बूझकर ऐसे हाउस में उसे ले आये थे, जहाँ निकट ही एकाध पेग सुरा उन्हें मिल जाती थी। यह एक ऐसा व्यसन था, जिसे वे मनोरंजन की तरंग-संकुल घड़ियों में अपने लिए आवश्यक बना बैठे थे। मुँह से किसी प्रकार की दुर्गन्ध न आए, इसलिए वे ऊपर से सुगंधित पान खाकर आये थे।

अपनी सीट पर बैठते हुए उन्होंने एक पान नीलकमल की ओर बढ़ा दिया। पर नीलकमल पान नहीं खाती थी। अतएव उसने स्वाभाविक रूप से कह दिया—"आप तो जानते हैं, मैं पान नहीं खाती।"

चित्र-पट पर अब नन्हीं-नन्हीं बूंदें गिरती दिखायी पड़ रही थीं। एक जोड़ा फुटपाथ पर, शराब की दूकान के आगे, खड़ा हुआ था। नायक छाता तानकर, नायिका के पास सटकर खड़ा हुआ, उसके कान में कोई ऐसी बात कह रहा था, जिसके उत्तर में नायिका सिर हिलाकर कुछ मुंह बनाती हुई उत्तर दे रही थी—"ऊं हुं, आज नहीं कल!"

प्रतिक्रिया में नायक उसके बदन में उँगली गाड़ता, उसे चुभोता हुआ पूछता है—"आज क्यों नहीं? बोलो! बोलो!"

उस समय महेश्वर बाबू के मन में भी एक तरंग उठ रही थी—'काश इस नायक की जगह मैं होता!'

नायिका तब तक नायक के हाथ में हाथ-डाले हँसती हुई दूकान के अन्दर चल देती है।

तब तक महेश्वर बाबू पर सुरा अपना यथेष्ट प्रभाव डाल चुकी थी।

इतने में उन्होंने नीलकमल के गले में हाथ डालकर, सहसा उसे अपनी ओर खींचने की जो चेष्टा की, तो उसने महेश्वर बाबू का हाथ झटकते हुए क्षोभ के साथ कह दिया—"इसीलिए आप दीदी को साथ नहीं लाये! इसीलिए आपने मुझे घर पर न बुलाकर दूकान पर बुलाया था? सिनेमा का यह प्रोग्राम भी इसीलिए रचा गया!"

महेश्वर बाबू के मन में आया, कह दें—'क्या हो गया, अगर मैंने तुम्हारे कोमल गात को जरा-सा छू ही लिया? ऐसी अछूती कुमारी एकदम कलोर बछिया तो हो नहीं, जो खूंटे के बन्धन से मुक्त होते ही चौकड़ी भरने लगती है! फिर अभी तो श्रीगणेश है।—इब्तदाये इश्क़ है, रोता है क्या?' पर ऐसा कुछ न कहकर महेश्वर बाबू बोले—"ओः सॉरी! तमहारी दीदी के धोखे में मुझसे यह गलती हो गयी। तुम्हें शायद नहीं मालूम कि कभी-कभी मैं अपने-आप में ही इतना खो जाता हूँ कि अपना पराया मेरे लिए एक-सा हो जाता है।"

नीलकमल ने धीरे-से कह दिया—"मैं आप से ऐसी आशा नहीं करती थी!"

महेश्वर बाबू बोले—"मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, बाई चान्स मुझसे भूल हो गयी है।"

थोड़ी देर में जब इंटरवल का अवसर आया, तो नीलकमल बाहर आकर कहने लगी—"मुझे अब और सिनेमा नहीं देखना। जितना देख लिया, उतना ही मेरे लिए काफ़ी है!"

उसका कंठ भरा हुआ था और उसकी आँखें डबडबा आयी थीं। महेश्वर बाबू गिड़गिड़ाते हुए बोले—"मैं और कितनी बार क्षमा मांगूं?"

"क्षमा करने की इसमें कोई बात ही नहीं है। मुख्य प्रश्न तो यह है कि आपको ऐसी हिम्मत कैसे हुई? आपने मुझे इतना गलत कैसे समझ लिया?"

कथन के साथ उसके आँसू रुक नहीं रहे थे। महेश्वर बाबू बोले—"आप भी तो मुझे समझने में गलती कर रही हैं। बड़े आचार्य की बात है, जब मैंने आप से कह दिया कि वाइफ के धोखे में मुझसे ऐसी भूल हो गयी, तब भी वस्तु-स्थिति आपकी समझ में क्यों नहीं आ रही है? जो भी हो, अब इतना बहुत है। चलो एक-एक गिलास कोल्ड-ड्रिंक लिया जाय!"

"मैं तो कुछ लूंगी नहीं।"

"अच्छी बात है; मैं भी कुछ नहीं लूंगा।"

इस प्रकार बात यहीं समाप्त हो गयी। फिर किसी ने कोई बात नहीं उठायी।

नीलकमल को चुप देखकर महेश्वर बाबू कहने लगे—"संग-साथ में पड़कर मनुष्य से कभी-कभी ऐसी भूल हो ही जाती है। फिर कभी-न-कभी थोड़ी-बहुत छूट तो हम को लेनी ही पड़ती है। मन को छूने और बदन को छूने में कोई बहुत बड़ा अन्तर है, मैं मानता भी नहीं। मैं तुम्हारे लिए क्या-क्या कर सकता हूँ, काश तुम्हें इसका ज्ञान होता...!"

"देखिये मास्टर साहब, आप मुझको और फुसलाने की चेष्टा मत कीजिये। मैं सब समझती हूँ। इस वक्त अब इस पिक्चर को देखने में

मेरी तबियत लगेगी नहीं, यह निश्चित है। इसलिए यही उत्तम होगा कि आप मुझे जाने दें!"

महेश्वर बाबू अब कुछ गम्भीर होकर बोले—"ऐसा नहीं होगा। मुश्किल यह है कि मैं कोई प्रोग्राम अधूरा नहीं छोड़ता। शायद यह तुम्हें मालूम नहीं है। इसलिए मेरे ख्याल से अब इस विषय को यहीं समाप्त करके तुमको यह पिक्चर तो पूरी देख ही लेनी चाहिये। अभी ग्यारह बजा है, मेरे ख्याल से बारह तक पूरी पिक्चर समाप्त हो जायगी; हद सवा बारह।"

महेश्वर बाबू की यह बात सुनकर नीलकमल एक बार कांप उठी कि मेरा कोई प्रोग्राम अधूरा नहीं रहता! बढ़ी हुई उसके हृदय की धड़कन अब भी बन्द नहीं थी। बारम्बार वह यही सोच रही थी—'काश, मेरी जीविका का कोई एक साधन होता!' अतएव उसने उत्तर दिया—"मेरा मन इस पिक्चर में नहीं लग सकता। इसलिए अब आप मुझे क्षमा ही कर दें!"

नीलकमल का इतना कहना था कि महेश्वर बाबू के मुंह से निकल गया—"तो चलो, मैं तुमको ग्रैंटरोड, मगर ग्रैंटरोड क्यों? चरनीरोड तक भेज आऊं।"

"नहीं-नहीं, मेरे लिये इतना कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मैं चली जाऊँगी!"

इतने में सामने ही खाली टैक्सी जाती हुई देखकर महेश्वर बाबू ने रुक जाने का संकेत कर दिया।

'मैं टैक्सी से नहीं जाऊँगी' दूर तक सोचती हुई नीलकमल बोली—"मेरे लिए इतना खर्च करने की जरूरत नहीं।"

"बको मत नीलू। जो कुछ हुआ, हो गया। अब आगे तुमको मुझ से कोई शिकायत न होगी, कभी।" कथन के साथ उन्होंने नीलकमल की बाँह पकड़कर उसे टैक्सी के अन्दर बाईं ओर बिठलाते हुए, टैक्सी-ड्राइवर से कह दिया—"गिरगांव।"

हाथ पकड़कर टैक्सी में विठला देना भी एक प्रकार से नीलकमल की रुचियों के विरुद्ध था; पर फिर ड्राइवर के समक्ष वह कुछ नहीं वोली। द्वार से लगे फुट-पाथ तक पहुँच जाने पर भी दोनों में से किसी ने कोई बात नहीं की। अन्त में टैक्सी से उतरकर नीलकमल जब अपने मकान के मुख्य द्वार की ओर बढ़ने लगी, तो महेश्वर बाबू वोले "ठहरो! अपनी सिलाई का हिसाब लेती जाओ।"

यह हिसाब कई दिन से लटका हुआ था। इसके लिए नीलकमल दो बार उसके घर जा चुकी थी। इस समय उसकी बात सुनकर वह एकदम से प्रभावित हो उठी। एक बार तो यह भी उसके मन में आया—'अब मास्टर साहब ने यह प्रयोग मुझे प्रसन्न करने के लिये किया है।'

उनकी इस चतुरता को लक्ष कर वह कुछ मुसकराने लगी।

महेश्वर बाबू तब तक बोल उठे—"घर तक तुम्हारे साथ चलना मैं भी चाहता था; मगर मुझे अपने घर की फिक्र लगी हुई है। इसके सिवाय यह टैक्सी भी अधिक देर तक यहाँ रुक न सकेगी।"

इतना कहकर, उन्होंने दस-दस के दो नोट नीलकमल की ओर बढ़ाते हुए कह दिया—"आजकल काम बहुत आ गया है। अच्छा हो, कल दूकान पर ही आ जाओ। मुझे पूरी आशा है कि तुम इस सम्बन्ध की कोई भी बात वाइफ़ के कान में न पड़ने दोगी।"

नोट हाथ में लेती हुई नीलकमल कुछ स्वस्थ और सन्तुष्ट स्वर में बोली—"भावना में पड़कर मेरी कोई बात अगर आपको बुरी लग गयी हो, तो आशा है, आप भी मुझे क्षमा कर देंगे।"

एक कृत्रिम हँसी-हँसते हुए महेश्वर बाबू ने नीलकमल के कन्धे को थपथपाते हुए कह दिया—"पगली कहीं की!"

अब जैसे सब कुछ भूलकर वह प्रकृतसामान्य हो चुकी थी। इससे भी बढ़कर प्रसन्नता और गौरव की बात यह थी कि वह महेश्वर बाबू के फंदे में पड़ने से बच गयी थी।

६

रेडियो स्टेशन के स्टूडियो में लगभग पांच फीट ऊँचे माइक के सामने खड़ी होकर नीलकमल प्रथम बार संवाद बोलने का उपक्रम कर रही थी—"मैं क्यों आपसे बोलना नहीं चाहती, आपको यह बात मालूम है। फिर आप मुझसे क्यों बोलते हैं? आप मुझे कुलटा, विश्वासघातिनी, नागिन समझते हैं, फिर आप मुझको क्यों नहीं जाने देते? छोड़िए मेरे अंचल को, मुझे जाने दीजिए। मैं आपके साथ रहना नहीं चाहती।"

इसके उत्तर में कार्तिकेय नामक जो दूसरा व्यक्ति माइक के उस ओर खड़ा है, बोल उठता है—"मुझे मालूम है, मुझसे विवाह करने से पूर्व तुम किसी को अपना हृदय दे चुकी हो, लेकिन इससे क्या हुआ? तुम्हारे साथ मेरा पति का सम्बन्ध तो कहीं चला नहीं गया? और पति तन का ही नहीं, मन का भी स्वामी होता है। यह बात तुम क्यों भूल जाती हो? मुझको भले ही न चाहो, लेकिन मैं तो तुम्हें चाहता हूँ। सवेरे से तुम भूखी हो, चाय तक तुमने अपने होठों से नहीं लगायी। फिर इस समय भी तुम खाना नहीं खाना चाहतीं, मैं यह कैसे सहन कर सकता हूँ! जो पुरुष अपनी पत्नी को भूखा रखकर स्वयं कहीं खाना खा लेता और कहीं अन्यत्र जाकर सो रहता है, मैं उसे पति नहीं, पशुमानव समझता हूँ।"

उसके इस कथन के बाद फिर नीलकमल का संवाद था। सब बनावट! कृत्रिम भाषा—कृत्रिम ही शब्दावली! —"तुम मुझे कितना चाहते हो यह मुझे मालूम है। तुम्हारे भीतर कितना छल-कपट और पाखण्ड भरा हुआ है, मुझे सब मालूम है। मैं भूखी रह जाऊँगी लेकिन तुम्हारी कमाई का एक कौर भी ग्रहण न करूँगी। मैं प्यासी मर जाऊँगी, लेकिन

तुम्हारा दिया एक बूंद पानी अपने होंठों से न लगने दूंगी !"

नीलकमल के कथन में करुणा का यथेष्ट उभार था। सारी भावना हा जैसे उसके मन-प्राण से फूटकर निकली थी। अतएव गोखले साहब बोले—"अपने संवाद को इस ढंग से कहो, जैसे कोई नारी सचमुच दूसरे को प्यार करने लगी हो। करुणा के स्थान पर क्षोभ और घृणा प्रदर्शित कर सको तो और भी उत्तम हो ! मतलब यह है कि अपने स्वर मे बिलकुल वही भावना भर दो, मानो सचमुच तुम अपने स्वामी से जल्दी-से जल्दी छुटकारा पाने के लिए अधीर और व्याकुल हो ! अपने प्रेमी को तुम अपना सब कुछ समर्पित कर चुकी हो, एक-दो बार नहीं, दस-पांच बार ! और अब तो तुम अपने पति का मुख भी नहीं देखना चाहतीं।"

गोखले साहब का कथन सुनकर नीलकमल कांप उठी। उसके होंठ फड़कने लगे। उसका कण्ठ भर आया, आँखों में आँसू झलकने लगे ! बार-बार उसके भीतर से यही स्वर उठ रहा था कि अगर मेरे स्वामी ने रेडियो से मेरा सवाद सुन लिया, तो वे मेरे सम्बन्ध में क्या सोचेंगे ? उन्होंने मुझे त्याग दिया है, यह सही है; लेकिन मैं कोई ऐसी बात क्यों कहूँ, जिस से पुनर्मिलन की सारी संभावनाएँ ही नष्ट हो जाएँ ! तब वह एकदम से फूटकर आँसू पोंछती हुई बोली—"मैं असती नहीं हूँ भाई साहब, आप मुझे बहुत ग़लत समझ रहे हैं। मैं कुलटा नारी का अभिनय नहीं कर सकती। जिन मनोभावों के साथ मेरी हार्दिकता सम्भव नहीं है, उनको मैं अपनी आत्मा का स्वर, अपने अन्तर की वाणी कैसे दे सकती हूँ ?"

गोखले साहब देख रहे थे—'करुणा के उद्रेक में भी इसका सौंदर्य मन्द नहीं पड़ता ! स्वामी से तिरस्कृत रहने और परिस्थितियां अत्यन्त दयनीय हो जाने पर भी उसके प्रति प्रच्छन्न प्रेम इसके मन से गया नहीं ! ऐसी दशा में इसको अपने प्रति अनुकूल और अनुरक्त बनाना सरल नहीं।'

तब रहस्यपूर्ण भाषा का सहारा लेकर वे बोले—"यह आप क्या कह रही हैं ! कलाकार को तो जीवन की समस्त परिस्थितियों को अपने

हृदय का स्वर देना पड़ता है। विविध भाँति के मानवीय भावों में डूबकर जो व्यक्ति अपना विद्रोह नहीं प्रकट कर सकता, वह कला की सेवा कैसे कर सकता है ! फिर कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिये कि वास्तविक कलाकार किसी एक का होकर न रहे, किसी एक के हाथ बिक न जाय ! उसका आत्म-दर्शन तो सार्वभौमिक और सार्वकालिक होता है।"

नाटकीय परिस्थिति में कार्तिकेय नीलकमल के पति के रूप में संवाद बोल रहा था। वह एकाएक हँस पड़ा और बोला—"आप बड़ी भावुक हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप इतना भी समझने की चेष्टा नहीं करतीं कि जो बातें केवल कल्पना के माध्यम से संवादों में बोली जाती हैं वे व्यक्तिगत जीवन की दृष्टि से सर्वथा मिथ्या होकर भी एक प्रकार से यथार्थ होती हैं। बात यह है कि सामाजिक तथ्यों को कल्पना पर यथावत् उतारकर उसमें प्राण डाल देना ही कलाकार का धर्म होता है।"

नीलकमल विचार में पड़ गयी थी। एक बार वह गोखले साहब के मुख की ओर देखती, दूसरी बार कार्तिकेय को। बारम्बार उसके मन में आ रहा था—'नहीं मैं सत्य की आत्मा पर मिथ्या कल्पना का आवरण नहीं डालूंगी। दुनिया मुझे चाहे जो समझे, मैं सत्य के उज्जवल मुख पर कृत्रिमता का मिथ्या पाउडर नहीं मलूँगी।'

तब उसने धीरे से कह दिया—"जिस बात को मेरा मन अंगीकार नहीं करता, उसे कर्म ही नहीं, वाणी का रूप भी मैं नहीं दे सकती। मिथ्या के साथ कल्पना से भी खेलना मुझे स्वीकार नहीं।"

गोखले साहब ने नीलकमल को पुनः समझाने की चेष्टा करते हुए कहा—"यथार्थ में चाहे घोर कलुष ही क्यों न हो, कल्पना के माध्यम से यदि हम उसमें मानवीय भावना का सौन्दर्य उत्पन्न नहीं कर सकते, तो हम कला की उपासना भी नहीं कर सकते ! आप इस बात पर खूब अच्छी तरह विचार कर लें। मैं आप पर कोई अनुचित प्रभाव नहीं डालना चाहता। नाटकों में संवाद बोलनेवाली लड़कियों का हमारे यहाँ कोई

अभाव तो है नहीं। आपने जब दस बार काम देने का अनुरोध किया, तभी मैंने आपको ऐसा अवसर दिया था। खैर कोई बात नहीं, मैं दूसरा प्रबन्ध कर लूंगा।"

नीलकमल की पलकें आँसुओं से तर थीं। अब वह लौटी आ रही थी। यद्यपि वह खाली हाथ थी, लेकिन एक प्रकार के गौरव से उसका वक्ष-प्रान्त फूलकर और भी समुन्नत हो गया था। स्टूडियो के द्वार-मण्डप की सीढ़ियों से उतरते हुए उसके पग डगमगा रहे थे, उसे यह सोचकर हृत्कम्प हो रहा था कि अब क्या होगा! किन्तु उसका मन कुसुम-सा खिला हुआ था। रह-रहकर उसे अरुण का स्मरण आ रहा था। उस दिन उन्होंने कहा था कि अपने नवनिर्माण में अगर तुम वर्तमान के साथ विद्रोह कर सको, तो तुम्हारी यह कामना पूर्ण हो सकती है।...वर्तमान के साथ विद्रोह! पर यह तो भविष्य की हत्या होगी!

रेडियो-स्टेशन से लौटती हुई तब वह वसन्तप्रभा के यहाँ जा पहुँची। कमरे के अन्दर प्रवेश करते-करते उसने देखा कि और तो सब-कुछ पूर्ववत् है, केवल कर्म की गति मूक है। भाभी कुछ गम्भीर हैं। ब्रह्मपद और हेमन्तप्रभा बरामदे में खेल रहे थे।

नीलकमल के पहुँचने पर न वसन्तप्रभा ने कुछ कहा, न यही पूछा कि कहो से आ रही हो, न यही कि कहीं काम मिला?

यह परिस्थिति नीलकमल के लिए नयी थी, अतः वह विचार में पड़ गयी।

अब सायंकाल के पाँच बज चुके थे। सूर्यास्त होने को एक घण्टा ही शेष बचा था। अब तक वसन्तप्रभा स्वामी के लिए नास्ता तैयार कर चुकती थी। मिलने पर वह या तो किसी कथा की चर्चा करती, या किसी नाट्यरूपक की। अगर कोई विशेष घटना बम्बई जैसे बड़े नगर में घटित हो जाती, जिसका उस दिन के दैनिकपत्र में उल्लेख रहता, तो सबसे पहले वह उसी की चर्चा करती। यह भी न होता तो ब्रह्मपद के किसी उपद्रव की बात कहती-कहती हँस पड़ती।

"आज भैया ने स्टूल पर चढ़कर अलमारी में रखे सभी प्यालों को एक-एक करके फ़र्श पर गिरा-गिराकर चूर-चूर कर दिया।' फिर उसे बास्केट के पास ले जाकर दिखलाती है—'देखो !' फिर दानों यथास्थान बैठकर सोचने लगतीं—'भैया ने ऐसा क्यों किया ?'

नीलकमल का कहना था—"किसी चीज़ को पटक-पटककर तोड़ने में जो स्वर फूटता है, बच्चे उसका अनुभव करके प्रसन्न होते हैं। वे सोचते हैं कि मैं बनी-बनायी चीज को इस तरह कुछ ही क्षणों में तोड़ सकता हूँ ! क्योंकि तब तक उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता कि जिस पात्र को हमने तोड़ डाला है, वह हमारे ही उपयोग का था। फिर उसकी अनुपस्थिति में उन्हें सोचने का अवसर मिलता है कि अगर हमने उसे न तोड़ा होता तो इस समय वह हमारे काम आता।"

वसन्तप्रभा को उस दिन का ध्यान आ गया, जब उसके स्वामी ने एक प्याली केवल इस आधार से खड़े-खड़े फर्श पर दे मारा था कि उसमें एक कोर पर थोड़ा-सा अंश टूटा हुआ था। उसका कहना था कि यह मेरे सामने आ क्यों गया ?

इस अवसर पर वसन्तप्रभा का उत्तर था—"प्रश्न केवल आपके सामने का नहीं, सबके सामने का है। सुरुचियाँ केवल आपकी धरोहर नहीं, दूसरों की भी हो सकती हैं।"

गोखले साहब उसके इस उत्तर पर आश्चर्य के साथ मुसकराने लगे थे।

अरुण के साथ नीलकमल का जो अनुराग हो गया था, उसको वह स्वाभाविक-रूप से अपने जीवन का एक मोड़ अवश्य मानती थी, किन्तु वह अपने स्वामी संयोगबाबू को सर्वथा भूल न पाती थी। अपने नारीत्व और साथ ही पत्नीत्व के जीवन में जो कुछ उसने प्रत्यक्ष, अनुमान और ध्वनियों से प्राप्त किया था, वह सब मिलकर एक तत्कालीन उपलब्धि बन गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि अरुण के साथ सम्पर्क बढ़ाने में उसने जो सीमाएँ तोड़ दी थीं, उनके प्रति उसके मन में उस

प्रकार का कोई संतोष न था, जो वैधानिक सौख्य और तज्जन्य तृप्ति से उत्पन्न होता है। वह उस प्रकार की एक भाव-प्रवण अधपगली-सी नारी बनती जा रही थी, जो किसी प्रेमी के चुम्बनातुर क्षणों में, नयन मूंदकर, उसी प्रकार अपने स्वामी के ध्यान में विलय हो जाती है, जैसे मीरां कभी भगवान के ध्यान में तन्मय हो जाती होगी !

कभी-कभी उसके मन में आता—'यह तो ठीक है कि जीवन को चलाना ही पड़ेगा। कैसी भी विपरीत परिस्थिति हो, जीवन जैसी प्रिय वस्तु को एकदम से खोया नहीं जा सकता।'

लेकिन उस रात को जब वह होटल से लौटी, तो एक हल्की-सी झपकी ले लेने के बाद उसकी नींद जो एकाएक उचट गयी तब फिर वह सो नहीं सकी। कोई सुइयां चुभो-चुभोकर उसके कान में कह उठता था—'सब कुछ सुन लेने और समझ लेने के बाद भी मुझे कहना यही है कि तूने अपराध किया है। पतन के साथ तूने समझौता कर लिया है। अरुण बाल-बच्चेवाला आदमी है।' पर उसी क्षण तत्काल उसके कानों पर कोई चुपके से बोल उठता—'तो मैं क्या करूँ ? मैं भी तो नारी हूँ, मुझे भी तो कहीं अपने अधिकारों के उपभोग करने का अवसर मिलना चाहिये।'

तब वह प्रथम स्वर पुनः उत्तर देने लगता—'लड़ाई तेरी अपने स्वामी से है; यहाँ तो तू परसी हुई थाली उस प्रियम्वदा के आगे से खिसका रही है, जिसको तू कल तक चाची कहती थी !'

तब नीलकमल अपने आपको समझाना शुरू कर देती—'सब कहने की बातें हैं। जब सवाल अपने अस्तित्व की स्थापना का हो, तब दूसरे का ध्यान कौन रखता है ! और रखे भी क्यों ? दुनिया ने जब मेरे साथ मानवता का व्यवहार नहीं किया, तब मैं ही क्यों करूँ।'

लहरें कभी ऊँची उठतीं और कभी नीचे सरकतीं, दौड़तीं तट पर पड़ी हुई वस्तुओं को अपने साथ बड़ी दूर बहाये लिये चली जातीं। नीलकमल आँखें मूंदकर मन ही-मन कह उठती—'वसन्तप्रभा के उस बच्चे अह्लापद

को किसने सिखाया कि वह चाय के प्यालों और प्लेटों को अलमारी से गिराकर चूर-चूर कर डाले ?'

इतने में वसन्तप्रभा के यहाँ बैठे-बैठे पुनः नीलकमल ने अनुभव किया—'आज जरूर कोई नई बात हो गयी है। कार्यक्रम में निश्चय ही कोई अवरोध आ गया है। भाभी चुप हैं। स्वामी से उनको खटपट हो गयी है।'

तब उसने अपने आप कोई प्रश्न नहीं किया। दो-चार मिनट स्थिर रहकर वसन्तप्रभा ने ही पूछा—"स्टूडियो से आ रही हो ?"

"हाँ।"

"कुछ काम बना ?"

नीलकमल ने सारा वृत्तान्त बतलाते हुए अन्त में कह दिया—"इस तरह काम बनाने की अपेक्षा उसे और बिगाड़ कर लौटी हूँ !"

वसन्तप्रभा बोली—"यह तुमने अच्छा नहीं किया। भावुकता से काम नहीं चलता। तुमको पैसे की ज़रूरत है और पैसा समझौते से आता है।"

नीलकमल ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—"दुर्नीति के साथ मैं समझौता नहीं कर सकती।"

इस क्षण भी वह मन-ही-मन कह रही थी—'हूँ, अरुण जैसा कोई हो तो ले !'

"नहीं कर सकती तो दुःख भोगना निश्चित है। तुमको मालूम होना चाहिये कि जीवन एक समझौता है, एक तरह का व्यापार, जिसमें सत्य को छिपाना और मिथ्या को सत्य के रूप में सजाकर उपस्थित करना होता है।"

नीलकमल बोली—"अपना-अपना मत और अपना-अपना विचार है। मैं तो जीवन को संघर्ष मानती हूँ, समझौता या अन्ध-सहयोग नहीं। इसके सिवा फिर यह भी तो एक प्रश्न उठता है कि समझौता किस-किस के साथ ? हर दरवाजे पर जाकर सूंघते फिरना कुत्तों के लिए भले ही स्वाभाविक हो, मनुष्य के लिए तो वह अधम कार्य है !"

इतने में हेमन्तप्रभा आ पहुँची और आँखें मलती-मलती बोली—"आई, भैया हमें मारता है।"

उसका हाथ वसन्तप्रभा के कंधे पर था और उसकी आँखों में आँसू थे।

वसन्तप्रभा ने उसे छाती से लगा लिया। उसके आँसू पोंछे और कह दिया—"तब तुम भैया के साथ मत खेला करो!"

इतने में ब्रह्मपद आ पहुँचा। वसन्तप्रभा ने उससे पूछा—"तुम अपनी दीदी को मारते हो?"

ब्रह्मपद ने काँच की गोली दिखलाते हुए कहा—"दीदी हमारा कंचा वहाँ···।"

वसन्तप्रभा बोली—"दीदी ने तुम्हारा कंचा वहाँ फेंक दिया था? इसीलिए तुमने उसको मारा?"

ब्रह्मपद मुसकराता आँखों की पलकें उठाता-गिरता हुआ बोला-"हाँ।"

अब वसन्तप्रभा ने हेमन्तप्रभा को गोद से हटाते हुए पूछा—"तुमने उसका कंचा उठाकर फेंक क्यों दिया?"

हेमन्तप्रभा बोली—"इसने हमको कंचा फेंककर मारा था। इसलिए हमने भी उसे नाली में फेंक दिया था!"

ब्रह्मपद बोला "हमने नहीं मारा।"

कथन के साथ वह हाथ हिलाते हुए बोला—"हम तो खेल रहे थे।"

ये बातें अभी चल ही रही थीं कि इतने में गोखले साहब आ गये और सीधे अपने कमरे में जाते हुए बोले—"जरा इधर आना, हेमन्त की माँ।"

वसन्तप्रभा ने उठकर जाते हुए कह दिया—'मैं अभी आयी।"

उसके अन्दर पहुँचते ही गोखले साहबने कहा—"किवाड़ बंदकरलो।"

वसन्तप्रभा जैसे ही किवाड़ बन्द करके स्वामी के पास पहुँची, वैसे ही गोखले साहब ने एक जंजीर उसके सामने पेश करते हुए कहा—"देसाई के यहाँ से यह जंजीर तुम्हारे लिए ले आया हूँ।"

वसन्तप्रभा अपना सारा क्षोभ भूलकर अपने आप पर हंस पड़ी।

इस जंजीर का लाकेट बड़ा प्रभावशाली था। कई रंगीन नगों के बीच में एक हीरा जुड़ा हुआ था!

वसन्तप्रभा ने पूछा—"असली है?"

गोखले साहब ने उत्तर को प्रश्न बताकर मुसकराते हुए जवाब दिया—"तुमको कैसा मालूम पड़ता है?"

नाक सिकोड़ती वसन्तप्रभा बोली—"मुझको तो नकली जान पड़ता है।"

गोखले साहब ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—"तुमको असली और नकली की पहचान भी है? बारह सौ रुपया यूं ही दे आया हूं!"

फिर उन्होंने बैग खोलते हुए एक पैकेट निकाला और कह दिया—"यह साड़ी भी लाया हूं। दोनों को पहनकर अभी हमारे साथ नुमाइश देखने चलना है।"

"गुड! मगर तुम यह सब मुझे बेकार ले आये। मुझमें अब वैसा आकर्षण रह ही कहां गया, जो ये सब चीजें मेरे बदन पर अच्छी लगें!"

"तुम पगली हो रानी! तुमको यह भी नहीं मालूम कि प्रत्येक प्रकार का व्यंग और आक्षेप, उपालम्भ रौर आघात, अपना एक आधार रखता है; वह आधार जो अपना अधिकार चाहता है; ऐसा अधिकार जो केवल अपनी ही प्रमुखता स्थापित करने की महत्त्वाकांक्षा से उत्पन्न होता है। जिस नारी में यह वृत्ति नहीं होती, उसका आकर्षण प्रतिगामी होने लगता है। मैं तुममें यही भावना जगाना चाहता था। तुमको मालूम नहीं कि तुम्हारी जो सखी बनती है, उसको अपने रूप का कितना अभिमान हो गया है! एक छोटा-सा संवाद बोलने से आज उसने इनकार कर दिया! मालूम नहीं उसने अपने आपको समझ क्या रखा है! आई हेट हर!"

वसन्तप्रभा चकित हो उठी—"अरे, यह बात है! मुझे मालूम ही नहीं था।"

तब वसन्तप्रभा ने नीलकमल के निकट आकर कह दिया—"इस समय

तो मुझे इनके साथ जहाँ जाना है, वहाँ देर भी लग सकती है। तुम ऐसा करो कि कल सवेरे ही आ जाओ। सामने ही बात कर लेना ठीक रहेगा। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि तुमको इनके सम्बन्ध में कुछ भ्रम हो गया है। पहले उसका निवारण कर लो, फिर कोई दिक्कत न होगी।"

नीलकमल उठकर खड़ी हो गयी और चप्पल पहनती हुई बोली—"मुझे तो कोई भ्रम नहीं है भाभी। मेरे ख्याल से भाई साहब ही मुझे कुछ ग़लत समझ रहे हैं। जो बात मैं किसी से नहीं कह सकती, वही वे मुझसे कहलाना चाहते हैं!"

नीलकमल को फिर स्मरण हो आया, अरुण ने उस दिन चुम्बन करते हुए मेरे आँसू चूम लिये थे!

वसन्तप्रभा ने देखा, नीलकमल कुछ नाराज होकर जा रही है। फिर उसने उत्तर दिया—"लेकिन सिर्फ कहने के लिए कुछ कहना और मन से कहना; कथन की इन दोनों स्थितियों और विधाओं में बड़ा अन्तर है नीलू। ऐसा ही था तो तुमको इस काम के लिए किसी प्रकार का लोभ ही मन में न लाना चाहिये था।"

बाहर जाने के लिए जीने की सीढ़ी पर पैर रखती-रखती नीलकमल एकाएक ठिठक गयी और बोली—"यह लोभ मैंने कभी नहीं पाला भाभी। एक दिन इसे तुम्हीं ने उत्पन्न किया था। खैर, कोई बात नहीं। आज से यह सबंध भी मैं टूटा समझूँगी।"

वसन्तप्रभा अब अपने कपड़े बदलने की चेष्टा में अलमारी खोलने जा रही थी। उधर उसे नीलकमल की गम्भीर, बल्कि कम्पित वाणी सुनाई दे रही थी। पूरी वाक्यावली तो वह न सुन पायी, किन्तु इतना आभास उसे मिल गया कि इस समय वह अपने आपको अपमानित अनुभव करती हुई लौट गयी है; हो सकता है, अब कभी न आये।

तब वह सोचने लगी—'उँह! उसके रूठ जाने का मूल्य ही क्या है! अगर उसे आवश्यकता होगी तो वह घूम-फिरकर इधर-उधर से टकराती हुई एक नहीं; दस बार आयेगी!'

१०

नीलकमल जब अपने घर लौटकर आयी, उस समय रात के आठ बजे थे। अधिक रात में लौटने की अभ्यस्त होने के कारण जब वह काफी जल्दी लौट आयी, तब द्वादशी ने समझ लिया कि आज, जान पड़ता है, जल्दी काम हो गया। अर्थप्राप्ति की कामना में अधीर व्यक्ति परिणाम जानने में अत्यधिक व्याकुल हो उठता है। कैसे हुआ, या कैसे नहीं हुआ, इस प्रसंग से उसका कोई तात्कालिक प्रयोजन नहीं रहता। वह तो केवल यही सुनने को आतुर रहता है कि काम हुआ या नहीं।

नीलकमल जब कभी कुछ रुपये पा जाती थी, तब भीतर-ही-भीतर एक हाहाकार ध्वनित-व्याप्त रहने पर भी ऊपर से थोड़ी-बहुत प्रसन्न अवश्य दिखलायी पड़ती थी। यद्यपि कभी-कभी एक निःश्वास के साथ मन-ही-मन यह भी अपने आपसे कह लेती थी—'चलो, एक दिन और कटा!'

उस दिन नीलकमल ने उपस्थित विषय के संबंध में जब कोई बात नहीं की, तब द्वादशी स्वतः बोल उठी—"जान पड़ता है, आज कुछ काम हुआ नहीं।"

नीलकमल ने पलकें उठाकर उदासी भरे मन्दस्वर में उत्तर दिया—"न हुआ, न होगा। गोखले और पन्त दोनों के दरवाजे मेरे लिए बन्द हो गये!"

उस समय अँगीठी में सब्जी उबल रही थी और द्वादशी आटा गूंद रही थी। सुशीला मसालदान के खाली खाने को देखकर बोली—"मिरचा तो है ही नहीं अम्मां।" फिर उठकर कहने लगी—"चाची के यहाँ से लिये आती हूँ।"

नीलकमल ने कह दिया—"नहीं। नित्य उनके यहाँ किसी न किसी चीज़ के लिए हाथ पसारना मुझे पसन्द नहीं। आज बिना मिरचे की ही सब्ज़ी बना ली जायगी, तो क्या बिगड़ जायगा! तुझे मिर्च-मसाले की पड़ी है, इधर मैं उस दिन को निकट आता हुआ देख रही हूँ, जब सब्ज़ी के अभाव में नमक से ही रोटी खा ली जायगी!"

सुशीला बोल उठी—"सो तो ठीक है दीदी, लेकिन पापा को हम क्या जवाब देंगे? वे कैसे खाना खायेंगे?"

"तब ठहरो, मैं अभी लिये आती हूँ।" कहकर नीलकमल थकी रहने पर भी पुनः बाज़ार जाने के लिए नीचे चल दी। जीने पर आकर एक-एक पग उतरती हुई वह सोच रही थी—'अब कोई द्वार ऐसा नहीं बचा, जहाँ घड़ी भर को भी आश्रय मिलने का अवसर हो! एक ही बात समझ में आती है कि अपने आपको धार में छोड़ दिया जाय और इस बात की चिन्ता न की जाय कि टिकेंगे कहाँ जाकर।'

तब फिर उसे ध्यान आ गया, अरुण ने कहा था—'अपने नव-निर्माण में अगर तुम वर्तमान के साथ विद्रोह कर सको तो तुम्हारी कामना पूर्ण हो सकती है।'

और संयोग की बात, इतने में उसने देखा—अरुण बाबू टैक्सी से उतर रहे हैं।

उधर नीलकमल पर दृष्टि पड़ते ही अरुण के मुख पर एक सहज-दीप्ति झलक उठी। पर फिर क्षण-भर में ही उसे गंभीर देखकर उसने सोचा—'जान पड़ता है, यह फिर किसी विपत्ति में पड़ गयी है। नयनों की निम्न पलकों पर उतनी कालिमा नहीं है, जितनी गहराई; यद्यपि पिछली भेंट हुए कुछ ज्यादा दिन नहीं हुए।' तब कुछ सोचकर तत्काल उसने प्रश्न कर दिया—"इधर कई दिनों से दिखाई नहीं दीं।"

दुखी प्रेयसी के प्राण दिन में कई बार डूबकर बाहर निकलते हैं। नीलकमल के मुख पर भी एक क्षणिक मुसकान झलक उठी। अन्य-मनस्क-स्वर में वह बोली—"ज़िन्दगी ही कुछ ऐसी हो गयी है···।"

कथन को पूरा करती करती एकाएक वह जिह्वा निकालती हुई रुक गयी। दाँत उसके ऊपर आ गये थे; क्योंकि इसके आगे ही वह 'चाचा' कहने जा रही थी! फिर सहसा स्वर में कंपन और आँखों में चमक आ गयी।

अरुण ने प्यार के साथ झिड़कते हुए उत्तर दिया—"कुछ हो, ज़िन्दगी को रो-रोकर काटना बहुत ग़लत चीज़ है नीलम! मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि इस तरह पार करने के बजाय तुम नौका पर क़दम रखती-रखती किनारे पर ही फिसलकर गिरकर बह चलोगी! फिर कहाँ जा पहुँचोगी, कौन कह सकता है।"

नीलकमल जब कोई उत्तर न दे सकी, तब अरुण ही फिर बोल उठा—"आज फिर तुम मुझे कुछ चिन्तित, बल्कि दुःखी दीख पड़ती हो! क्या बात है?"

नीलकमल ने अरुण के मुख को एक बार ध्यान से जो देखा तो देखते-देखते उसकी पुतलियाँ भीगने लगीं। फिर भी फीके मन से उसने कह दिया—"नित्य का रोग है। कोई खास बात नहीं है।"

"पैसे की ज़रूरत है न?"

नीलकमल 'ना' नहीं कह सकी। तब अरुण ने दस-दस के दो नोट उसे देते हुए कहा—"मेरे पास फुटकर ये बीस रुपये ही हैं। अधिक ज़रूरत हो, तो कल फिर माँग लेना।"

नीलकमल के मन में आया कि वह स्पष्ट ही कह दे—'तो फिर सौ का ही एक नोट दे दो!' लेकिन इतनी धृष्टता उसे सहन न हो सकी।

अरुण जब भीतर आकर जीने पर चढ़ने लगा, तो नीलकमल ने धीरे से कह दिया—"तुमसे कुछ बात करना चाहती थी, उसमें देर भी लग सकती है। यहाँ घर में तो कोई बात हो न पायेगी।"

एक प्रेरणा-सी पाकर अरुण बोला—"तब तो यही उत्तम होगा कि आज हम लोग फिर उसी होटल में खाना खायें।"

नीलकमल एक क्षण चुप रही। उस रात की सारी बातें एक दृश्या-

वली के रूप में उसे स्मरण हो आयीं। तब उसने एक संकोचपूर्ण मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—"जैसा उचित समझो !"

अरुण ऊपर चढ़ रहा था और नीलकमल एक दूकान की ओर मुड़ रही थी।

उस दिन स्वर-परीक्षण के लिए तीन व्यक्ति अरुण के सामने थे। पहला था चन्द्रविन्दु खोसला। उसका वर्ण गोरा था, नासिका लम्बी, केश छल्लेदार, आँखें कुछ-कुछ कजी। वेश-भूषा से मध्यवर्ग का, अवस्था लगभग वत्तीस वर्ष। दूसरा शशिकान्त मेहता, तीसरा मोहनकृष्ण कोहिली।

तीनों का स्वर-परीक्षण हो जाने के वाद अरुण ने चन्द्रविन्दु खोसला को एक गीत याद करने के लिए दे दिया। चन्द्रविन्दु वहुत-वहुत धन्यवाद दकर जब चलने लगा, तो मुहम्मद रसूल (तबलावादक) ने उसके निकट आकर कह दिया—"वस अव आपकी चाँदी है जनाव। गीत को खूब याद करके आइयेगा। उसके वाद डायरक्टर साहव आपको ट्यून वतायेंगे। खूव तवियत से गाइयेगा। अल्ला चाहेगा, तो एक मर्तबा इन्डस्ट्री में आपकी आवाज़ छा जायेगी ! रिकार्डस् बनगे और सारा हिन्दुस्तान आपकी आवाज़ पर झूमेगा ! वच्चे गली-गली गाते नज़र आयेंगे। यहाँ फिल्म इन्डस्ट्री मे पैसे की कमी नही। ज्योंही दो-चार गाने हिट हुए, त्योंही आपकी आमदनी हज़ारो पर पहुँच जायगी !"

वायोलिन-वादक मिस्टर गागुली बोल उठे—'यहाँ प्रोग्रेस करते देर नही लगती; सिर्फ हवावाज़ लोगो से अपने को ज़रा-सा बचाकर रखियेगा। यहाँ ऐसे लोगों की कमी नही, जो मुँह पर तो तारीफ के पुल वाँध देंगे, मगर फिर पीठ पीछे आपकी जड़ें साफ़ करने में कोई अस्त्र वाकी न रखेंगे।"

साउण्डरिकार्डिस्ट मिस्टर शर्मा ने लपककर कहा—"वेरी फ़ाइन। रियली योर वायस् इज़ वेरी-वेरी स्वीट्। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं आपकी पूरी हेल्प करूगा। ये इडस्ट्री में जितने भी सिगर्स है—मुकेश,

मन्ना डे, तलत महमूद, हेमन्तकुमार तथा रफ़ी आदि—सबको बढ़ाने वाला मैं हूं, सिर्फ़ मैं। मगर काम निकल जाने के बाद फिर कौन किसको पूछता है !"

चन्द्रविन्दु ने उत्तर दिया—"मैं उनमें से नहीं हूँ। मैं जिसका साथ करता हूँ, उसे जीवन-भर निभाता हूँ। अगर कोई मेरे साथ चार आने भर उत्तम व्यवहार करता है, तो मैं चौदह आने भर उसका साथ देता हूँ।"

इतने में अरुण आ गया। सिर के केश काफ़ी बढ़े, लटें लहराती हुई; आँखों पर बढ़िया डार्क चश्मा। कलाई में चिपका हुआ तीन बटनों वाला कुरता, धोती के चुन्नटदार छोर को बाईं जेब में खोंसे हुए।

अब वही आगे-आगे चला और पीछे-पीछे यह वृन्द।

इसी समय चन्द्रविन्दु बोला—"मैं अरुण जी का नाम सुना करता था। जब लोगों ने मुझे बतलाया कि जहाँ तक गुण-ग्राहकता का संबंध है, वे बड़े सहृदय, जिन्दादिल, निष्पक्ष और पारखी ही नहीं, सच पूछिये तो पूरे जौहरी हैं, तो मुझे लोगों की इस बात पर सहसा विश्वास न हुआ था। लेकिन आज मैं उनका क़ायल हो गया !"

बातें करते हुए लोग स्टूडियो की कैण्टीन के निकट आ पहुँचे थे। तभी अवसर देखकर चन्द्रविन्दु ने कह दिया—"चलिये, आप लोग आज मेरी तरफ से चाय पीजिये।"

जब सब लोग कैण्टीन की तरफ बढ़ने लगे, तो मुहम्मदरसूल चन्द्र-विन्दु के निकट आकर कान में फुसफुसाते हुए कहने लगा—"अपने डायरेक्टर साहब का खास तौर पर ख्याल रखियेगा। आज तो आप चाय ही पिला रहे हैं। खैर ठीक है। मगर इसके आगे कदम बढ़ाने में कभी हिचकिचाइयेगा नहीं।"

उसका मतलब यह था कि ऐसे वक्त कहीं मुझे न भूल जाइयेगा !

चन्द्रविन्दु ने भी उनकी ओर सिगरेट बढ़ाते हुए उसी लय में उत्तर दिया—"मैं क्या, कोई भी तरक्कीपसन्द आदमी आगे बढ़ने के मामले में हिचकिचाहट कभी पसन्द न करेगा। आपने ठीक मौके पर मुझे सावधान

कर दिया। इसके लिए शुक्रिया दर-शुक्रिया।"

चन्द्रविन्दु बहुत धीरे-धीरे बात करता जा रहा था। पार्श्व में मृगलोचनी तलवार डायरेक्टर मल्लिक से सटी उनके बटनहोल में गुलाब का फूल खोंस रही थी। फाइनेंसर सेठ गोपीनाथ की बड़ी कार को शोफ़र हटा रहा था और निर्माता चौधरी ज्ञानचन्द मृगलोचनी की ओर लपके जा रहे थे। खोसला कभी-कभी दस पांच क़दम पर ठिठक भी जाता था। कुछ लोग आगे बढ़ गये थे। कथन के अन्त में चन्द्रविन्दु ने जब 'शुक्रिया' शब्द को कुछ ज़ोर से कहा, तो पहले तो कुछ लोग घूमकर उसे देखने लगे, फिर एक-दूसरे की ओर उन्मुख होकर सब-के-सब मुसकरा उठे। इसके बाद ज्योंही कैण्टीन में सब लोग अपनी-अपनी कुर्सियों में बैठ गये, त्योंही रसूल ने कह दिया—"चलिये साहब, इंडस्ट्री में एक आर्टिस्ट और बढ़ा!"

मिस्टर शर्मा ने इसके साथ इतना और बढ़ा दिया—"इससे भी बड़ी बात है नये खून, नयी पौध का एडीशन। एक बार जहां गाड़ी चली सो चली। रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान। ऐसा भी दिन आ सकता है, जब आप प्रोड्यूसर बन जायें!"

चाय के प्याले और भजिया के प्लेट्स आ ही रहे थे कि अरुण ने कह दिया—"आप लोग अभी से ऐसा न चढ़ा दीजिये कि रिकग्नाइज्ड (मान्यता प्राप्त) होने से पहले ही चन्द्रबाबू बैठे-ठाले अहंकार का एक नया रोग पाल बैठें!"

इधर-उधर देखकर रसूल ने आँख मार दी।

अरुण का इतना कहना था कि चन्द्रविन्दु ने उत्तर देते हुए कह दिया—"इस अवसर पर आप लोग क्षमा कर दें तो मैं एक बात कहूं। अगर···।"

बीच ही में अरुण बोल उठा—"हाँ-हाँ, कहिये।"

तब चन्द्रविन्दु ने उत्तर दिया—"दो-दो चार-चार महीने के अन्तर से बम्बई-फ़िल्म-इंडस्ट्री के दरवाज़े-दरवाज़े भटकने और खाक छानने का यह मेरा पहला मौक़ा नहीं, ग्यारहवां है। मुझे अफसोस इसी बात का है कि मेरी आवाज़ को वह दाद कभी मिली ही नहीं, जो आज अभी

कुछ घड़ी पहले आपके यहाँ मिली है। अहंकार ही अगर मुझमें होता, तो एक बार मुंह काला करवाकर मैं दुबारा, तिबारा और इस ग्यारहवीं बार झख मारकर आपकी शरण में ही क्यों आता! इसलिए विश्वास रखिये, मैं चाहे जितनी उन्नति करूँ आपका यह अहसान कभी नहीं भूलूंगा! जरूरत हो तो कहिये लिखकर दे दूं।"

चन्द्रविन्दु की इस बात पर कई व्यक्ति एक साथ बोल उठे—"नहीं, नहीं साहब, लिखकर देने की कोई जरूरत नहीं!"

थोड़ी देर में चाय-पान के बाद जब यह पार्टी विसर्जित हुई, तब चन्द्रविन्दु बाबू तो अरुण के साथ चल दिया और वादक लोग आपस में फिर एक बार चहक उठे।

सिगरेट के बचे भाग से दूसरी सिगरेट सुलगाते और एक कश झाड़ते हुए रसूलसाहब ने फरमाया—"न्यूकमर हैं। देखो जब ठहर जायें, तब है। हँ-हँ, यहाँ कितने आये, कितने चले गये!"

शर्माजी ने कह दिया—"कितने ही रोज़ आते रहते हैं। कितने तो इस दरवाज़े के भीतर झाँककर ही लौट जाते हैं! यहाँ तो बस नाम बिकता है। कौन पूछेगा इनकी आवाज़ को!"

अंत में गांगुलीसाहब ने कह दिया—"माफ कीजिये, पीठ पीछे इस तरह की बातें करना मुझे ज़रा कम पसन्द है। अभी आप लोग जिसके सामने तलवों में तेल मल रहे थे, पीठ फेरते ही अब क्या कह रहे हैं, यह मैं देख रहा हूँ! अजीब हाल है आप लोगों का।"

रसूल साहब ने उत्तर दिया—"मेरा ख्याल है, आप समझे नहीं। मैं तो महज़ यही कह रहा हूँ कि इस इंडस्ट्री में ठहरना, ठहर जाना और ठहर पाना—ये तीनों अलग-अलग चीज़ें हैं। ये विन्दू बाबू किस दर्जे में आते हैं, यही देखना है।"

"हँ-हँ" गांगुली साहब बोले—"यह मैं समझ रहा हूँ। महीने-भर बाद जब उसके गाने की रेकार्डिंग हो जायगी, उसके बाद—और फिर पिक्चर में भी हिट हो जाने के बाद आप ही लोग कहेंगे कि हमने तो पहले

ही कहा था कि लड़का होनहार है! और इस वक्त आप लोग बे-परकी उड़ा रहे हैं! कमाल करते हैं, आप लोग!"

मिस्टर शर्मा, जो सिगरेट का पैकेट जेब में टटोल रहे थे, अंतिम टुकड़ी फ़र्श पर डालकर उसे चप्पल से रौंदते-रौंदते बोल उठे—"गांगुली साहब, अगर हम लोग ऐसी बातें न करें, तो कोई आदमी आर्टिस्ट बने कैसे? क्योंकि कुछ भी हो, दुनिया किस ढंग से चलती है, माफ कीजियेगा। चलेगी उसी ढंग से। वे काँटे होते हैं, महज़ काँटे, जो रास्तों को साफ ही नहीं करते, चौड़ा भी बनाते हैं। समझ गये बाबू साहब?"

शर्माजी का इतना कहना था कि फिर अन्य सभी लोग चुप रह गये। गांगुली साहब गम्भीर होकर विचारलीन हो उठे।"

११

दूसरे दिन अरुण ने चन्द्रविन्दु को गीत की ट्यून बतलाते हुए कहा—"मैंने आपको संगीत की ध्वनिमात्र दी है, भावना के अनुरूप स्वरों में मिठास, शब्दावली के अनुसार मोड़ों पर लोच और गहराई, उसकी वेदना, और करुणा उत्पन्न करना आपका काम है। दूसरे शब्दों में मैंने आपको संगीत का शरीर मात्र दिया है, उसमें प्राण डालना, यहाँ तक कि श्रोताओं के मनोवेगों को पूरी तरह स्पर्श कर लेना आपका काम ही नहीं, कर्त्तव्य भी है। जब आपका स्वर रेकॉर्ड्स और रेडियो के माध्यम से संसार में गूंजेगा, तब एक वर्ग आपके स्वरों का प्रेमी बन जायगा। अवसर आने पर वे यही पूछेंगे—कौन गा रहा है? यह पूछनेवाले तो बिरले ही होंगे कि इस गीत का संगीतकार कौन है! इस प्रकार पहले कलाकार आप माने जायेंगे, मैं नहीं। सच पूछिये तो आपके पीछे ही मेरा नाम लिया जायगा।"

चन्द्रविन्दु ने सिगरेट जलाकर एक कश लेते हुए उत्तर दिया—"यह आपकी ज्यादती है, डायरेक्टर साहब। सच्ची बात यह है कि आप मुझे बढ़ा रहे हैं, बढ़ावा दे रहे हैं। गुरुजनों की ऐसी कृपा बड़े भाग्य से मिलती है। वरना यह कौन नहीं जानता कि आप साल भर में चाहे एक ही गीत गायें, मगर चर्चा उसकी वर्षों रहती है। अमर कलाकार और किसको कहते हैं?"

इस उत्तर के समर्थन में जब कई लोगों के सिर हिल उठे, तब उसने इतना और जोड़ दिया—"तो फिर मुझे थोड़ा समय तो दीजिये। मैं दस-पाँच मिनट इस ट्यून के अनुसार अपने को एडजस्ट करके देख लूं; उसके बाद अभी थोड़ी देर में ही मैं आपको पूरा गीत सुना दूंगा।"

चन्द्रविन्दु का इतना कहना था कि रसूल साहब बोले—'वाह विन्दू बाबू, वाह! आर्टिस्ट हो तो ऐसा हो।"

गांगुली बाबू बिना बोले न रह सके। उन्होंने चन्द्रविन्दु का समर्थन करते हुए कहा—"ठीक है। मेरे ख्याल से इनको पूरा दिन दे दीजिये। अब कल सुनियेगा। न्यूकमर्स को तो इतना मौक़ा देना ही चाहिये।"

रसूल साहब को ऐसा समर्थन करने में मजा आता था, जिसके मूल में किसी को उल्लू बनाने का भाव छिपा हो। अतः वे बोले—"बेशक बेशक! बल्कि अच्छा तो यह होगा कि तीन दिन!"

उनके इस कथन पर ध्यान दिये बिना अरुण ने कह दिया—"अच्छी बात है, कल सही। वैसे क़ायदा तो यही कहता है कि आप जिसको गुनगुनाना और थहा-थहाकर अपने स्वर को जमाना मानते हैं, वह सब भी यहीं होता है। इसमें एक लाभ यह भी है कि जहाँ कहीं भी आप गड़बड़ायेंगे, यानी रास्ते से बेरास्ते हो जायेंगे, वहीं मैं आपके ग़लत मोड़ को पकड़ लूंगा और आपकी ये बाँह पकड़कर रास्ते पर यों खड़ा कर दूंगा।"

चन्द्रविन्दु ने चांदी के एक डिब्बे से चांदी के वर्क़ लगी एक गोली निकालकर मुंह में डालते हुए उत्तर दिया—"विधान के हिसाब से आप का आदेश सिर माथे। लेकिन मुझे एक मौक़ा तो दीजिये। ऐसा भी तो हो सकता है कि आपको नाममात्र का सुधार करने की आवश्यकता पड़े।"

गांगुली बाबू के सिर के केश समाप्त हो चुके थे। उनका लोमहीन सिर उस समय चमक रहा था। चन्द्रविन्दु का ध्यान उसी ओर था।

गांगुली साहब इसी समय बोल उठे—दैट्सिट्! मैं आपसे ऐसी ही आशा करता हूँ।"

चन्द्रविन्दु ने उत्तर दिया—"मगर मैं तो आपसे दसी-पांच मिनट मांग रहा हूँ; ज्यादा-से-ज्यादा बीस मिनट। आज के काम को कल पर टालने की जरूरत क्या है? मैं इसी स्टूडियो में, कहीं एकांत में बैठकर एक आध बार बस जरा अपने स्वर को थहाकर देख लूं।"

चन्द्रविन्दु का इतना कहना था कि अरुण ने अनुमति देते हुए कह दिया—"अच्छा तो एक बार मैं सांग की ट्यून आपको फिर सुनाये देता हूं। आप चाहें तो मेरे साथ खुद भी गा सकते हैं।"

और तब उसने सभी वादकों की ओर उन्मुख होकर संकेत से कह दिया—"शुरू कीजिये।" उसका इतना कहना था कि एक-एक करके सभी वादकों ने स्वर-साधन आरम्भ कर दिया। एक साथ कई वायोलिन बज उठे। अरुण के साथ चन्द्रविन्दु भी धीरे-धीरे स्वर में स्वर मिलाता रहा। जब गीत समाप्त हो गया तो चन्द्रविन्दु ने कह दिया—"आपने तो मेरी सारी हिचकिचाहट दूर कर दी। इसके लिए मैं आपका बहुत-बहुत आभार मानता हूं। अब मैं पूरा गीत गाकर सुनाने के लिए तैयार हूं। सुनिये—"

और उसने झूम-झूमकर मस्ती के साथ गीत सुना दिया।

चन्द्रविन्दु ने जब गाना समाप्त किया, तो कई सज्जन बोल उठे। किसी ने कह दिया—"वाह साहब वाह!"

कोई बोला—"वेरी-वेरी फ़ाइन।"

कोई कहने लगा—"इतनी जल्दी आप इस ट्यून को अपना लेंगे, इसकी मुझे क़तई आशा न थी।"

तब रसूल साहब बोले—"सबसे बड़ी बात यह है कि जैसी स्वीट ट्यून है, आपकी आवाज़ भी वैसी ही रसीली, मीठी और प्यारी है। इंडस्ट्री के टॉपमोस्ट सिंगर्स के साथ यक़ीनन आप बहुत जल्दी घुल-मिल जायेंगे।"

एक अन्य साहब कहने लगे—"अभी तो पहला दिन है। रिहर्सल में जब आपकी झिझक क़तई दूर हो जायगी—मजा तो तब पैदा होगा।"

इस तरह की बातें संभव हैं और आगे बढ़तीं; लेकिन तभी अरुण ने आदेशात्मक स्वर में कहा—"कल हमारे म्यूजीशियन्स का फ़ुलबेंच उपस्थित होगा। गांगुली साहब, आप कृपा करके दिनेश, जॉनसन, कुलकर्णी, सोलंकी विनोदभाई देसाई तथा चिपलूणकर आदि सब को ठीक समय पर ले आयेंगे।"

गांगुली ने उत्तर दिया—मैंने आज सबको इन्फ़ार्म कर दिया है। अब किसी के यहाँ जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

तदनन्तर उस दिन का कार्यक्रम समाप्त हुआ और सभी वादक उठने लगे। बिन्दु बाबू अरुण के साथ लग गये। फिर उन्होंने देखा, कुछ बतखें और मुर्गाबियाँ लिये एक आदमी चला आ रहा है। उसके पीछे दो व्यक्ति हैं जो लाठी लिये हुए हैं।

स्टूडियो के बाहर आकर अरुण जब टैक्सी पकड़ने लगा, तो उसने चन्द्रबिन्दु को भी अपने साथ आग्रह करके बैठा लिया।

आधे घन्टे के बाद दोनों मेरिनड्राइव पर होटल के एक केबिन में बैठकर सुरापान कर रहे थे।

चन्द्रबिन्दु के लिए अपने ढंग का यह पहला अवसर था। आग्रह करके वही अरुण को वहाँ ले आया था। सुरापान के बाद जब भोजन का अवसर आया, तब तक चन्द्रबिन्दु मादकता में लिप्त, निमग्न और विलय हो चुका था। यही वह अवसर था, जब अरुण खुलकर बात करता था। इन घड़ियों में न तो वह अपना जीवन-रहस्य किसी से छिपा सकता था और न अपने साथ बैठे व्यक्ति को ही इस संबंध में कोई छूट देता था।

पहले तो उसने भूमिका बाँधते हुए कहा—"आप इस इंडस्ट्री के लिए नये भले ही हों, लेकिन जहाँ तक अवस्था का संबंध है हम दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं। ऐसी स्थिति में अगर मैं ज़िन्दगी के गुप्त और छिपे हुए भाग का आवरण हटाकर आपसे कुछ बात करूँ तो मेरा ख्याल है, मेरी तरह आपको भी कोई आपत्ति न होगी।"

चन्द्रबिन्दु के मनमें अनेक विचार उठते और बैठ जाते। एकबार उसको नीलकमल का भी स्मरण हो आया!—वह उसे अपमानित न करती तो उसका जीवन आज कितना व्यवस्थित होता! आज अपने उत्तरप्रदेश में वह कहीं डी० यम० होता!

तभी मुसकराते हुए उसने उत्तर दिया—"आप मेरे गुरुजन हैं,

इसलिए यूं भी मैं आपसे कोई बात छिपा नहीं सकता।"

उसने इसी क्रम में कह डालना चाहा कि किस प्रकार मैंने अपने भविष्य को नष्ट किया है। लेकिन इस वक्त ऐसा कुछ बतलाना उसने उचित नहीं समझा। तब वह बोला—"क्षमा कीजिएगा, विशेषरूप से इस अवसर पर गुरुवर से बढ़कर आप मेरे जीवन-निर्माता हैं। इस नाते मैं आपके सामने एक अबोध बालक के समान हूँ!"

फिर उसकी इच्छा हुई कि नीलकमल की स्मृति में इस समय उसे थोड़ा-सा रोना भी चाहिये। पर उसने कह दिया—"जैसे अपने पिता या निर्माता के सामने कोई बालक बचपन में नंगा घूमते हुए संकोच नहीं करता, बिलकुल उसी तरह मैं भी आपके सामने मन से निरावरण होने को तैयार हूँ। ऐसी स्थिति में जीवन के गोपनीय प्रसंगों को व्यक्त करने में मुझे भला क्या संकोच होगा!"

चन्द्रबिन्दु के इस कथन पर अरुण ने भोजन करते-करते सुरा का अंतिम घूंट कण्ठगत करते हुए कह दिया—"मैं आपसे ऐसी ही आशा करता था। अच्छा, अब एक बात मैं आपसे पूछता हूँ। मेरा ख्याल है नारी जाति—मेरा मतलब है बटरफ्लाइज के—विषय में, आप ज्यादा नहीं तो थोड़ा-बहुत अनुभव तो रखते ही होंगे।"

चन्द्रबिन्दु ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—"कैसे कहूँ कि नहीं रखता? मगर दुर्भाग्य से मेरे अनुभव बहुत कटु हैं। उनसे जिन्दगी के मिठासवाले पक्ष पर कोई रोशनी नहीं पड़ सकती।"

अरुण हँसने लगा—"तब तो मुझे पहले यही जान लेना चाहिये कि आपकी मैरिज आपकी तबियत से हुई या उस तरह, जैसे किसी बकरे को कान पकड़कर जिबह करने के लिए वधशाला में घसीटकर ले जाया जाय!"

अब चन्द्रबिन्दु मादकता में आकर अपना संयम सँभाल न सका। उसने शीशे के गिलास को मेज़ के नीचे गिराकर, उसे चूर-चूर होते देखते हुए उत्तर दिया—"जो दशा इस गिलास की आप देख रहे हैं, वही मेरे विवाह की हुई है। समझ गये श्रीमान्?"

ये बातें भोजन के साथ कुछ धीरे भी चलने लगती थीं। क्षण भर रुककर, विनोद के बहाने, अरुण ने कह दिया—"बहुत मामूली बात है। मेरा ख्याल है कि जिन व्यक्तियों को पत्नी रूप में प्रेयसी नहीं मिलती, अथवा जो लोग प्रेयसी को पत्नी नहीं बना पाते, उनको इस प्रकार की शिकायत करने का अवसर सदा बना रहेगा।"

'लेकिन' के साथ चन्द्रविन्दु ने तन्दूरी रोटी के टुकड़े को मक्खन से लपेटकर उत्तर दिया—"बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। बहुधा यह भी देखा जाता है कि पत्नी बन जाने के बाद कोई भी स्त्री प्रेयसी का गौरव ही नहीं, रूप-राशि का तेवर भी खो बैठती है। तब उसका प्रेयसी का पद रिक्त हो जाता है। स्वच्छंद जीवन की अबाध गतिविधियों का स्थान गार्हस्थ्य-जीवन की ज़िम्मेदारियाँ ले लेती हैं। और जहाँ तक यौन-सम्बन्धों का प्रश्न है, कोई भी व्यक्ति ऐसी प्रेयसी की चारुलिप्सा और उसके अनियंत्रित समर्पण की रिक्तता के साथ समझौता नहीं कर सकता।"

अरुण ने प्याज़ का टुकड़ा दाँत के नीचे कच्च-से दबाते और मुस-कराते हुए कह दिया—"बहुत घिसी-पिटी बात है। कोई नयी बात हो तो बताइये।"

चन्द्रविन्दु अरुण के इस उत्तर से आतंकित हो उठा और बोला—"मेरा ख्याल है, कोई नवीनता न तो नारी के रंग में होती है, न त्वचा में, न मांसल देहलता में, न आलिंगन की गुदगुदी में, न पारस्परिक स्पर्श की शीतता और उष्णता में; यहाँ तक कि समागम में भी नव-सृष्टि के प्रकार सदा भुक्त, अनुभूत और पुरातन रहते हैं। फिर भी दुष्प्राप्य और दुर्लभ प्रेयसी प्रेमी के लिए सब प्रकार से नयी होती है। अगर आप किसी ऐसी स्त्री को प्यार करें, जो वैधानिक रूप से आपको मिल न सकती हो और उसके प्रथम मिलन की रहस्यात्मक संयोग-कथा, अपनी उस प्रेयसी को पत्नी के सामने ले जाकर, स्पष्ट रूप से बतलाने का साहस आप में न हो; बल्कि भेद खुल जाने की आशंका में आप सजग, भयकंपित और

चौकन्ना रहते हों, तो निश्चित कार्यक्रम के अनुसार उसके साथ स्वच्छन्द और परिपूर्ण मिलन में आपको सदा नवीनता का स्वर्गीय आनन्द उपलब्ध होगा। और क्षमा कीजियेगा, ऐसे मिलन की घड़ियों में आपको अपनी पत्नी का बिल्कुल स्मरण नहीं आयेगा।"

अब अरुण को सहसा कुछ शंका हो उठी—'कहीं यह व्यक्ति मेरे जीवन-रहस्य का भेद तो नहीं पा गया?' तब वह विशेष कुतूहल और शंका में पड़कर उसे ध्यान से देखता और जानबूझकर कुछ बनता हुआ बोला—"इसमें भी कोई खास बात नहीं है।"

चन्द्रविन्दु को प्रतीत हुआ—यह व्यक्ति घोर अहंवादी है।

इतने में अरुण ने कह दिया—"अब मैं आपको एक ऐसे नारी-चरित्र की वात बतलाता हूँ, जिसको सुनकर आपको आश्चर्य होगा। कल्पना कीजिये कि मिस्टर कामजीवन वर्मा एक डॉक्टर हैं और ज़ाहिर है कि डॉक्टर साहब के पास सभी तरह के मरीज़ आते हैं। ओः, ब्वॉय!"

"हुज़ूर!"

"आपको शोरबा दो!"

"अभी लाया हुज़ूर!"

हँसता-हँसता अरुण बोला—"हाँ, हम कहाँ थे? आई मीन कहाँ बात चल रही थी?...हाँ, याद आ गया। एक दिन मरीज़ा के रूप में आयी एक सर्वाङ्गसुन्दरी षोडशी ने अपनी नाज़ुक कलाई बुर्क़े के भीतर से निकालकर जो डॉक्टर साहब के सामने पेश की, तो इसके साथ ही उस हसीन लड़की ने अपनी कमलदल के आकार की पलकें भी विनत कर लीं। वर्मा जी उसकी मुखछवि को देखकर चकित हो उठे।

"उस समय बैठक में भीड़ कुछ अधिक हो गयी थी। जल्दी से उन्होंने उसका टेम्परेचर लिया और पूछा—आपको यह बुखार किस समय चढ़ता है?

"पहले वह कुछ संकुचित हुई, रूमाल अब उसके अरुणारे अधरों पर आ गया था। फिर मुसकराहट छिपाने के विचार से उसने जान-बूझकर

अपने अधर मिला लिये। ऊपर का अरोंठ नीचेवाले अधर पर आ गया, बल्कि दो दाँत भी उस पर जमते हुए छिप गये।

"तब तक डॉक्टर साहब ने दूसरा प्रश्न कर दिया—आपका शुभ नाम ?

"युवती ने तीन बल खाकर उत्तर दिया—ममी मुझे 'निशानी' कह-कर पुकारती हैं।"

डॉक्टर साहब के होश फ़ाख्ता हो उठ। अब बाहर भीड़ बढ़ रही थी और भीतर केबिन में डॉक्टर साहब की आँखें निशानी की मुख-छवि पर जमने लगी थीं।

"डॉक्टर साहब ने वही प्रश्न दुहरा दिया—आपको बुखार किस वक्त चढ़ता है ?

"निशानी इस बार भी कुछ संकुचित हुई, पर फिर कुछ सोचते और चिबुक पर अँगुली रखते हुए उसने उत्तर दिया—यूँ तो सही-सही बत-लाना मुश्किल है; लेकिन अमूमन रात को ही महसूस होता है।"

"डॉक्टर साहब कुछ सोचने लगे—'हो सकता है।' तब उसे जल्दी निपटा देने के विचार से उन्होंने नुस्खा लिखा और अनोपान समझाते हुए अन्त में कह दिया—आज भीड़ ज़्यादा है। आपको कल सुबह, दोपहर और रात को नौ बजे से पहले—इस तरह तीन बार आना पड़ेगा। इस भाँति मैं आपका टेम्परेचर दो-तीन दिन देखना चाहता हूँ।

"दूसरे दिन उन्होंने प्रातः, दोपहर और रात, तीन बार उसका टेम्परेचर लिया। पर उनकी समझ में कुछ न आया। रात के वक़्त भी जब टेम्परेचर कोई खास न निकला तो उन्होंने कह दिया—मेरा ख्याल है, आपको वहम हो गया है। आपको कोई खास टेम्परेचर नहीं रहता।

"तब मुसकराहट छिपाते हुए निशानी ने उत्तर दिया—तब तो फिर रात को बारह बजे मकान पर आकर देखना होगा।"

"डॉक्टर साहब पहले तो सकते में पड़ गये। फिर उन्होंने कुछ

सोचकर स्वीकृति देते हुए उत्तर दिया—अच्छा, आ जाऊँगा।

"इसके पश्चात् जब वे रात को उसे देखने गये, तब उसका टेम्परेचर थर्मामीटर में देखते-देखते दंग रह गये। सचमुच वह एक सौ दो था।

"निशानी शैया पर पड़ी हुई छटपटा रही थी। कभी हाथ पटकती हुई दायीं करवट ले लेती, कभी दो ही मिनट में बायीं। परदे से उसकी माँ सईदा खातून बोलीं—डॉक्टर साहब, बस सारी रात इसकी यही हालत रहती है। इसके वालिद लखनऊ गये हुए हैं। उनका खत आया है। मुमकिन है, उनको आते-आते एक हफ्ता लग जाए। तो कुछ ऐसा कीजिये कि इसका मर्ज बढ़ने न पाये; क्योंकि वे इसकी शादी तै करने गये हैं। लौटते ही हम सबको साथ ले जायेंगे।

"सारी बात सुनकर जब डॉक्टर इंजेक्शन देने लगे, तब निशानी ने तीन बल खाकर कुछ इस प्रकार 'सी ऽ ऽ' किया कि डॉक्टर साहब मुश्किल से अपना संयम स्थिर रख सके। कभी वे उसकी देहयष्टि की कमनीयता को लक्ष्य करते, कभी यौवनोन्मत्त उसकी चंचल मुद्राओं को देखते रह जाते!

"अन्त में जब वे चलने लगे, तो उन्हें खातून की ओर उन्मुख होकर कहना पड़ा—'एक बार थारोली इक्ज़ामिन करने की भी जरूरत है। वैसे एतराज तो नहीं होना चाहिए; क्योंकि आप मौजूद रहेंगी ही। स्टेथेस्कोप सीने पर लगाना पड़ेगा; और भी कुछ बातें हैं। या फिर आप मेरी बैठक में आ जाइये। वहाँ मेरी वाइफ़ भी रहेंगी।"

"दूसरे दिन निशानी उनके यहाँ जा पहुँची। डॉक्टर साहब केबिन के अन्दर आ गये। तब निशानी बोली—पर्दा खींच लीजिए न डॉक्टर साहब!

"डॉक्टर साहब ने उसके सम्यक् आवरणहीन वक्ष पर ज्यों ही स्टेथेस्कोप लगाया, त्योंही पहले निशानी थर-थर काँपने लगी, फिर दो मिनट में अचेत हो गयी।

"यह हुई प्रयोग की पहली सीढ़ी। अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचने के लिए डॉक्टर साहब को निशानी की बैठक में तीन रात रहना पड़ा। सईदा

खातून बहुत पढ़ी-लिखी और सुशील महिला थीं। उन्होंने डॉक्टर साहब के स्वागत-सत्कार का पूरा ध्यान रक्खा। निशानी की तबियत अब सँभल रही थी। रात को उसे ज्वर भी नहीं आता था। कई बार साथ बैठते-उठते और खान-पान के नाना-प्रकारों में यह भी विदित हो गया कि सईदा खातून वास्तव में अपने स्वामी की रखैल थीं और अब उनके आने की कोई आशा नहीं थी।"

इतने में चन्द्रबिन्दु ने प्लेटों की ओर इशारा करते हुए कह दिया—"डायरेक्टर साहब, आप ज़रा इधर भी ध्यान रखिये। ग्यारह बज रहा है। आपको देर तो न हो जायेगी?"

अरुण ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—'एक बजे तक तो पूरी फ्रीडम है; लेकिन अपनेराम इस विषय में पूरी स्वतन्त्रता बरतते हैं। लोकल ट्रेन न भी मिले टैक्सी तो हमेशा मिलती है।···हाँ तो इलाज के नाम पर तीनों रात डॉक्टर साहब उसकी बैठक में बने रहे। उनकी पत्नी ने पेशे के विचार से किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। फिर बात आयी-गयी हो गयी।

"यह एक संयोग की ही बात थी कि तब तक डॉक्टर साहब के कोई सन्तान न हुई थीं; यद्यपि उनकी अवस्था पैंतीस वर्ष की हो चुकी थी। उनके विवाह को बारह वर्ष का समय बीत चुका था और पत्नी एक प्रकार से सन्तान के विषय में निराश हो चुकी थी। कालान्तर में एक दिन जब बाल-बच्चा न होने के कारण उनकी पत्नी कुछ दुःख प्रकट करने लगीं, तो डॉक्टर साहब ने कह दिया—मैं इस विषय में तुमसे कुछ कहना नहीं चाहता; क्योंकि संभव है, उससे तुम्हें दुःख भी हो। लेकिन एक बात तुमको आज जान लेनी चाहिये कि निशानी नाम की जो लड़की मेरे यहाँ कभी चिकित्सा के लिए आयी थी, उसके पाँच वर्ष का एक बच्चा है। और तुम बुरा न मानो तो मैं संकोच त्यागकर तुमको यह बतलाने के लिए तैयार हूँ कि वह मेरी संतान है!

"डॉक्टर साहब का इतना कहना था कि उनकी धर्मपत्नी का मुख

प्रसन्नता से खिल उठा और तब वह उस युवती को अपने साथ रखने के लिए उत्साहित हो गयी। आज दोनों पत्नियाँ एक साथ बहुत सुख-शान्ति से रहती हैं। अब मुझे कहना है कि विशेष अवस्थाओं में नारी इस सीमा तक समन्वयात्मक हो जाती है। बस, शर्त यह है कि उसका अधिकार स्वामी पर अक्षुण्ण बना रहे। प्रेम का एक रूप प्रभुसत्तात्मक भी होता है। नारी को जीवन में इस बात का दृढ़ विश्वास बना रहे कि स्वामी मेरे हैं, वे मेरे लिए सर्वस्व त्याग कर सकते हैं, तो केवल यही विश्वास उसके चरम सौख्य और संतोष का आधार बन जाता है।"

अरुण का कथन अभी समाप्त नहीं हो पाया था कि चन्द्रबिन्दु उसकी सिगरेट जलाते हुए उसी की शैली में बोला—"बहुत मामूली बात है। अब एक केस मैं आपको बतलाऊँ।...एक लड़की है, जो अब लगभग पच्चीस वर्ष की होगी। उसका विवाह हो चुका है। विवाह से पूर्व एक युवक ने अत्यधिक आकृष्ट होकर उससे मिलने-जुलने की जो चेष्टा की, तो उस लड़की ने उसका अपमान कर दिया! लड़का तब तक अपने समाज में एक मर्यादा रखता था। इस घटना के बाद विश्वविद्यालय में उसका पढ़ना छूट गया। फिर वह किसी धन्धे में भी न लग सका। एक प्रकार से उसका जीवन आवारा बन गया! घर वाले समझाते-समझाते हार गये, मगर वह किसी कार्य में न लग सका। संयोग की बात कि उसी स्थिति में वह कविता लिखने लगा—हालाँकि उसकी वे कविताएँ कभी कहीं छपी नहीं। इतना अवश्य हुआ कि उन कविताओं की प्रशंसा बहुत हुई। सुनकर लोग सदा बहुत प्रभावित हुए। जिस कवि-सम्मेलन में वह कविता सुना देता, वहाँ सैकड़ों श्रोता चलते समय उसे घेरकर खड़े हो जाते, उसका हस्ताक्षर प्राप्त कर लेने में एक गौरव का अनुभव करते। पर सच पूछिये तो उसके उस कवि-जीवन में एक बहुत बड़े कलंक का हाथ था। यही वह व्यक्ति था, जिसने उसके पति को बिल्कुल मिथ्या तथ्यों के आधार पर इतना भड़का दिया कि उसने अपनी उस नवविवाहिता पत्नी को सदा के लिए त्याग दिया। परिणाम यह हुआ कि उस परित्यक्ता

खातून बहुत पढ़ी-लिखी और सुशील महिला थीं। उन्होंने डॉक्टर साहब के स्वागत-सत्कार का पूरा ध्यान रक्खा। निशानी की तबियत अब सँभल रही थी। रात को उसे ज्वर भी नहीं आता था। कई बार साथ बैठते-उठते और खान-पान के नाना-प्रकारों में यह भी विदित हो गया कि सईदा खातून वास्तव में अपने स्वामी की रखैल थीं और अब उनके आने की कोई आशा नहीं थी।"

इतने में चन्द्रबिन्दु ने प्लेटों की ओर इशारा करते हुए कह दिया—"डायरेक्टर साहब, आप ज़रा इधर भी ध्यान रखिये। ग्यारह बज रहा है। आपको देर तो न हो जायेगी ?"

अरुण ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—'एक बजे तक तो पूरी फ्रीडम है; लेकिन अपनेराम इस विषय ने पूरी स्वतन्त्रता बरतते हैं। लोकल ट्रेन न भी मिले टैक्सी तो हमेशा मिलती है।···हाँ तो इलाज के नाम पर तीनों रात डॉक्टर साहब उसकी बैठक में बने रहे। उनकी पत्नी ने पेशे के विचार से किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। फिर बात आयी-गयी हो गयी।

"यह एक संयोग की ही बात थी कि तब तक डॉक्टर साहब के कोई सन्तान न हुई थी; यद्यपि उनकी अवस्था पैंतीस वर्ष की हो चुकी थी। उनके विवाह को बारह वर्ष का समय बीत चुका था और पत्नी एक प्रकार से सन्तान के विषय में निराश हो चुकी थी। कालान्तर में एक दिन जब बाल-बच्चा न होने के कारण उनकी पत्नी कुछ दुःख प्रकट करने लगीं, तो डॉक्टर साहब ने कह दिया—मैं इस विषय में तुमसे कुछ कहना नहीं चाहता; क्योंकि संभव है, उससे तुम्हें दुःख भी हो। लेकिन एक बात तुमको आज जान लेनी चाहिये कि निशानी नाम की जो लड़की मेरे यहाँ कभी चिकित्सा के लिए आयी थी, उसके पाँच वर्ष का एक बच्चा है। और तुम बुरा न मानो तो मैं संकोच त्यागकर तुमको यह बतलाने के लिए तैयार हूँ कि वह मेरी संतान है!

"डॉक्टर साहब का इतना कहना था कि उनकी धर्मपत्नी का मुख

प्रसन्नता से खिल उठा और तब वह उस युवती को अपने साथ रखने के लिए उत्साहित हो गयी। आज दोनों पत्नियाँ एक साथ बहुत सुख-शान्ति से रहती हैं। अब मुझे कहना है कि विशेष अवस्थाओं में नारी इस सीमा तक समन्वयात्मक हो जाती है। बस, शर्त यह है कि उसका अधिकार स्वामी पर अक्षुण्ण बना रहे। प्रेम का एक रूप प्रभुसत्तात्मक भी होता है। नारी को जीवन में इस बात का दृढ़ विश्वास बना रहे कि स्वामी मेरे हैं, वे मेरे लिए सर्वस्व त्याग कर सकते हैं, तो केवल यही विश्वास उसके चरम सौख्य और संतोष का आधार बन जाता है।"

अरुण का कथन अभी समाप्त नहीं हो पाया था कि चन्द्रबिन्दु उसकी सिगरेट जलाते हुए उसी की शैली में बोला—"बहुत मामूली बात है। अब एक केस मैं आपको बतलाऊँ।...एक लड़की है, जो अब लगभग पच्चीस वर्ष की होगी। उसका विवाह हो चुका है। विवाह से पूर्व एक युवक ने अत्यधिक आकृष्ट होकर उससे मिलने-जुलने की जो चेष्टा की, तो उस लड़की ने उसका अपमान कर दिया! लड़का तब तक अपने समाज में एक मर्यादा रखता था। इस घटना के बाद विश्वविद्यालय में उसका पढ़ना छूट गया। फिर वह किसी धन्धे में भी न लग सका। एक प्रकार से उसका जीवन आवारा बन गया! घर वाले समझाते-समझाते हार गये, मगर वह किसी कार्य में न लग सका। संयोग की बात कि उसी स्थिति में वह कविता लिखने लगा—हालांकि उसकी वे कविताएँ कभी कहीं छपी नहीं। इतना अवश्य हुआ कि उन कविताओं की प्रशंसा बहुत हुई। सुनकर लोग सदा बहुत प्रभावित हुए। जिस कवि-सम्मेलन में वह कविता सुना देता, वहाँ सैकड़ों श्रोता चलते समय उसे घेरकर खड़े हो जाते, उसका हस्ताक्षर प्राप्त कर लेने में एक गौरव का अनुभव करते। पर सच पूछिये तो उसके उस कवि-जीवन में एक बहुत बड़े कलंक का हाथ था। यही वह व्यक्ति था, जिसने उसके पति को बिल्कुल मिथ्या तथ्यों के आधार पर इतना भड़का दिया कि उसने अपनी उस नवविवाहिता पत्नी को सदा के लिए त्याग दिया। परिणाम यह हुआ कि उस परित्यक्ता

युवती का जीवन सब प्रकार से असहाय और दयनीय बन गया। अब विचारणीय यह है कि एक ओर जो कवि जीवन भर मानवता को उच्च स्तर पर ले जाने का कार्य करता है, दूसरी ओर वही, प्रतिशोध की भावना में पड़कर, इस सीमा तक अमानवीय कैसे बन जाता है कि उस नारी का जीवन व्यर्थ कर डालता है, जिसको देख-देखकर वह कभी प्रेरणा पाता था, जिसकी आसक्ति में डूब-डूबकर कविताएँ लिखता था। इन दोनों परिस्थितियों से जिस व्यक्तित्व का परिचय आपको मिलता है, उसके विषय में आपका क्या अभिमत है ? और थोड़ी देर के लिए मान लीजिये, कवि को अब अपने इस दुष्कृत्य पर बड़ा दुःख है। यह दुःख तब और बढ़ जाता है, जब वह देखता है कि उसी ने उस युवती के गौरव की हत्या की है ! भगवान न करे कोई दुर्घटना हो, किन्तु सब प्रकार से अपने को असहाय देखकर यदि यहीं उसने आत्मघात कर लिया तो ?"

चन्द्रबिन्दु के इस कथन को सुनकर अरुण विचार में पड़ गया। वह सोचने लगा—'कहीं यह स्वयं वही व्यक्ति तो नहीं है ?"

इसी समय ब्वॉय ने आकर पूछा—"हुज़ूर रोटी ?"

कुछ आश्चर्य के साथ चौंकते हुए अरुण ने उत्तर दिया—"रोटी ! हाँ, रोटी। अच्छा ले आओ।"

रोटी आ जाने पर भोजन के समय अरुण ने केवल एक प्रश्न किया—'जिस युवक की बात आपने अभी बतलायी है, उसकी कोई कविता आप को याद है ?"

चन्द्रबिन्दु सोचने लगा—'जान पड़ता है इनको मुझी पर शंका हो गयी है।' तब मुसकराते हुए उसने जवाब दिया—"पहले तो कुछ याद थीं, अब बिल्कुल याद नहीं रहीं।"

अरुण ने कह दिया—"एक ही आदमी के ये दो परस्पर विरोधी रूप ऊपर से आश्चर्यजनक अवश्य हैं। जो व्यक्ति कवि होने का दावा ही नहीं करता, वास्तव में कवि की जिन्दगी भी व्यतीत कर चुका है, वह ऐसा जघन्य कृत्य कर सकता है—यह बात तभी सम्भव हो सकती है, जब इस

अन्तर के मूल में कोई बहुत मर्मान्तिक घटना हो।"

"तो आप मानते हैं कि ऐसे चरित्र में कोई असाधारण तत्व अवश्य है। इस बार ऐसा आप नहीं कह सकते कि कोई नई बात नहीं है!"

अरुण को मुसकराते हुए स्वीकार करना पड़ा—"यहाँ मैं आपसे सहमत हूँ।"

भोजन अब भी चल रहा था। चन्द्रविन्दु ने इतने में कह दिया—"विवाह मैंने अवश्य नहीं किया, लेकिन दुनिया के रँग-ढंग से काफ़ी परिचित हो चुका हूँ। इधर एक ऐसे व्यक्ति को भी मैं जानता हूँ, जो विवाहित है। उसके एक बच्चा भी हो चुका है; किन्तु वह अपने जीवन में इस सीमा तक स्वच्छन्द है कि अपनी प्रियतमा के साथ आत्म-प्रवंचना करते हुए नहीं हिचकता है! वह एक ऐसी युवती को अपना समर्पण करता रहता है, जो विवाहिता है। उसे इस बात का ज्ञान है कि मैं उसकी मर्यादा के साथ खेल रहा हूँ; फिर भी वह अपनी नाव को सरिता की बीच धार में छोड़ चुका है। उसे परिणाम का भय नहीं है; यद्यपि वह एक कलाकार का जीवन व्यतीत करता है। क्या मैं जान सकता हूँ कि कलाकार के इन दोनों रूपों में क्या सामंजस्य है? एक ओर जो भावनाएँ उसको कला की सृष्टि में प्रेरणा देती हैं, वे दूसरी ओर आत्म-प्रवंचना करने से उसे क्यों नहीं रोकतीं?"

अरुण ने उसकी इस बात पर मुसकराते हुए उत्तर दिया—"मैं ऐसे व्यवित को जानता हूँ और मेरी मान्यता है कि परस्पर विरोधी तत्वों के साथ खेलता हुआ कलाकार कहीं-न-कहीं से कलात्मक प्रेरणाएँ अवश्य पाता है।"

चन्द्रविन्दु ने उत्तर दिया—"मेरा ऐसा विश्वास नहीं है। कलाकार मूलतः आस्थावादी होता है। सार्वभौमिक सत्य के अनुसंधान में जिसका जीवन सर्वतोभावेन समर्पित होता है, वही कला का पुजारी बनकर यशस्वी बनता और विश्व-सम्मान का ऐश्वर्य भोगता है। कोई भी आत्म-प्रवंचक सच्चे अर्थों में कलाकार कैसे बना रह सकता है?"

अरुण ने हँसते-हँसते उत्तर दिया—"अनेक बार निषेधों और वर्जनाओं से भी कला को प्रेरणा और उत्तेजना मिलती है। ग़ालिब एक छोड़ दस प्रेयसियाँ रखता, तो भी मैं उसे दोषी न मानता!"

भोजन समाप्त होने पर चन्द्रविन्दु ने बिल का भुगतान कर दिया।

दोनों जब उस होटल से निकलकर फुटपाथ पर आये, तो अरुण के मन में आया—'क्यों न वह स्वीकार कर ले—अभी जिस कलाकार के प्रति आपने घृणा प्रकट की है, वह व्यक्ति आपका गुरु ही है।' पर फिर वह ऐसा कुछ न कहकर लाइटर से सिगरेट सुलगाने लगा।

इसी क्षण चन्द्रविन्दु ने मुसकराते हुए कह दिया—"अभी जिन परस्पर विरोधी तत्त्वों के प्रति आपने आश्चर्य प्रकट किया था, अपने हाहाकार पूर्ण जीवन में दोनों को एक साथ निभानेवाला, वह आ का शिष्य मैं स्वयं हूँ।"

उसकी इस बात पर अरुण स्तब्ध हो उठा। दो मिनट तक दोनों मौन खड़े रहे। इतने में एक खाली टैक्सी आती हुई देखकर अरुण ने कह दिया—"टैक्सी।"

सरदार जी ने टैक्सी खड़ी कर दी। दोनों उस पर बैठकर चल दिये।

१२

उस दिन नीलकमल रात को जब घर लौटी, तो वही आगे थी। अरुण जान-बूझकर आध घण्टे बाद गया था। ज़ीने से लेकर दरवाज़े तक दबे पाँव आती, इधर-उधर देखती, कुछ-कुछ चौकन्ना होकर ताकती, सहमी-सहमी-सी नीलकमल जब द्वार पर पहुँची, तो उसने देखा, वह भीतर से बन्द है। रास्ते में प्रीतिलता के फ़्लैट में नीली-नीली मंद रोशनी देखकर वह दो तीन पग जल्दी से भी चली और आगे बढ़ गयी।...हो सकता है प्रीतिलता जग रही हो! अच्छा, यदि उसका कपाट इसी समय खुल जाय और वह इस स्थिति में मुझे देख ले, तो!'

तब वह एकदम से बुझ गयी। उसका रोम-रोम कंपित हो उठा। द्वार पर उसने दायें हाथ की दो अगुलियों के नाखूनी पोरों से कुट्-कुट् किया। पहली बार उसे कोई उत्तर न मिला। तब दो क्षण रुककर उसने कुछ अधिक जोर से पुनः ठक्-ठक् किया। फलतः द्वादशी ने बत्ती जला दी और पूछा—"कौन ?"

नीलकमल ने धीरे से उत्तर दिया—"नीलू।"

तब द्वादशी ने किवाड़ खोल दिये। नीलकमल ने अन्दर पैर रखते ही देखा—बिस्तर पूर्ववत् तहाया हुआ रक्खा है।

तब उसने उसे झट से उठाकर यथाविधि बिछा लिया।

द्वादशी ने सोचा—वह स्वयं ही बतलाएगी कि कहीं कुछ काम हुआ या नहीं; लेकिन जब नीलकमल कम्बल ओढ़कर लेट गयी, तब उसे पूछना ही पड़ा—"जान पड़ता है, कुछ काम हुआ नहीं।"

ऐसे अवसरों पर द्वादशी खाने के विषय में प्रायः पूछ लेती थी।

नीलकमल ने देखा, इस समय माँ ने यह भी नहीं कहा—'खाना नहीं खायेगी ?' तब वह सोचने लगी—'मेरा खाना उतना आवश्यक नहीं, जितना रुपये देना !'

उसने दस-दस के तीन नोट पर्स से निकालकर माँ के आगे फेंक दिये। फिर बिना कुछ बोले वह कम्बल से सिर ढककर पूर्ववत् लेट गयी।

अभी लगभग आध घण्टे पूर्व उसने अरुण का साथ छोड़ा था। यद्यपि अब भी वह सोच रही थी—'काश, उनसे अलग होने का अवसर न आता !'

आज उसने अरुण को सुरापान के लिए विशेष आग्रह करने का अवसर नहीं दिया था।···'ठीक है। जीवन में जब सुख के क्षण इने-गिने हैं, तब जो कुछ दुर्लभ होने पर भी सुलभ हो सकता है, उसे क्यों न प्राप्त किया जाय !'

आज बातचीत में उसने कोई उद्वेग, किसी प्रकार की कसक और पीड़ा का भाव भी नहीं व्यक्त किया था।···'क्यों करे व्यक्त ? अव्यक्त रखने में अगर अधिक रस का अनुभव हो सकता है, तो व्यक्त करने की आवश्यकता ?'

अरुण जब बीच-बीच में कुछ कहने लगता, तब नीलकमल प्रायः चुप बनी रहती। उसकी इस मूकता पर अरुण ने कई बार टोका भी— "तुम कुछ बोल नहीं रही हो नीलम ?" तब भीतर से शंकित होने पर भी ऊपर से अधरों पर अनिरुद्ध मुसकान लाकर उसने कहा था—'अकथ्य भी तो कोई चीज होती है !'

तब अरुण उसकी ग्रीवा चूम रहा था।···यही सब बातें उसे इस समय स्मरण आ रही थीं। दूसरी बार जब फिर अरुण ने उसकी मूकता पर आक्षेप किया, तब उसने कह दिया था—"अब मेरे पास तुमसे कुछ कहने को बचा ही क्या है ?"

फिर बड़ी देर बाद तक जब वह कुछ नहीं बोली और पुनः उसने एक उलहना देते हुए कह डाला—"कम-से-कम साथ देने भर के लिए

तो बोल दिया करो नीलम !" तब नीलकमल लजा गयी थी। एक बार पलकें गिराकर उसने उत्तर दिया था—"साथ की परिस्थितियाँ भी तो कभी-कभी बोलने नहीं देतीं।"

अरुण मन-ही-मन उसके इस कथन पर लट्टू होकर नाच उठा था। कल्चर्ड विलवेड की बात ही और होती है ! फिर उसकी इसी बात पर अरुण ने उसकी हथेली को एक बार दबा दिया था, जिसे उसने पहले से ही अपने हाथ में कर रक्खा था। नीलकमल छिटककर दूर नहीं हट गयी थी। जानबूझकर उसने यह नहीं कहा था—'बस, छोड़ो-छोड़ो और ज्यादा तंग मत करो।'

वह अनुभव कर रही थी कि आज की रात शमा देर तक जलती रहेगी; उसे कोई बुझाने नहीं आयेगा। वह अपने आप बुझ जायगी। अब उसे समर्पिता बनना ही पड़ेगा ! हाँ, इतना अवश्य हुआ कि जब अरुण ने हथेली दबा दी, तब उसने अपना हाथ झटके के साथ नहीं, सहते-सहते धीरे से हटा लिया था। भोजन भी उसने उत्साह के साथ किया था। वह सोचती थी—'ऐसे अवसरों पर खिलाने पिलाने के आग्रहों में एक मधुर कामना छिपी रहती है। प्रत्येक अनुरोध में एक भीगी-भीगी हार्दिकता लिपटी रहती है। सब मिलाकर खान-पान की तृप्ति में वह परिपूर्णता लाने की चेष्टा की जाती है, जो एक ओर से एक माँग तो दूसरी ओर से पूर्ति होती है; मन को समझा लेने की भाषा में प्राणों का एक मिलन !—संसार जिसे प्यार कहता है !

उसे नींद नहीं आ रही थी। करवट बदलती हुई वह सोचती थी कि अम्माँ लाइट ऑफ़ कर दें, तो ठीक हो। लेकिन तब तक वे लुढ़ककर खर्राटे मारने लगी थीं, उन्होंने स्विच ऑफ़ नहीं किया था।

यद्यपि नीलकमल का सिर दर्द कर रहा था, तथापि वह सोचती थी—'जो प्रकाश कर्म के लिए आवश्यक, चेतना के लिए एक अवलम्ब और वार्ता-विनोद के लिए एक सुविधामय संयोजना है, वही उसे इस समय बहुत खल रहा है ! अंधेरे का भी तो अपना एक अस्तित्व होता है।'

तब उठकर उसने स्विच ऑफ़ कर दिया। उसके मन को यह जान-कर थोड़ा आघात भी लगा कि सायंकाल बीस रुपये और इस समय ये तीस रुपये प्राप्त करके ही अम्माँ को निश्चिन्तता से नींद आ पायी! प्रातः-काल ही उन्होंने कह दिया था—"राशन नहीं रह गया है।"...शाम को उसका भी प्रबन्ध हो गया; यद्यपि अब इसी समय उनको कोई चीज मँगाने के लिए रुपये की विशेष आवश्यकता तो थी नहीं।...ठीक है। जब उन्होंने यह समझ लिया है कि मैं किसी-न-किसी मूल्य पर, चाहे जिस प्रकार, दस-बीस रुपये सदा ला सकती हूँ, तब मेरे इस घर में पैर रखते ही ऐसा प्रश्न उठना स्वाभाविक है। मैंने ही तो इस विषय में उन्हें अभ्यस्त बनाया है। किसी ने कहा है—बहुत अच्छा हो जाना, बहुधा बहुत बुरा होता है। जिसे कोई सोच-विचार नहीं, इस बात का भी कोई प्रश्न नहीं कि ये रुपये आते कैसे हैं, हाय घिनौने स्वार्थों से लिप्त इस दुनिया में वही मेरी माँ हैं! चिन्ता दीदी के यहाँ सिलाई का काम पहले थोड़ा बहुत मिल जाता था, पंतजी की कृपा से वह भी बन्द कर देना पड़ा! गोखले साहब के यहाँ बना-बनाया काम मैंने अपनी भावुकता से बिगाड़ लिया!

फिर वह एक निःश्वास लेकर सोचने लगी—'अब एकमात्र अरुण बाबू रह गये हैं। जबतक उनके साथ प्रेम का यह नाटक चलता है, तब तक अम्माँ अवश्य प्रसन्न रहेंगी।...और पापा का भी जीवन चलता रहेगा; ...उसके बाद ?'

एक बार फिर उसे उन परिस्थितियों का स्मरण हो आया जिनसे गुजरकर वह अभी आयी थी।...जबतक शमा जलती रही, अरुण बाबू बार-बार यही कहते रहे—'आजीवन तुम मेरे मन-प्राण में इसी प्रकार विलय रहना नीलम! बस, यही एक आश्वासन मुझे जीवित रखेगा।'

नीलकमल बड़ी देर तक उसके इस कथन पर विचार करती रही—तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं ही नहीं, इनको भी अपने जीवन से संतोष नहीं है! ऐसा कौन-सा कष्ट है इनको ?

तब उसे ध्यान हो आया, पिछली बार उन्होंने कहा था—'सरकार

ने मुझे कभी वह समादर नहीं दिया, जो अन्य लोगों को।'

फिर एक चूहा इधर-से-उधर भागता हुआ जान पड़ा।···उसे स्वामी की भी याद हो आयी?···छल्लेदार केशों के भीतर गोरा-सा मुख और आम की फाँक-सी आँखें!—आज अगर होनहार एक संयोग बन जाती और उसी होटल में कहीं वे प्रकट हो जाते! या तो मुझे दूर से देख लेते, या उनको पता चल जाता कि इसी कमरे के अंदर नीलू अपने लवर के साथ सुरा-पान करती हुई अठखेलियाँ कर रही है, तो!

—'तो क्या होता? हमारा विच्छेद हो इस अविश्वास के आधार पर हुआ था; हालाँकि तब तक इस पतन के आरंभ की भूमिका भी नहीं बनी थी!···कुछ नहीं है जी! वास्तविक पापी उनसे कहीं भले हैं, जो निष्पाप होते हुए भी इस दुनिया की नजर में पापी हैं! तब तो मैंने कुछ भी बुरा नहीं किया। मैं निर्दोष हूँ।···पापा की आदतें, सुशीला की पढ़ाई और इस सबका भार ढोनेवाली निराश्रिता मैं! सब लोग शान्ति और संतोष की नीद से सो तो लिया करेंगे!'

द्वादशी की शयन-गर्भित ध्वनियाँ कभी-कभी सुनाई पड़ जातीं थीं। श्यामबाबू के सिरहाने रखी हुई घड़ी टिक्-टिक् बोल रही थी। दूर—बड़ी दूर से किसी ट्रेन के इंजन की सीटी का स्वर आ रहा था। कमरे का अंधकार सघन कालिमा के साथ नीलकमल को अपनी छाती से चिपटाए हुए था। कभी-कभी यह बात भी उसके मन में आती थी कि आज की दुनिया में ऐसे लोग भी तो हैं, जो एक तरफ से सबको धोखा देते हुए भी मस्तक ऊँचा करके रहते, हँसी-खुशी के साथ झूमकर चलते, मस्ती से गाते और मौज से जीवन व्यतीत करते हैं! किसी क्षेत्र का कोई काम जिनके लिए वर्जित नहीं! दूसरी ओर मैं हूँ! छि:! मुझे अब भय किस बात का और मेरे लिए ग्लानि का अवसर कहाँ? अब अगर स्वामी आकर मुझे ले जाने का आग्रह भी करें तो मैं टाल जाऊँ!'

लेकिन न जाने क्या बात थी कि उसका जी नहीं मान रहा था। तरह-तरह की बातें उठकर उसे घेर लेती थीं। एक स्वर उठ रहा था—

'केवल एक मार्ग बाकी बचा है कि मैं आत्मघात कर लूं !'

तब एक निःश्वास के साथ उसका हाथ मस्तक पर आ पड़ा। सुरा की मादकता तो अब शांत हो गयी थी, लेकिन सिर का दर्द बढ़ गया था। उसे नींद किसी प्रकार नहीं आ रही थी।

फिर वह अपने-आपसे कहने लगी—'मैं जो अपने सम्बन्ध में इतनी चिन्तित रहा करती हूँ, अब यह भी व्यर्थ है। आज तक अपने को बचाती-बचाती जब किसी प्रकार न बचा सकी, तब लगभग दो वर्ष बाद आज का दिन कुछ घड़ियों के लिए एक पुनरावृत्ति लेकर आया था। लेकिन उन परिस्थितियों के मधुर सम्मोहन और आज के इन नये अनुभवों में कितना अन्तर है !'

मगर यह क्या बात है कि पापा अकसर कहा करते हैं—'दुनिया में जो कुछ होता है, उसकी सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर नहीं।' आज अगर मैं भी यह मानने लगूं कि घर की जैसी परिस्थिति है उसको देखते हुए अकेले मेरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं···!

—'अच्छी याद आयी। एक हाईस्कूल में सूइंग, कटिंग तथा कढ़ाई-बुनाई आदि की शिक्षा के लिए एक अध्यापिका की वान्ट निकली है। अगर कोशिश करूँ, तो क्या मैं यह जगह नहीं पा सकती ? अरुण बाबू के साथ यह सम्बन्ध चलने की भी एक सीमा है। एक पिक्चर समाप्त हो जाने के बाद दूसरी पिक्चर का काम प्रारम्भ होने में कभी-कभी काफ़ी विलम्ब हो जाता है। ऐसा भी तो हो सकता है कि कभी उनको चार-छः महीने या साल भर खाली रहना पड़े ! तब क्या होगा ?'

इसी समय एक चूहा अलमारी के ऊपर से टी-सेट के ऊपर आ गिरा और मिल्कपॉट तथा प्याले नीचे फ़र्श पर आकर कई टुकड़ों में बिखर गये !

एक निःश्वास !

—'बस, यही स्थिति मेरी है।'

अच्छा, अगर मैं भी चुपचाप यहाँ से बाहर निकलकर चौपाटी पर चली जाऊँ, तो समुद्र की लहर क्या मुझको आश्रय न देंगी ?'

तब एक कल्पना उसके मन में उभर उठी : किनारे पर ही इसी वेश-भूषा में मेरा शव पड़ा हुआ है। पापा, अम्माँ, अरुण बाबू, चाची, फूफाजी, बुआजी—और हाँ, सुशीला को तो मैं भूल ही गयी—सब की आँखें भरी हुई हैं। कोई आँसू पोंछ रहा है, कोई विलाप कर रहा है, कोई फ़र्श पर सिर पटक रहा है!

कालान्तर में धीरे-धीरे सबके आँसू सूख जायेंगे, लेकिन सुशीला! बी० ए० का उसका केवल एक वर्ष बाक़ी रह गया है फिर उससे विवाह का भी प्रश्न है।···मैं मर ही कैसे सकती हूँ! न, मुझे मरने का भी अधिकार नहीं है!

आँखों में कभी आँसू भर-भर आते, नीलकमल उन्हें पोंछने लगती। —न, मुझे मरने का बिल्कुल अधिकार नहीं है। आँख मूंद लो तो कहीं कुछ नहीं रहता। जैसे यह काला-काला अँधेरा; चुपचाप, मौन, घुप्प।

—दो-एक साल तो आँखें मूंदकर···जीना ही पड़ेगा, निरुद्देश्य!

—निरुद्देश्य क्यों? कौन कहता है कि मैं लक्ष्यहीन हूँ?

—मगर इस तरह तो नींद आने से रही।···अब सो जाओ नीलम! रोने के लिए यह जीवन नहीं बना।

—यह कौन बोल रहा है? एँ! मैं पागल तो नहीं हो रही हूँ? ओः, यह तुम हो। अच्छा-अच्छा, जितने पल, जितनी घड़ियाँ तुम्हारे सान्निध्य में बीती हैं, उनका—अवैधानिक ही सही—सौख्य मुझे जीवित रखेगा। मुझे जीना ही पड़ेगा।

सोचती-सोचती वह एकाएक उठकर बैठ गयी।

अब घड़ी में तीन बज रहे थे। फिर एक निःश्वास!

—अब तो सो ही जाना चाहिये। प्रातःकाल होने पर जल्दी जगना पड़ता है, क्योंकि पाइप आ जाता है।

—अच्छा तो जीवन-संघर्ष में सामाजिक कलुष के ओ छोटे से क्षण, विदा!

तब उसने कम्बल सिर से ढक लिया।

माना कि लौकिक सौख्याधिक्य जीवन की सर्वांगीण उन्नति में गत्यवरोध उत्पन कर देता है; लेकिन इसके बिना कलात्मक प्रेरणाओं को उतना उत्तेजन भी नहीं मिलता, जो किसी क्रान्ति की भूमिका के लिए अनिवार्य होता है। सच बात यह है कि एक संवेदनशील मन ही तो है, जो विचारक या कलाकार को उन अवस्थाओं की परिणतियों में भी नया मोड़ दिये बिना नहीं मानता, जिनमें पकड़कर साधारणजन एक बार पतन के गर्त में पड़कर फिर कभी सन्मार्ग पर आ नहीं पाते।

उस रात जब अरुण ने द्वार के बाहर से भीतर की बत्ती जला दी और फिर द्वार पर कुट-कुट का शब्दाघात किया, तो प्रियम्वदा एकाएक चौंककर उठ बैठी और बोली—"कौन ?"

धीरे से उत्तर आया—"अरुण।"

प्रियम्वदा ने झट द्वार खोल दिया। उस समय उसने स्वामी से यह नहीं पूछा कि आज इतनी देर कैसे हो गयी। समय-असमय आने की छूट रखनेवाले स्वामी की ऐसी अनिश्चित दिनचर्या में, अभ्यस्त नारी के लिए अब ऐसा प्रश्न करना अस्वाभविक हो गया था। फिर पूर्वनियोजित कार्यक्रम के अनुसार घर से चलते समय अरुण यह कह भी तो गया था कि उसका इस समय का भोजन अन्यत्र होगा। उसके लिए खाना बनाने की आवश्यकता नहीं।

पर फिर अब अरुण बिना कुछ कहे चुपचाप कपड़े उतारकर लुंगी पहनने लगा, तब प्रियम्वदा को बोलना ही पड़ा—'अभी थोड़ी देर पहले नीलकमल भी आयी थी। क्या उसकी भी वही दावत थी, जहाँ तुम्हारी?'

यद्यपि उसका यह प्रश्न अविकल, सहज तथा स्वाभाविक था; किन्तु अरुण को उसमें किसी सन्देह-गन्ध का भान हो उठा। तब प्रियम्वदा की उत्सुकोन्मद मुद्रा की ओर न देख एक अन्यमनस्क की भाँति अरुण ने उत्तर दिया—"यह बात तुम मेरे बजाय उसी से पूछतीं, तो ज्यादा अच्छा होता।"

अपनी दुर्बलता छिपाने के लिए हम बहुधा कमजोर नसों पर ऐसे

नश्तर लगा बैठते हैं, जिनका प्रयोग तो दूसरों पर होता है, लेकिन उनकी पीड़ा का अनुभव अन्ततः हमीं को करना पड़ता है।

प्रियम्वदा के मन में पहले शंका मात्र उत्पन्न हुई थी, अब वह कुछ पक्की हो उठी। अतः उसने कह दिया—"तुम्हारे रंग-ढंग अब मुझे कुछ बदलते जान पड़ते हैं।"

तब यह सोचता हुआ अरुण भीतर-ही-भीतर सिहर उठा कि बहुत दिनों से मैंने इसके मन-प्राण को जो कोई स्पन्दन नहीं दिया, कदाचित् यह उसीकी जाग उठी कुण्ठा है। फलतः वह भीतर से कुछ कम्पित हो उठा।

सुरापान की मादकता कुछ शिथिल अवश्य हो गयी थी; किन्तु उसका प्रभाव अब भी शेष था। इसलिए उसने विनोद-विलसित होकर कुछ बनते हुए कह दिया—"जब तक तुम्हारे अधिकारों में कुछ अंतर नहीं पड़ता, तब तक मुझमें बदलते हुए रंग-ढंग देखना और उनको लेकर विग्रह ठान लेना तुम्हारे इस प्राणदायी लोने रूप के लिए न उचित है, न शोभन।"

उत्तर की भाषा से प्रियम्वदा ने अनुभव किया—स्वामी के अधर ही नहीं, नयन भी मेरा मान रखना भूले नहीं।

अब यामिनी पसीने से भीग चली थी। वार्ता-विनोद में कहीं देर न हो जाय, कदाचित् यही सोचकर वह फिर कुछ न बोली। चुपचाप अपनी शैया पर लेट गयी। सुरेश पार्श्व में सो रहा था। उसे वक्ष में लगाकर उसने करवट बदल ली और लिहाफ़ ओढ़ते हुए मान-गर्वित मर्मवाणी में एक तेवर के साथ केवल इतना कह दिया था—"इस बात का उत्तर आज नहीं कल दूंगी।"

कथन के बाद शैया पर पूरे पैर फैलाकर अगड़ाई लेती-लेती वह कुछ सिहर उठी। फिर सोचा—इतनी रात बीत जाने के बाद नींद की चोरी करने में कोई रस नहीं। सवेरे उठने की तबीयत नहीं होती। फिर पलँग के कोने में लटकते हुए स्विच के बटन को चुपचाप दबाकर उसने बिजली की बत्ती ऑफ़ कर दी।

कक्ष में छाये हुए अंधकार के बीच चुपचाप लेटा हुआ अरुण अब तक मन-ही-मन, अभी थोड़ी देर पहलेवाले उसी होटल के कमरे में जा पहुँचा, जहाँ उसने नीलकमल को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करके, नवल परिरम्भरण की आत्मलुब्ध क्रीड़ाओं में एक बार विलय हो जाने की चेष्टा की थी ।

सहसा उसका समस्त स्नायुमण्डल एक बार फिर आन्दोलित हो उठा । पशुमानव जागृत होकर उसके मन-प्राण को स्वच्छन्द रूप से छू-छूकर टटोलने लगा । तभी एक लहर-सी आ गयी, उसके हृत्तल तीरे ।··· प्रियम्वदा के साथ यदि कल कुछ विग्रह ही हो गया तो ?

—तो मेरे जीवन में एक नया मोड़ आ सकता है । नवीन प्रेरणाओं से मेरी कलात्मक शैलियों और विधाओं को एक प्रयोगात्मक उत्तेजन भी मिल सकता है । मैंने अनुभव किया है—निष्पाप और निष्कलंक जीवन की प्रेरणा-हीन घिसन और जड़ता कला के विकास को प्रायः अवरुद्ध कर देती है नैतिक मान्यताओं के साथ समझौता करते-करते विद्रोहात्मक बुद्धितत्व का अग्रगामी प्रवाह प्रायः कुण्ठित हो जाता है ।

लेकिन तब तक उसका न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, अभीष्ट और निषिद्ध का विवेक-संघर्ष और मर्मसंतुलन पूर्ण रूप से कुण्ठित हो नहीं पाया था । अतः उसका छिपा हुआ प्रबुद्ध मानव अपने आप भीतर-ही भीतर करवट बदलकर बोल उठा—'सजग और सावधान पग जब तक डगमगाते नहीं, तभी तक यह शान्त स्थिर जीवन सुव्यवस्थित रहता है । इसके विपरीत यदि किसी एक भी सीढ़ी पर पड़ता हुआ कदम कहीं फिसल जाता है, जो फिर गिरते-पड़ते शरीर का कोई-न-कोई अंग भंग हुए बिना रुकता नहीं ।

···आज तो अभी एक ही सीढ़ी से तू पतित हुआ है रे लम्पट ! यदि कहीं इसी तरह आगे भी तूने पतन में विकास की कल्पना-सम्भावना जारी रक्खी, तो वह दिन दूर नहीं, जब तेरे इस शान्ति-सौख्यपूर्ण गार्हस्थ्य जीवन की प्रवहमान नाव डूब जायगी ! फिर जैसे अन्य आवारे और घृणित पशुमानव फिल्म-उद्योग में लुढ़कते हुए पत्थर के टुकड़े से इधर-

उधर टकराते रहते हैं, बस तेरी भी गणना उन्हीं लोगों में होने लगेगी !

दो-चार मिनट तक अन्तर्विरोध की इन तरंगों से खेलता हुआ अरुण फिर एकाएक नीलकमल के संबंध में सोचने लगा—"क्या उचित है और क्या अनुचित, अब इस वितण्डावाद में कौन पड़े ? मुख्य परिणति यह है कि नीलकमल मेरी हो चुकी। अब उसकी नाव को मुझे धार पर लाना है।'

'आज प्रातःकाल वह छज्जे पर खड़ी हुई कोई मर्मस्पर्शी गीत गुनगुना रही थी।...कण्ठ-स्वर तो उसने बड़ा कोमल पाया है।...अच्छा, उसको अगर संगीत की विधिवत् शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध कर दिया जाय, तो क्या वह प्लेबैक के क्षेत्र में एक सफल गायिका नहीं बन सकती ? चन्द्रबिन्दु जैसा अपरिपक्व गायक यदि थोड़े ही प्रयास से प्रोत्साहन पा सकता है, तो यह नीलकमल क्यों नहीं पा सकती ? मैं उसके सौन्दर्य-भोग की पिपासा में लुब्धप्राण हो-होकर उसको प्राप्त करने की बात तो सोचता रहा; पर सच पूछो तो उसके लिए जीविका का कोई साधन जुटाने की मैंने कोई विशेष चेष्टा नहीं की।'

—'केवल इसलिए कि अगर उनका जीवनक्रम स्थिर हो जायगा, तो न मुझे उसकी सहायता करने का अवसर मिलेगा, न वह मुझसे प्रभावित किंवा आधारित होकर मेरा अवलम्ब पाना चाहेगी। छिः ! कितना स्वार्थी और जघन्य चरित्र है तेरा रे कलाकार !'

—'इस सारे कलुष के मूल में तेरा-लोलुप स्वार्थी पतितप्राय मन ही तो है !'

अब राजपथ पर पूर्ण शान्ति विराज रही थी। सारा जगत स्वरहीन, शब्दहीन होकर मूक बन गया था। कभी-कभी टैक्सियों का हार्न अलबत्ता, कभी निकट से और कभी दूरागत, सुनाई पड़ जाता था।

फिर करवट बदलते हुए अरुण ने सोचा—'क्या सारी रात इसी मनोमंथन में कट जायगी ?...आज प्रियम्वदा को मेरे बदलते हुए रंग-ढंग पर जो आपत्ति हुई, उसमें इस मानवसृष्टि का एक नैसर्गिक रूप ही तो झाँकने

पावन सत्य की उपेक्षा ही तो करते रहते हैं; राख में दुबकी पड़ी छिपी अग्नि की चिनगारियों की ओर भी कभी देखते हैं ! जब कि वे सब-की-सब मिलकर झंझावात के एक ही झकोरे में, गार्हस्थ्य जीवन के इस सारे विशाल भवन को, मिनटों में भस्म और ध्वस्तावशिष्ट बनाकर हमें एकदम से धराशायी बना सकती हैं !'

फिर उस तमसाच्छन्न मूक अमानिशा में एक जुगनू चमक उठी। उसका हाथ सहसा आगे बढ़कर प्रियम्वदा की चूड़ियों पर जा पहुँचा।

एक ओर पाप, दूसरी ओर मानव-प्रकृति का अनिवार्य कौतुक ! मनुष्य की इस दुर्द्धर्षोद्दाम लीला को कोई देखे तो दाँतों में अँगुली दाब ले !

कुछ ही घड़ियों बाद उपस्थिति-परिस्थिति अपनी स्वाभाविक परिणति की सामान्य भूमि पर आ गयी। अरुण अपने को धिक्कारता हुआ सोचने लगा—'दो नावों पर सवार, ओ रे उद्भ्रान्त पथिक ! हाय तू जिस डाल पर बैठा है, उसी को काट रहा है, मूर्ख !'

फिर धीरे-धीरे अपने आप अरुण की आँखें झपकने लगीं।

—मैं अगर प्रारम्भ से ही ऐसा उच्छृंखल व्यक्ति न होता, तो कहीं उच्चतर-माध्यमिक विद्यालय में एक सामान्य शिक्षक मात्र न होता ! मैंने पथ से विपथ हो-होकर ही तो इन प्रशस्त पथों पर आना सीखा है। मैंने अनुभव किया है कि जीवन भर फूंक-फूंककर क़दम रखने और पाप से निरन्तर भयभीत रहनेवाला व्यक्ति साधू भले ही बन जाय, पर समाज को आगे बढ़ानेवाला क्रान्तिकारी विचारक या कलाकार वह कभी हो नहीं सकता, बन नहीं सकता।

—अब सो जा रे अरुण ! सवेरे उठकर बिना मुंह धोये अलमारी में लगे मनुष्याकार दर्पण से अपना मुख देख लेना; तबियत झक् न हो जाय तो कहना ! देख लेना मुख पर कैसी कान्ति है ! देख लेना, संघर्षों से जूझने की कितनी शक्ति है तुझमें !

—हाय रे दुर्बल मानव !

१२

क्लान्तिमयी ऐंठन अभी शेष है। लेकिन उसे ऐंठन क्यों कहूं, जो एक सहज-स्वाभानिक परिणति है, शरीर के धर्म की।···आंख खोलकर देखो, तो सारा समाज अपने को नित्य धोखा देता रहता है। मैं भी उन्हीं लोगों में से एक हूँ !

—क्यों ? मैं उनसे ऊपर भी तो उठ सकती थी।

—ना सारी करामात अपने को जीवित रखने की भावना में है।

फिर उसने मन-ही मन कह लिया—'अन्त में ऐसा तो होता ही है। जीने के लिए मनुष्य क्या नहीं करता ?'

लगभग घण्टे भर वह यूं ही पड़ी रही। घर का काम-काज चलता रहा। अन्त में वह उठी, नित्यक्रिया से निवृत्ति पाकर और कपड़े वदल-कर रात में सोचे हुए संकल्प के अनुसार वह आवेदन-पत्र लिखने बैठ ही रही थी कि अरुण ने द्वादशी के पास आकर उसे टॉप्स लौटाते हुए कह दिया—"यह लो भाभी अपने टॉप्स और ये शेष रुपये। व्याज-व्याज कुछ नहीं पड़ा। जिसके यहाँ रखे थे, उसको जब मैंने समझाया कि यह हमारा घरेलू मामला है, समझ लो, मैंने तुमसे ये रुपये उधार लिये थे, तब उसने ये पाँच रुपये लौटाते हुए कह दिया—तब आपसे व्याज क्या लेना !"

और इतना कहकर जब वह द्वार के बाहर जाने लगा, तो विवश संकुचित द्वादशी ने कृतज्ञता प्रकट करते और एक मुसकान बिखेरते हुए कह दिया—"तुम इतने भले हो, यह मुझे बहुत दिनों बाद मालूम हुआ !"

अरुण ने उत्तर दिया—"मुंह पर प्रशंसा करने में मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"लेकिन अब जाते कहाँ हो ? बैठो न ! कम-से-कम चाय तो पीते जाओ।"

"नहीं-नहीं, मुझे बहुत जल्दी है।"

"सिर्फ़ एक कप ?"

"नहीं, इस समय कुछ नहीं भाभी।"

कथन के साथ नीलकमल की ओर देखकर द्वार के बाहर जाता हुआ

वह सोचने लगा—'काश मैं वैसा भला होता, जैसा तुम समझ रही हो !"

नीलकमल ने एक बार अरुण की ओर आँख उठाकर देखा, फिर नमित मुख आवेदन-पत्र पर जो उसने कुछ लिखना चाहा, तो उसे प्रतीत हुआ, जैसे सफेद-सफेद कागज पर स्याही पुत गयी हो ! स्याही काली-काली, कलुष की प्रतीक !···फिर सोचा—'अब इनके होते हुए मैं क्यों कहीं काम करूँ ? इतना सहारा कम है ?'

तत्काल उठकर वह दर्पण में अपना मुख देखने लगी।···'सब ठीक है। ऐसी कोई बात नहीं हुई। कहीं किसी को कुछ मालूम न होगा और मुझको भी सब रुचिकर हो जायगा। आज तो पहला दिन है।'

—ओः प्रथम दिवस ! उधर एक दिवस वह था, जब मैं स्वामी से मिली थी !

फिर एक बार छज्जे पर आकर वह खड़ी हो गयी। पड़ोस में प्रीति के यहाँ रेडियो पर संगीत चल रहा था—ये कौन आया, मेरे मन के द्वारे···?

भीतर लौटकर फिर उसने दर्पण को उठाकर देखा—मुख पर कहीं कोई चिह्न तो नहीं ? फिर आँखों की पुतलियों की परिधि के श्वेत अंश पर दृष्टि डालती हुई सोचने लगी—'कल जो लाल-लाल डोरे से थे, आज वे सब ग़ायब हैं ! वाह ! क्या कहने हैं !'

फिर दर्पण को यथास्थान रखकर उसने उस श्वेत कोरे काग़ज पर लिखना चाहा—"माननीय महोदय !"

इतने में अरुण पुनः आकर बोल उठा—"मैं अभी थोड़ी देर में तैयार हुआ जाता हूँ। तुमको भी मेरे साथ चलना है, नीलम !"

द्वादशी की आँखें एकाएक अरुण के मुख पर अटक गयीं। सोचा—'इसका हृदय कितना उदार है ! जैसे समुद्र हो !'

इतने में एकदम से चौंककर नीलकमल बोली—"मुझको ?"

"हाँ हाँ, तुम्हीं को। मेरे स्टूडियो तक।" फिर सिगरेट की टुकड़ी बुझाकर धीरे से बोला—"चेष्टा करता हूँ। शायद तुम्हें कुछ काम

मिल ही जाये। पहले कभी ख्याल ही न हुआ कि प्रयत्न तो करना ही चाहिये।"

इसके बाद वह द्वार से बाहर जाने लगा, तो द्वादशी बोल उठी—"बैठोगे नहीं? अरी नीलू, चाचा को पान तो बना देती रानी।"

अरुण ने सिर के घने केशों पर झटका देकर फिर नीलकमल की ओर देखा। देखा कि चौंकते समय इसके ये मृगनयन कैसे फैल गये थे!

उसके मुख पर प्रसन्नता की एक दीप्ति झलक उठी—'मैंने कभी इनकी मादकता पर ध्यान ही नहीं दिया!'

तब द्वादशी की ओर उन्मुख होकर उसने उत्तर दिया—"नहीं, मुझे आज जल्दी जाना था; यद्यपि देर हो गयी है।"

कथन के साथ छज्जे पर आकर वह अपने द्वार की ओर चल दिया।

द्वादशी टॉप्स अपने ट्रंक में यथावत् रखकर उसे बन्द करती हुई नीलकमल की ओर देखती-देखती बोली—"इनके उपकारों से मैं कभी उऋण न हो सकूंगी। तुझे काम दिलवा दिया, तो तेरा जीवन बदल जायगा!"

कुछ गम्भीर होकर उस समय नीलकमल सोच रही थी—'जीवन अब क्या बदलेगा! जो कुछ होना था, सो तो हो चुका।"

वह बिस्तर से लगकर, तकिये पर सिर टेककर, एक बार फिर लेटी-लेटी करवट लेती-लेती अपना अंतर कुरेदती हुई कहने लगी—'कौन जानता है, भविष्य हमें कहाँ लिये जा रहा है!···हाय आतुरता और कल्पित-अकल्पित लहरों के बीच में पड़कर मैं इतनी सजग भी न रह पायी कि···!'

दो मिनट बाद एकदम से उठकर झट से अपना बक्स खोलकर वह साड़ियाँ उलट-पुलट रही थी। बहुत दिनों के बाद आज पहली बार उसे उन धुली और साफ-सुथरी साड़ियों में कोई भी उपयुक्त न जान पड़ी, जिनको धारण करके वह बड़े उत्साह के साथ बाहर निकलती थी।··· सब पुरानी पड़ गयी हैं। बार-बार उन्हीं को पहनने में जाने कैसा लगता है! जीवन को बासी भात की तरह खाया या भोगा नहीं जा सकता!

[illegible]

"मुझको ?"

"हाँ-हाँ, तुम्हीं को।"

काम है जी, कुछ काम है

[illegible]

क्यों नहीं कर आती ?"

"ना । मुझे इस समय फुरसत नहीं है ।" साड़ी पर गरम आइरन-प्रेस घुमाती नीलकमल बोली—"बुआजी से कह देना, मैं आज जल्दी लौटूंगी और जरूर मिलूंगी । तभी बात होगी ।"

तब प्रीति यह कहकर चली गयी—"जाती हूँ । उनको आज आफ़िस में ही खाना भेजना पड़ेगा ।···हाँ, एक बात कहना तो मैं भूल ही गयी । कल मुझे वसन्तप्रभा मिली थी । वह भी कह रही थी—नीलू फिर आयी नहीं ।"

आइरन-प्रेस को उलटाकर रखती हुई नीलकमल बोली—"वे लोग बड़े आदमी हैं । चाहे जो कह सकते हैं ।"

पतली-सी एक अंगुली से सिर खुजलाते हुए प्रीतिलता ने उत्तर दिया—"बड़े हैं कि छोटे, यह तो मैं नहीं जानती । सखी होने के नाते तुम्हारी उसकी बड़ी आत्मीयता थी, इसीलिए शायद उलाहना भी दे रही थी । लेकिन मैं पूछती हूँ कि बड़े आदमियों से सम्बन्ध बनाये रखने में क्या कोई बुराई है ?"

नीलकमल को वे सब बातें स्मरण आ रही थीं, जिनके आधार पर वह उसके यहाँ जाने का विचार त्याग चुकी थी। एक बार यह भी उसके मन में आया—'गोखले साहब उसे लेकर प्रदर्शनी जा रहे हैं—यह बात भी वसन्तप्रभा ने मुझसे छिपायी थी । अगर वह मुझे अपने साथ ले जाती, तो क्या मैं उसका कुछ छीन लेती ?···नहीं-नहीं, मैं ऐसे लोगों से सम्बन्ध रखना पसन्द नहीं करती। इस वसन्तप्रभा को अपने जिस स्वामी पर बड़ा नाज है, वह नारी-सौंदर्य को उसी तरह सूंघता रहता है, जैसे कोई मरभुखा देशी कुत्ता हो ?"

फिर वह दृश्य उसके सामने आ गया, जब गोखले साहब ने उसका हाथ उलट-पलटकर देखा था ।

फिर जैसे कोई डकुरा उठ रहा हो, उसके मन में !···'मैं क्या कोई समाज-भोग्या नारी हूँ ?'

इसी समय उसे अरुण का ध्यान हो आया—प्रारम्भ में ही उन्होंने कहा था—रोने से काम नहीं चलता।···कितनी बार प्यार से यही न कहकर उन्होंने मुझे आगे बढ़ने को विवश किया है कि अस्थायी उपायों से परिस्थितियाँ सुलझती नहीं ?'

तभी उसके मन ने कह दिया—'उनकी बात और है।'

क्षरा भर में यह सब अन्तर्विरोध सँभालती-सकुचाती वह एकाएक हँस पड़ी और बोली—"बुरा लग गया ? बड़ी भोली हो प्रीति। तुम्हें अभी ज़िन्दगी का पता नहीं है; तुम क्या जानो कि वह निर्माण चाहती है, नव-निर्माण।"

फिर धोती को प्रेस करती-करती कहने लगी—"तुम्हारे पास···?"

वह कहने जा रही थी कि कोई बढ़िया साड़ी हो, तो आज पहनने के लिए मुझे दे दो; लेकिन माँ को पास ही बैठा देखकर वह इसके आगे कुछ कह न सकी।

तब तक प्रीति ने कह दिया—"बात कहती-कहती रुक क्यों गयीं दीदी ? मेरे पास···मेरे पास क्या ?"

"कुछ नहीं। यों ही, मैं कह रही थी कि तुम्हारे पास तो बहुत बढ़िया-बढ़िया साड़ियाँ होंगी !"

प्रीतिलता समझ गयी—'शायद यह कहना चाहती थी कि मेरे पास तो बस यही रह गयी है।' उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि कथन के अन्त में नीलकमल का गला भर आया है। फिर उसके ध्यान में आया कि आजकल नीलू जो इतनी व्यस्त रहती है, उसके मूल में कहीं कोई पीड़ा अवश्य है ! काफ़ी अरसा भी तो हुआ, उसे स्वामी से अलग हुए !

तब उसने पूछा—"क्यों आज किसी खास जगह कोई इण्टरव्यू है ?"

फिर बिना रुके, उठकर बोली—"अच्छा, मैं अभी आयी।" और इतना कहकर कमरे के बाहर हो गयी।

नीलकमल ने उठकर द्वार बन्द कर लिया और लौटकर माँ की ओर देखा तो देखा कि वह धोती से आँसू पोंछ रही हैं। तब सहसा वह

आश्चर्य में पड़ गयी और बोली—"अम्माँ, आज तुम्हारी आँखों में ये आँसू कैसे ?"

धोती से आँसू पोंछती हुई रुद्ध कण्ठ से द्वादशी ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, नीलू। मैं यही सोच रही थी कि कितने अच्छे-भले घर में मैंने तेरा विवाह किया ! कितना सुन्दर कन्हैया सा तुझे वर मिला ! आज तुझको क्या कमी होती ! लेकिन भगवान से न देखा गया ! दूसरी ओर जब सोचती हूँ कि जाने कहाँ-कहाँ से और किस-किस तरह से तू जो इतना रुपया ले आती है, वह सब इसी गृहस्थी की भट्ठी में झुक जाता है। यही सब रुपया अगर तू बचाकर रख पाती, या अपने ही उपयोग में लाती रहती तो तेरे पास साड़ियों की क्या कमी रहती ?"

माँ की बात सुनकर नीलकमल स्तब्ध हो उठी—'छिः ! अम्माँ के के लिए रात को मैं क्या-क्या सोचने लगी थी ! सच पूछो तो वे सब जानती हैं। मेरे किसी भी रोएँ का दर्द उनसे छिपा नहीं रहता !'

द्वादशी अब भी आँसू पोंछ रही थी।

मुलगाँवकर बाहर छज्जे पर खड़ा कुलकर्णी के कान के पास मुंह ले जाकर कह रहा था—"रात कैसी कटी प्यारे ? बीवी से खटपट हो गयी न आखिर ! और धोती धो उसकी !"

और कुलकर्णी बोल रहा था—"तुझसे मतलब साले ? चला वहाँ से पंचायत करने। बड़ा सगा बनता है !"

इतने में अरुण द्वार पर आकर कहने लगा—"अरे, तुम अब तक तैयार नहीं हुई नीलम ?"

नीलकमल की साड़ी कंधे से नीचे गिर गयी थी। झपटकर उसने कंचुकी से कसे उरोज ढक लिये। फिर सस्मित सकुचित होती-होती बोली—"बस अभी दस मिनट में।"

अरुण ने अपनी रिस्टवाच की सुइयों की ओर देखते हुए कहा—"तो फिर तुम चली आना, अच्छा ! मुझे देर हो जायगी। ठीक ग्यारह बजा है इस समय। बारह बजे तक तुम्हें अवश्य आ जाना है। हो सके

तो और जल्दी। बल्कि ऐसा करो, टैक्सी से आओ। आय और मर्यादा परस्पर पूरक परिस्थितियाँ और मर्यादा बनाने से बनती है।"

नीलकमल माँ की ओर देख रही थी। अरुण जीने की ओर बढ़ रहा था। उसके ये शब्द बार-बार नीलकमल के मानस में गूँज रहे थे— 'मर्यादा बनाने से बनती है।—तात्पर्य यह कि उसका ध्यान न रखने से नष्ट हो जाती है।'

नीलकमल के मन पर पुनः वही प्रश्न उठ खड़ा हुआ—समाज में ये जितने वैभवशाली, मर्यादावादी, बुद्धिजीवी, व्यवसायी और कलाकार, प्रोफेसर्स, डॉक्टर्स, एडवोकेट्स, जजेज तथा मिनिस्टर्स हैं, सब-के-सब जिस आदर्श की बात कहते हुए नहीं अघाते, जिस मर्यादा का ढिंढोरा पीटते हुए वे शर्माते नहीं, स्वय उसी की हत्या करते रहते हैं; नित्य अहर्निश! ···तो क्या पाप का एक पक्ष वास्तव में बड़ा सुखद होता है? और क्या वही जीवन को स्वस्थ बनाता रहता है? या स्वास्थ्य केवल मन का संयम और संतोष है?'

एक निःश्वास लेते-लेते तब उसने साड़ी की तह खोलकर पहनने के लिए उसे कमर से लपेट लिया।

द्वादशी कह रही थी—"अब की बार जो रुपया मिले, उससे तू अपने लिए दो-एक अच्छी साड़ी खरीद ले। गृहस्थी की भट्ठी तो धधकती ही रहती है।"

शायद इसके आगे द्वादशी और भी कुछ कहती, पर तभी प्रीतिलता ने अन्दर आकर तीन साड़ियाँ नीलकमल के सामने रखते हुए कह दिया— "लो, जो पसन्द हो, उसे पहन लो। जल्दी बहुत है तुमको। नहीं तो मैं अभी एकदम नयी तुमको तुरन्त ला देती दीदी।"

आशा से अधिक आत्मीयता की मिठास पाकर नीलकमल प्रीतिलता की ओर देखकर मुसकराने लगी। फिर स्वाभिमान से पूर्ण एक तेवर-सा दिखलाती हुई बोली—"नयी साड़ी की जरूरत नहीं है प्रीति। काम तो किसी-न-किसी तरह चल ही जाता है।"

"यह तुम क्या कह रही हो दीदी ?" प्रीतिलता और भी प्यार के साथ बोली—"तुम्हारे साथ 'किसी तरह' का क्या संबंध ? काम तो अच्छी-से-अच्छी तरह चलना चाहिये तुम्हारा। इसलिए जब मैं ले आयी हूँ, तब एक साड़ी तो तुम्हें पहननी ही पड़ेगी; नहीं तो सचमुच मुझे बड़ा बुरा लगेगा। इस वक्त तुम यही साड़ी पहन लो, शाम को मैं तुम्हें नयी साड़ी ला दूंगी। रुपये चाहे जब दे देना—या न देना। बस !"

नीलकमल सोच रही थी—'शायद दिन अब कुछ अच्छे आनेवाले हैं। रुपये काफ़ी जमा रहें, तो सब छिपा बना रहता है। यह दरिद्रता ही असल में नाग के दाँत बनकर डसती रहती है।'

द्वादशी ने आटे की लोई बनाते हुए कह दिया—"खैर अब तू ले, ले एक। जब प्रीति इतना कह रही है, तब ले ही लेना ठीक है।"

नीलकमल ने साड़ी पसन्द करते हुए कह दिया—"अच्छी बात है। बस यही दे दो, हरी जमीनवाली।"

प्रीतिलता ने उसका मनोभाव जानने की इच्छा से पूछा—"और यह धूप-छाँहवाली ?"

"नहीं, इसमें शोखी बहुत है।"

"और दीदी तुममें ?"

पलकें उठाती-गिराती थोड़ा-थोड़ा शरमाती हुई नीलकमल मुसकराने लगी। माँ बैठी थी, इसलिए कोई उपयुक्त उत्तर देने के स्थान पर वह चुप रह गयी। उसे गोखले साहब की बातों का स्मरण हो आया। क्या समझ कर उन्होंने कहा था—'तुमको प्रेम करनेवालों की संख्या काफ़ी बड़ी होगी···? हूँ, उस बड़ी संख्या में उन्होंने अपना स्थान भी सुरक्षित रख छोड़ा होगा !'

फिर उसे मास्टर पंत का ध्यान हो आया—'कितना बना हुआ आदमी है ! कहता था—मुझे वाइफ़ का धोखा हो गया ! कायर और कैसे होते हैं !'

अन्त में उसने कह दिया—"तुमको शायद यह बात न मालूम होगी

कि शोखी का एक अर्थ शरारत भी होता है, जो केवल प्रीति में ही संभव है।"

प्रीतिलता शेष साड़ियां उठाकर यह कहती हुई उठकर खड़ी हो गयी—"तुमसे पार पाना बड़ा कठिन है दीदी।"

और फिर चल दी।

थोड़ी देर बाद शृंगार-प्रसाधनों से पूर्णतः सज-धजकर नीलकमल जब स्टूडिओ को जाने लगी, तो शांतिबाई उसे मार्ग में खड़ी मिल गयीं। तब उनके निकट जाकर नीलकमल बोली—"इस समय तो बहुत जल्दी में हूँ बुआ, लेकिन शाम तक अवश्य मिलूंगी।"

शांतिबाई ने उत्तर दिया—"मिलना चाहे जब, मुझे सिर्फ एक बात तुझे बतानी थी कि भाभी की चिट्ठी आयी है। उसमें लिखा है—आजकल संयोग बाबू परेशान बहुत हैं। एक मकान बिक गया है और रेडियो की दूकान भी आजकल बन्द रहती है। इसके सिवा खास बात यह है कि इधर कई दिनों से वे कुछ बीमार भी हैं।"

शांतिबाई की बात पर नीलकमल पहले स्तम्भित और फिर द्रवित हो उठी। बिना कोई उत्तर दिये क्षण भर मौन खड़ी रही। एक बार मन में आया—'वह घर लौट जाय और एकान्त में कहीं छिपकर थोड़ी देर बैठ कर रो ले। इस अवस्था में उत्साह के साथ किसी परियोजना में सम्मिलित होना उसके लिए सहज और शक्य नहीं।' फिर यह भी उसे ध्यान हो आया कि अरुणबाबू के स्टूडिओ में पहुँचना और जल्दी पहुँचना, भविष्य-निर्माण के नाते कितना आवश्यक है! फिर एक बार स्वामी की मुखश्री का स्मरण करते-करते उसने सोचा—'वे कितने दुबले हो गये होंगे! उनके निकट होगा? सेवा और परिचर्या में कौन समय देता होगा? काश ऐसे समय वह उनके निकट होती···!"

फिर एक निःश्वास के साथ वह सोचने लगी—'ऐसे समय क्या मुझे कुण्ठाओं को लेकर चुपचाप यहीं बनी रहना चाहिये?'

फिर उसे ध्यान आया—'ऐसे समय भी उन्होंने मुझे याद नहीं किया!

बुआजी के पास वे स्वयं कोई पत्र नहीं भेज सकते थे ?···अच्छा, इस अवसर पर यदि अपने मन से मैं उनके यहाँ चली जाऊँ, तो क्या अम्माँ, जीजी और देवर नयनरंजन मुझे देहरी के भीतर पैर भी न रखने देंगे ?'

धीरे-धीरे एक-एक पग आगे बढ़ाती और सीढ़ियों से उतरती हुई जब वह फुटपाथ पर आ गयी तो एक बार फिर उसके मन में आया—'इस समय मेरे पास दो-चार हज़ार रुपये न सही, पाँच-सौ रुपये भी होते, तो बिना किसी से अनुमति लिये मैं उनके पास चली अवश्य जाती। फिर ऐसी दशा में कोई आर्थिक बल लिये बिना मैं जा ही कैसे सकती हूँ ?'

फिर उसे ध्यान हो आया—'अम्माँ से मैंने कुछ रुपये तो लिये ही नहीं। टैक्सी करनी पड़ेगी, और भी दो-चार रुपये (इसके अतिरिक्त) जेब में होने चाहिये।'

तब वह माँ के पास वापस लौट गयी। द्वादशी ने पूछा—"क्या हुआ ? लौट क्यों आयी ?"

नीलकमल को ध्यान हो आया—'जो रुपये मैंने दिये थे, वे सब तो टॉप्स छुड़ाने में ही समाप्त हो गये होंगे।' तब माँ से रुपये न माँगकर वह बोली—"कुछ नहीं, यों ही। प्रीति से एक बात कहनी थी।"

झट से वह प्रीति के पास जाकर बोली—"केवल साड़ी देने से काम नहीं चलेगा। कुछ रुपए भी तो मुझे आज चाहिये, कम-से-कम एक टेनर।"

प्रीतिलता पुलकित हो उठी। मुसकराते हुए उसने उत्तर दिया—"बस, सिर्फ़ दस रुपये ! न सौ, न पचास, न बीस !"

प्यार से चपत के बहाने उसके कपोल पर अँगुली का स्पर्श देती हुई बोली—"प्रीति को तो कुछ दिया जाता है, उससे कुछ लिया नहीं जाता। हो सका तो मैं आज ही ये रुपये तुम्हें वापस कर दूँगी।"

"मुझे सब मालूम है दीदी, फिर भी आज तक तुमने कभी मुझसे कुछ माँगा नहीं। मुझे सेवा करने का कोई अवसर ही नहीं दिया। आज न जाने क्या सोचकर मुझसे जो कुछ माँगने भी आयी हो, तो उसे देकर मैं

भला वापस लूंगी ! मुझे तुमने समझ क्या रखा है ?"

नीलकमल संकुचित हो उठी ।—'ऐसे समय वह क्या कहे ? बंधन खोलकर घड़ी-दो-घड़ी मन से दो बातें करने का समय ही कहाँ है, उसके पास ?'

तब तक प्रीतिलता ने दस-दस के दो नोट निकालकर नीलकमल को देते हुए कह दिया—"लो, मगर लौटाने का नाम न लेना। जब कभी अधिक आमदनी का कोई साधन जुट जाय, तब अपनी इस छोटी बहन को चाहे जो दे देना।"

नीलकमल रुपये लेकर पर्स में रखती हुई बोली —"भगवान ने चाहा तो ऐसा ही होगा प्रीति।"

इस बार जब वह ज़ीने से उतरने लगी तो वह सोच रही थी—'वर्तमान के प्रति विद्रोह…!'

१४

संयोगरंजन के पिता मूल निवासी तो उत्तरप्रदेश के थे, सो भी कन्नौज के, लेकिन फिर वे अहमदाबाद में रहने लगे थे। पहले वे मिल-स्टोर्स की दलाली करते थे, लेकिन कुछ ही दिनों बाद उनकी, बड़े ऊंचे पैमाने पर, मिल-मशीनरी के कल-पुर्जों की एक बड़ी दुकान भी हो गयी थी। क्रमशः यह व्यवसाय इतनी उन्नति करता गया कि पचास वर्ष की अवस्था में वे मालामाल हो गये।

कहते हैं, सुन्दर व्यक्तित्व रखनेवाले लोग बहुत बुद्धिमान और तेजस्वी बहुधा कम होते हैं, कलात्मक रुचियों का समन्वय भी उनमें कम ही होता है। प्रायः जिन लोगों में रूप बहुत अधिक होता है, बुद्धि के क्षेत्र में वे बहुत प्रखर और यशस्वी नहीं होते।

बुद्धिरंजन बाबू इनमें अपवाद थे : मनस्वी और कुछ हँसोड़ तबियत के। या तो वे मजदूरों के साथ बैठना-उठना पसन्द करते, या फिर एकदम उच्चस्तर के व्यवसायियों, प्रशासनिक अधिकारियों, जरायमपेशा लोगों पर शासन करनेवाले जेलरों और पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरलों अथवा उनके सुपरिन्टेन्डेन्ट्स के साथ। उनका कहना था कि साहस के क्षेत्र में चोर और डाकुओं में अद्भुत प्रतिभा होती है। फँसाकर नोच-खसोट करना और पैसा न रहने पर दूध में पड़ गयी मक्खी की भाँति निकालकर बाहर फेंक देना, एकदम से जड़ और निर्मम बनकर, धक्का देकर, दरवाजे से बाहर कर देना आदि, वेश्या के ऐसे लक्षण हैं, जिनको सांसारिक दृष्टि से सफल होनेवाले व्यक्तियों को ध्यान से देखना और अध्ययन करना चाहिये।

तरुण जीवन में उन्होंने सभी कौतुक खेलकर देखे थे। वेश्याओं को और

पहलवानों को उन्होंने नौकर रक्खा था। गुण्डों और बदमाशों को मिलाये रखना, अपने विरोधियों को पिटवा देना, मार्केट के बीच चौरास्ते पर रात-विरात लाठियों से अपाहिज, अंग-भंग, लूला-लँगड़ा करवा देना; यहाँ तक कि अत्यधिक वैर-विरोध बढ़ जाने पर उनकी नाक तक कटवा लेना उनके लिए एक सामान्य बात थी! मजदूरों के बीच में बैठ-बैठकर वे उनके परिवारों के साथ भी उठने-बैठने लगते थे। जब वे किसी लड़की या लड़के को बहुत होनहार पाते, तो उसके विकास में पर्याप्त सहयोग भी देते थे।

एक मजदूर का नाम था जगधर। उसका लड़का एक दिन कहीं रास्ते में मिल गया था। परिचय केवल इतना था कि गर्मी के दिनों में दर-वाजे पर आकर एक बार उन्होंने उसके हाथ का पानी पिया था। फिर एक दिन वह रास्ते में जो अचानक मिल गया, तो उनको देखते ही हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगा। देखते ही उन्होंने उसे पास बुला लिया, प्यार से लिपटाया, सिर पर हाथ फेरा और आशीर्वाद देते हुए कहा—"तुम बहुत उन्नति करोगे। क्या नाम हैं तुम्हारा?"

बच्चे ने जवाब दिया—"गिरधर।"

"कौन से दर्जे में पढ़ते हो?"

"पाँचवें में।"

"हमको कैसे जानते हो?"

अब वह थोड़ा मुसकराया। फिर उसकी आँखें कुछ फैल गयीं। पहले सिर नीचा कर लिया, फिर मुँह ऊपर उठाकर पलक झपकाते हुए बोला—"एक बार आप हमारे घर पर आये थे न!"

उन्होंने पूछा—"कितने दिन हुए?"

उसने अंगुली के पोरों पर गिनते हुए उत्तर दिया—"एक महीना, तेरह दिन।"

बस, उसकी इसी बात पर वे मुग्ध हो उठे। अपने साथ ताँगे पर बिठाला और उसके घर जाकर जगधर को बुलवाया।

अब संध्या के साढ़े चार बज रहे थे; जगधर तब तक काम से

लौटकर नहीं ग्राया था। तब वे ग्रपने घर लौट गये। चलते-चलाते इतना कहते गये कि उसे हमारे यहाँ भेज देना।

दो घंटे बाद जगधर जो उनके यहाँ पहुँचा, तो बुद्धिबाबू ने हाल-चाल पूछने के बाद उसे चाय पिलायी। ग्रन्त में जब वह चलने लगा, तो उन्होंने कह दिया—"ग्रपने इस लड़के गिरधर को खूब पढ़ाना। ग्राज से उसका सारा खर्चा मेरे ऊपर रहा।"

फिर मुनीमजी की ग्रोर देखते हुए उन्होंने ग्रादेशात्मक ढंग से कहा—"मुनीमजी, बीस रुपये हमारे नाम लिखकर इस जगधर को दे दीजिये।"

इस बात को बीस वर्ष व्यतीत हो गये। ग्राज वही गिरधर सचिवालय के शिक्षा-विभाग में ग्रनुसचिव है!

उनके यहाँ एक नौकरानी चौका-बरतन किया करती थी। कभी-कभी वह ग्रपने साथ एक बच्ची को भी ले ग्राती। उसका वर्ण उजला ग्रौर ग्राँखें बड़ी-बड़ी थीं। एक दिन उसे देखकर उन्होंने पूछा—"तेरा नाम?"

लड़की लजा गयी। माँ की गोद उसने ग्रपना मुंह छिपा लिया।

नौकरानी ने उत्तर दिया—"नाम तो एहिका पड़कुलिया है मालिक।"

ग्राश्चर्य के साथ उन्होंने पूछा—"क्या कहा?"

नौकरानी ने फिर कह दिया—"पड़कुलिया, मालिक।"

तब वे बहुत हँसे ग्रौर प्रसन्नता के साथ बोले—"ग्रजीब नाम है! यह नाम रक्खा किसने?"

नौकरानी ने उत्तर दिया—"तुम्हारे गुलाम मालिक। ग्रौर भला को रक्खी?"

"मगर ऐसा नाम रखने का कारण?"

नौकरानी हँसती-हँसती बोली—"हमरे घर के खपरैल मा जब एकु चिरैया ग्राय कै बैठि जाति रहै, तब या ग्रोहिका उड़त देखि कै बहुत खुश होति रहै मालिक। व चिरैया पड़कुलिया ग्राय। तिफाक कै बात कि

एकु दिन मकानमालिक हमका घर ते निकारि दीन्हेंनि। फिर जहाँ क्वाटर मिला, हुआँ तो पड़कुलिया आवति न रहै। तब या अकसर पूछँ लागैं—अम्माँ पड़कुलिया ! अब तुमहीं स्वाचौ मालिक, पड़कुलिया कतौं बनाये बनती है ! तब उइ येहि क नाँव पड़कुलिया राखि दीन्हेनि।"

कालान्तर के एक दिन जब वह नौकरानी कुछ रुपया पेशगी माँगने लगी, तो उन्होंने कहीं प्रश्न कर दिया—"आज महीने के बीच में तुझे पैसे की जरूरत कैसे पड़ गयी ?"

नौकरानी ने घूंघट के भीतर से उत्तर दिया—"मालिक काल्हि पड़-कुलिया कै फीस जमा करै क है, नाँहीं ओहिकेर नाँव न कटि जायी !"

तब बुद्धिरंजन बाबू ने दस रुपये देते हुए कहा—"उसकी पढ़ाई का खर्चा मुझ से हर पहली तारीख को माँग लिया करना, अच्छा ! तेरी तनख्वाह से और इससे कोई मतलब नहीं रहेगा।"

और आज वही पड़कुलिया बम्बई के फिल्म-उद्योग में एक प्रसिद्ध अभिनेत्री है, जिसका नाम है मृगलोचनी तलवार।

बुद्धिरंजन बाबू के जीवन की ऐसी बहुतेरी बड़ी विलक्षण और मनो-रंजक कहानियाँ हैं। अपनी शक्तिमत्ता के बल पर उन्होंने अहंकारी और दंभी लोगों का मानमर्दन करने में जैसे कोई बात उठा नहीं रक्खी, वैसे ही असहाय और दीन-हीन वर्ग के बच्चों में प्रतिभा के जन्मजात अंकुर देखकर उनके विकास और निर्माण में भी कोई उपाय बाकी नहीं रक्खा। आज बुद्धिरंजन बाबू भले ही दुनिया में न हों, लेकिन उनका यश अब तक अहमदाबाद में बहुचर्चित बना है।

संयोग बाबू के यहाँ से नीलकमल को चला तो आना पड़ा, लेकिन चलते-चलाते और फिर कुछ महीने ही नहीं, वर्ष-के-वर्ष व्यतीत कर डालने के बाद भी अपने स्वामी संयोग के मन-कान्तार में वह एक समस्या छोड़ गयी। जो दोषारोपण उन्होंने उस पर किया था, वह सर्वथा निराधार है,

इस सम्बन्ध में उसने अपने स्वामी से एक शब्द भी नहीं कहा था। बस, यही बात उनके आत्मचिंतन का एक प्रमुख केन्द्र बन गयी थी।

अगर किसी व्यक्ति के भीतर का निहित सत्य इतना पुष्ट और प्रबल है कि वह अपनी सुरक्षा में किसी प्रकार की सफाई देना भी पसन्द न करे, तो इसके मूल में क्या है? केवल एक अहंकार ही न! तब यदि नीलकमल स्वाभिमान के नाते, उसके जीवन में फिर कभी प्रवेश न करना चाहे, तो क्या यह एक इतना बड़ा पाप है कि उसका कभी स्मरण न करना चाहिये?

चन्द्रविन्दु बाबू ने नीलकमल के सम्बन्ध में उल्टी-पल्टी बातें सुझाकर, बनाकर, गढ़कर संयोग बाबू की इस सीमा तक उत्तेजित कर दिया कि उन्होंने उसे अपमानित करके घर से बाहर कर दिया। फिर कभी न कोई पत्र डाला, न उसके पिता के किसी पत्र का उत्तर दिया। ये सारी बातें अपनी सम्पूर्ण चित्रात्मक स्मृतियों के साथ कभी-कभी संयोग बाबू के मन में उठ-उठकर, प्रश्न बन-बनकर, बोल उठती थीं। किन्तु इनके समाधान के सम्बन्ध में वे अपना कोई क़दम उठाने को तत्पर न होते थे। उनके इस रूप में अहम् तो था, लेकिन उनकी तात्कालिक एकान्त वितृष्णा अब गल-गलकर स्नेह-सलिला वेदना बन गयी थी।

एक ओर उनके मानसलोक की स्थिति यह थी कि वे दूसरा विवाह करने के लिए तैयार न थे। दूसरी ओर उनके प्राण बहुधा अत्यंत अधीर व्याकुल होकर छटपटाते रहते! खान-पान, व्यापार, लेन-देन, घर की व्यवस्था, इष्टमित्रों से मिलना-जुलना, सार्वजनिक समारोहों और उत्सवों में भाग लेना, दुकान मे बैठना, आय के साधनों पर अपनी एक सतर्क दृष्टि रखना आदि पारिवारिक जीवन के नाना व्यापारियों में उनका इतना समय निकल जाता था कि व्यक्तिगत जीवन की रसात्मक वृत्तियों में समा जाने के लिए उनके पास अवकाश ही न बचता था।

कभी-कभी उनके मित्र और बन्धु-बान्धव यह देखकर आश्चर्य भी करते कि भोग-विलास से सर्वथा रहित यह विलक्षण प्राणी कभी कहीं

से टूटता क्यों नहीं ! आखिर वह कौन-सी मोह-माया है, कौन-सा ऐसा गुप्त-प्रच्छन्न अवलम्ब और बल है जिसके सहारे यह अब तक पर्ववत् शान्त-स्थिर, निर्द्वन्द्व जीवन व्यतीत करता रहता है ? यह कोई न जानता था कि संयोग बाबू कई-कई दिनों तक बिल्कुल सो नहीं पाते और फिर किसी दिन, किसी रात कभी बैठक में, कभी शयनकक्ष में, कभी दुकान के अंतरंग केबिन और कभी किसी आत्मीय-बंधु के यहाँ चुपचाप, मौन, गंभीर, उदास, आठ-आठ दस-दस घण्टों की नींद लेकर अपनी खोयी हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर लेते हैं !

उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध था कि वे हँसते कम हैं, बहुत कम । किन्तु उनके कुछ मित्र जानते थे कि वे कभी-कभी बहुत खुलकर हँसते हैं, यहाँ तक कि अट्टहास भी करते हैं; लेकिन कहाँ, कब और कैसे ?—इसका गुप्त रहस्य उनके दो-ही-एक मित्र जानते थे । घर, परिवार और आत्मीय स्वजनों के वर्ग में प्रसिद्ध था कि वे किसी प्रकार का नशा नहीं करते । लेकिन वे नशा करते थे—सुरापान में डूबकर, मार्फ़िया का इन्जेक्शन लेकर और कभी-कभी सारी रात किसी लड़की के यहाँ बिताकर वे प्रायः अचेत पड़े रहते । वे वेश्या भी सर्वथा असामान्य स्तर की रखते ! उसको यह भी पता न होता कि ये हैं कौन ! कहते तो यहाँ तक हैं कि उसके यहाँ वे अपने लौकिक जीवन से सर्वथा भिन्न वेश-विन्यास और मेकअप में रहते हैं ।

स्वभाव से अब वे आतंकवादी हो गये थे । अपने हठ और दुराग्रह के पालन में वे इतने दृढ़ बन गये थे कि एक वेश्या को उन्होंने केवल इस बात पर अपमानित करके छोड़ दिया था कि चलते समय उसने केवल इतना पूछा था—"अब कब आओगे ?"

उनको क्रोध केवल इस बात पर था कि जिस अवधि का पूरा मूल्य वे एक साथ दे चुके हैं उसके बाद पुनः आने-न-आने के साथ उसका अब सम्बन्ध क्या है ! जिस भेंट, मिलन और समर्पण की सीमा केवल वर्तमान के शोषण के साथ है, उसके बाद फिर उसके क्रम-निर्वाह और

पुनरागमन का प्रश्न क्यों उठता है ?

उत्तर में उन्होंने कह दिया था—"तुम्हारे तो टाइम का ही मूल्य है। तुम पैसे के नाम पर अधिकतर दो-चार घण्टे के लिए बिकनेवाली क्षुद्र मानवी, तुम्हारा इतना साहस ! मैं आऊँ, चाहे न आऊँ, तुमसे मतलब ? मुझ में कोई सुरखाव का पर तो लगा नहीं; मेरे जैसे दर्जनों तेरे घाट पर नित्य चक्कर काटते रहते हैं !"

एक बार किसी प्रदर्शिनी में अपने यारों के साथ आयी हुई एक वेश्या ने एक रेस्तोराँ में बैठे-बैठे कहीं उनसे 'आदाव अर्ज़' कर दिया, तो उन्होंने तत्काल मैनेजर के पास जाकर सम्पूर्ण इतिवृत्त देकर पूछा—"यह क्या बदतमीज़ी है ?"

मैनेजर पहले तो एकाएक सकते में आ गया। फिर कुछ सोचकर उसने उत्तर दिया—"बाबू साहब, फिर किया क्या जाय ! यह धंधा ही ऐसा है, जिसमें सभी लोग आते हैं। हम किसी को यहाँ आने से कैसे मना कर सकते हैं ?"

कहते हैं इस घटना के घण्टे भर बाद रेस्तोराँ के मैनेजर को चौबीस घण्टे का नोटिस मिल गया था।—"आप अपनी यह दुकान उठाकर ले जाइये। वेश्याओं को अपना धंधा करने का अवसर देनेवाली किसी दुकान को हम अपनी प्रदर्शिनी में जगह नहीं दे सकते !"

और दूसरे दिन जब वह मुर्गदिल इधर-उधर चक्कर काटती हुई वहाँ फिर आ पहुँची, तो मैनेजर ने व्वॉय भेजकर उससे कहला दिया—"आप लोगों के लिए यहाँ जगह नहीं।"

उसके साथ जो साज़िन्दा आया था, उसने जब पूछा—"हमारा क़ुसूर ?" तो उसने कह दिया—"यह हमको नहीं मालूम। मैनेजर का कहना है और उन्हीं के हुक्म से मैं तुम लोगों को अन्दर आने से मना कर रहा हूँ।"

फिर जब साज़िन्दा मैनेजर के पास गया, उससे भी उसने यही प्रश्न कर दिया। तब मैनेजर ने उत्तर दिया—"यह बात तो संयोग बाबू ही

बता सकते हैं।"

दूसरे दिन जब मियाँ करीमुल्ला संयोग बाबू के पास गये, तो उन्होंने सारी बातें सुनकर अन्त में कह दिया—"उस बदतमीज़ से कहना कि भरे समाज में 'आदाब अर्ज़' के माध्यम से अपनी जान-पहचान साबित करने में उसे मिल क्या गया? आखिर उसका मतलब क्या था?"

करीमुल्ला ने गिड़गिड़ाते हुए कह दिया—"हुज़ूर मुझे माफ़ करें, तवायफ़ भी आखिरकार एक इन्सान ही होती है।"

संयोग बाबू ने तड़पते हुए उत्तर दिया—"बको मत करीमुल्ला। तवायफ़ अगर इन्सान होती है, तो उस वक्त उसकी इंसानियत कहाँ मर जाती है जब उसका कोई प्रेमी खाली हाथ उसके यहाँ पहुँचता और धक्के खाकर निकाला जाता है! कोई जवाब है तुम्हारे पास इस बात का?"

"लेकिन हुज़ूर" करीमुल्ला कुछ दीनता के साथ बोला—"सभी तवायफ़ें ऐसी नहीं होतीं। उनके पास भी दिल होता है।"

संयोग बाबू एक फ़ीकी हँसी के साथ बोल पड़े—"यह सोलह दूनी आठ का पहाड़ा आपने कहाँ से सीखा? तवायफ़ों के पास अगर दिल ही हुआ करता, तो खून चूसनेवाली जोंक की तरह रुपये के साथ प्राण और मर्यादा चूसना वे कभी पसन्द न करतीं!"

करीमुल्ला ने अब सिर नीचा कर लिया। फिर क्षण भर बाद शरमाते-झिझकते हुए उसने उत्तर दिया—"हुज़ूर फिर पेट कैसे चले! हम लोग क्या खायँ!"

संयोग बाबू ने उत्तर दिया—"ईमानदारी के साथ जिन्दगी बसर करने के और भी पेशे हैं, करीमुल्ला। उनसे कहो चरखा कातें, सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, कटिंग, एम्ब्राइडिंग का काम करें, दो-चार साल में कोई इम्तहान पास करें, या फिर सिनेमा में जाकर अपनी तक़दीर आज़मायें—दिल के अरमान पूरे करें। हराम की इस कमाई में तो अब बसर होने से रही!"

करीमुल्ला अवाक् और निरुत्तर हो गया। अन्त में आदाब अर्ज़ करके

वह चुपचाप लौट ग्राया।

कहते हैं, वह मुर्ग़दिल नाम की वेश्या सालभर बाद एक मिल के ग्रॉफ़िस में स्टेनोटाइपिस्ट बन गयी थी।

ग्रब संयोग बाबू को पलंग पकड़े हुए बीस दिन बीत चुके थे। एक डॉक्टर नित्य दो बार ग्राकर देख जाता था। सायं-प्रातः वे एक कैप्सूल गले के नीचे उतार लेते। मुसम्मी का रस ग्रौर कभी-कभी पाव-ग्राध पाव दूध मात्र ग्रब उनका ग्राहार रह गया था। उनका तापमान प्रायः सौ से ऊपर रहता। प्रातःकाल सौ के लगभग हो जाता, तीसरे पहर एकसौ एक के लगभग ग्रौर रात को प्रायः एकसौ दो के लगभग; कभी-कभी उससे भी ग्रधिक। लेटे-लेटे जब वे थक जाते, तो मसनद के सहारे ग्रधलेटे बैठने की चेष्टा करते। उनके पलंग के पास दैनिकपत्र, लिटरेरी डाइजेस्ट ग्रौर हिन्दी, ग्रंग्रेजी, तथा गुजराती के ग्रनेक साप्ताहिक तथा मासिकपत्र पड़े रहते। कभी-कभी वे रेडियो-संगीत भी सुनते। उससे तबियत ऊब जाती, तो रेडियोग्राम पर ग्रपनी तबियत के रिकार्डस् सुना करते। कुछ रिकार्डस् उन्हें बहुत प्रिय थे। उदाहरणवत्—'ग्रायेगा···ग्रायेगा··· ग्रायेगा ग्रानेवाला।'—'दुःख के ग्रब दिन बीतत नाहीं।'— पिया मिलन को जाना।'—'तड़पत बीते दिन रैन।'—'बालम ग्राय बसो मोरे मन में' तथा 'जानूं जानूं री छुपके कौन ग्राया तोरे ग्रँगना!' ग्रादि। कभी वे नाटक का प्रोग्राम सुनते ग्रौर कभी शान्तिज्योति के बच्चों के साथ खिलौनों से खेलते रहते।

कभी माँ सुभद्रादेवी उनके पास बैठतीं, कभी बहन शान्तिज्योति। माँ दिन में दो-तीन बार पूछतीं—"ग्रब कैसा जी है भैया?"

ऐसे ग्रवसरों पर उनका एक ही संक्षिप्त-मंद उत्तर रहता—"ठीक है।"

उनका यह मौन-गंभीर स्वर ही सुभद्रा को प्रायः चिन्ता में डाल देता।

जन्मपत्री के अनुसार अरिष्ट ग्रह-शांति के लिए एक पण्डित प्रातःकाल दुर्गासप्तशती का पाठ करने आता, दूसरा सायंकाल। दोनों अवसरों पर ये पण्डितप्रवर गुलाब और वेला के पुष्प आशीर्वाद के साथ दे जाते। छोटी-सी टेबिल पास में रक्खी रहती, जिसमें एक ओर पत्र-पत्रिकाएं होतीं, दूसरी ओर ये पुष्प। कक्ष में चारों ओर अगरबत्तियाँ सुलगा करतीं। बच्चों का रोना और जोर से बोलना मना था। बात करनेवालों के लिए कड़ा आदेश था—इस कमरे में बोल न सुनायी पड़े।

बड़ी बहिन शान्तिज्योति शरीर से तन्वंगी थी और प्रकृति से प्रसन्न मुद्रा। जब कभी वह उनके पास होती, तो हास-परिहास की बातें सुनाकर उन्हें प्रमुदित रखने की चेष्टा करती। जब तक उनका स्वास्थ्य ठीक था, तब तक तो ऐसी कोई बात न थी कि वह कभी अपनी भाभी का स्मरण ही करती; किन्तु इन दिनों वह घुमा-फिराकर प्रकारान्तर से नीलकमल का स्मरण अवश्य कर लेती।

संयोग बाबू उत्तर में कुछ न कहते। न तो उसकी कोई बात कहने को मना करते, न बात करने के लिए कोई उत्साह या अभिरुचि ही प्रकट करते।

जैसे एक दाह चल रहा था, भीतर-ही-भीतर एक हत्या हो रही थी, चुपचाप। एक प्रकार की मन्द-विषाक्त औषध का प्रयोग चल रहा था। शिराओं में ऐसी जोंकें लगा दी गयी थीं, जो नित्य पाव भर खून चूस लिया करतीं। एक नागिन नित्य उसके तलवों के किसी-न-किसी भाग पर दर्शन करने आ जाती। एक बाघिन लपलपाती जीभ निकालकर उसके स्कन्ध-वक्ष को चाटना शुरू कर देती।

यह निःश्वासों की एक ऐसी विलक्षण परम्परा थी, जो अपनी अन्तःप्राणीय अस्तित्व-रक्षा के नाम पर भीतर से उठकर उसी में समा जाती थी। जिसका नाम लेना मना था, उसी की छायास्मृति दृश्य बन बनकर उसके चारों ओर समाच्छन्न रहती।

—हाय रे अहंवादी क्षिप्त मन ! तू जिससे घृणा करता है, उसी के

लिए निरंतर मन-ही-मन रोता, विलखता और आत्मत्याग करने को तत्पर रहता है !

नयनरंजन घर का काम-काज संभालने में अपना पूरा समय देता रहता। अपने रुचि के रिकार्डस् रेडियोग्राम पर लगाने का कार्य संयोग बाबू के पास बैठकर प्रायः वही करता। अनेक बार उसने चेष्टा की कि भाभी को बुलाने के लिए भैया को उकसाया जाय, लेकिन इस विषय पर एक निःश्वास के सिवा अन्ततः संयोग बाबू के पास कोई उत्तर न रहता।

इसी क्रम में एक दिन नयनरंजन ने उसके पास बैठते-बैठते कहा—"भैया, मैंने देखा, बम्बई से चाचाजी का लिखा हुआ एक पत्र महीनों से पड़ा है। तुमने तो कोई उत्तर दिया नहीं; और मैं देने का अधिकारी नहीं। तुम चाहे जो सोचो, मेरे विचार से उन्होंने ऐसा कोई अपराध नहीं किया, जिस पर उन्हें ऐसा कठोर दण्ड दिया जाय कि तुम्हारी अस्वस्थता में भी उनको कुछ न लिखा जाय, किसी प्रकार की कोई सूचना न दी जाय ! ऐसी उपेक्षा तो भगवान को भी सहन न होगी।"

मसनद के सहारे बैठे हुए, फ़ाउण्टेनपेन को मस्तक से टिकाये हुए एक फीकी मुसकराहट के साथ संयोग बाबू बोले—"जिस भगवान के नाम पर तुम यह बात उठा रहे हो, उस पर मेरी कोई आस्था नहीं नयन, तुम इस बात को जानते हो।"

"जानता हूँ भैया।" नयनरंजन ने उत्तर में मन्द-विनत स्वर में कह दिया—लेकिन जो उन पर विश्वास नहीं करते, उनके साथ भी उन करुणामय का व्यवहार सदा दया और प्यार का ही रहता है। साथ ही, जो उस पर विश्वास करते हैं, उनकी रक्षा का ध्यान उस परमपिता को सदा बना रहता है।"

"रहता होगा" कथन के साथ एक फीकी और उखड़ी-उखड़ी-सी मुसकान के साथ संयोग बाबू बोले—"तुमको भले ही जीवन के सम्बन्ध में कोई शंका हो; लेकिन मुझको नहीं है, कतई नहीं है।"

अब नयनरंजन ने उत्तर दिया—"लेकिन मेरी मूल बात का तो यह

कोई उत्तर हुआ नहीं। मैं पूछता हूँ, भाभी को ऐसी दशा में भी न बुलाना एक अमानवीय अत्याचार नहीं है ?"

तब अत्यन्त मन्द स्वर और क्लान्त वाणी में संयोगबाबू ने कह दिया—"और कुछ बात करो नयन !"

"बस एक इसी बात को छोड़कर, अन्य बातों के सम्बन्ध में मैं तुम्हारा पूरा-पूरा आज्ञाकारी हूं भैया। इतना जान लो कि तुम्हारा यह हठ कि उन्हें न बुलाया जाय, न चिट्ठी लिखी जाय—यह बात आज इस परिस्थिति में हम लोगों में से किसी को सहन हो नहीं रही है !"

तब नाक-भौं सिकोड़ते हुए संयोग बाबू ने कुछ क्षोभ के साथ कह दिया—"जिसको बुलाने के लिए तुम आज मेरी अवज्ञा करने का साहस कर रहे हो, तुमको मालूम होना चाहिये, मैं उसकी शकल से नफ़रत करता हूँ। तुम यह क्यों भूल जाते हो कि होनहार को कोई नहीं जानता। ऐसा भी तो हो सकता है कि जिस क्षण वह इस घर में प्रवेश करे, ठीक उसी क्षण हार्टफेल के रूप में मेरा प्राण-पंछी उड़ जाय !

इस बात को संयोग बाबू ने कुछ ऐसे ढंग से, इतना जोर लगाकर कहा कि कथन का अन्त होते-होते वे अचेत हो गये !

अब घर के सभी लोग उनके पास खड़े थे। नयन डॉक्टर को फ़ोन कर रह था, सुभद्रा अचेत हो गयी और शान्तिज्योति एकदम से बर्स्ट होकर चीत्कार कर उठी थी—"हाय अब क्या होगा !···भैया,···भैया ! यह आज तुमको हो क्या गया !···क्या होनहार है प्रभु!"

अब सायंकाल के सात बज रहे थे और मन्दिर में आरती हो रही थी।

१५

चन्द्रविन्दु को धीरे-धीरे यह अनुभव हो रहा था कि फ़िल्मी दुनिया के व्यक्ति अपने वर्ग और सम्पूर्ण समाज के लिए किस सीमा तक उपयोगी, सच्चे और ईमानदार हैं। उसे यह देखकर आश्चर्य ही नहीं, संताप भी होता था कि सामने बैठकर जो व्यक्ति नित्य मेरी मँगवाई हुई चाय, लस्सी, लेमनेड, आइसक्रीम और क्रीम-काफ़ी सोत्साह ग्रहण करता हुआ मेरी प्रशंसा करते-करते कभी थकता नहीं, वही परोक्ष में मेरा कितना उपहास उड़ाता है! मुझसे कहता है—बन्धू एक बात कहनी है मुझे, फिर मेरा स्वीकृति-संकेत पाकर कह देता है—'इस पिक्चर के फाइनेन्सर सेठ गोपीनाथ कल से आये हुए हैं। कम्पनी के स्वामी और इस पिक्चर के निर्माता, चौधरी ज्ञानचन्द, उनको पिक्चर के रश-प्रिन्टस दिखलाने आ रहे हैं आज। मौक़ा देखकर तुम जरा उनसे, मेरे सम्बन्ध में, कुछ प्रशंसात्मक वाक्य जरूर कह देना।' मैं उसकी बातों में आकर ऐसा कर भी देता हूँ। पर जब फाइनेन्सर चला जाता है, तब पता चलता है कि वही प्रियदर्शन उस फाइनेन्सर से तुम्हारी बुराई करता हुआ कह रहा था—यह चन्दर गाता क्या है, रेंकता है!'

चन्द्रविन्दु यह भी सोचने लगा था—'यहाँ किसी आदमी का भरोसा करना और उसके आधार पर कोई योजना स्थिर कर लेना कितना भ्रम-पूर्ण होता है!—क्योंकि कोई भी निश्चय यहाँ केवल तात्कालिक महत्त्व रखता है। भविष्य में उस निश्चय की क्या स्थिति होगी, यहाँ इस संबंध में कुछ भी कहा नहीं जा सकता।'

इतने प्रकार के लोगों के साथ उसे सम्पर्क रखना पड़ता था कि सब

की मनोवृत्ति को समझना, उसके अनुरूप आचार-व्यवहार करना और फिर सदा उनका ध्यान रखना उसके लिए दुष्कर हो उठता था। फिर भी वह देखता था—"लेकिन फिर और उपाय भी तो नहीं है। यहाँ ऐसे भी निर्माता हैं जो आज एक पिक्चर बनाने के सम्बन्ध में सारी बातें विस्तार-पूर्वक स्थिर कर लेते हैं—हीरो-हिरोइन, साइड-हिरोइन, हास्यअभिनेता पार्श्ववर्ती सहायकअभिनेता, खलनायक आदि के रोल किस-किसको दे रहे हैं, यह सब तय हो जाता है। जज, वकील, थानेदार, सेठ, मुनीम, गुमाश्ता, दयाल, मल्लाह, सेठानी, वेश्या, नर्तकी, चोर, आवारा, नौकर, नौकरानी, मेहतरानी, दादी, नानी, भाभी, साली, प्रेयसी आदि सब का चुनाव कर लेते हैं। कथानक के अनुसार संवाद किसके होंगे, विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप गीत कौन लिखेगा, संगीत निर्देशक कौन होगा और पार्श्वगायक कौन—आदि बातें भी निश्चित हो जाती हैं; लेकिन फिर ज्यों-ज्यों कथा-चित्र के निर्माण का कार्य आगे बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों पूर्व निश्चित कार्यक्रमों के परिवर्तित होते-होते अन्त में प्रारम्भिक निष्कर्षों का प्रारूप ही नहीं, सारा धरातल ही बदल जाता है। यहाँ गीत कोई लिखता है और नाम किसी का जाता है! मूलकथा किसी की होती है, लेकिन उसे उड़ाकर, अन्य परिस्थितियाँ ठूंस-ठाँसकर कथाकार कोई बन जाता है। यहाँ दावतों, भेंट, उपहारों, असाधारण विज्ञप्तियों और भड़कीली किंवदंतियों की बड़ी महिमा है। मुलम्मा को सोना कहकर प्रचारित करना यहाँ की नीति और परम्परा है। यहाँ जिस व्यक्ति को कोई कार्य दिला दिया जाता है, अवसर देखकर वही व्यक्ति उस आदमी की बुराई करके उसका पत्ता काट देता है! यहाँ बड़े-से-बड़े और महत्त्व-पूर्ण कार्यों के सूत्रधार, स्पर्द्धा में पिछड़कर, अन्त में दयनीय बन जाते हैं! यहाँ ईर्ष्या, अपने बदन पर सहस्रों पंख लगाकर गगनगामी वायुयानों से भी अधिक तीव्रगति से उड़ा करती है। यहाँ द्वेष ठीक उसी अवसर पर नागजिह्वा बनकर लपलपाता है, जब वरदान की वेला निकट आती है! यहाँ अहंकार में डूबे हुए प्रमत्त अधिकारी व्यक्ति प्रतिभाशाली

बुद्धिजीवियों, कलाकारों, लेखकों और तकनीकी गुणज्ञों को केवल इसलिए मान्यता नहीं देते कि वह उससे सम्पर्क क्यों नहीं बनाये रखता और यत्र-तत्र उसकी विरुदावली क्यों नहीं गाता ? अकस्मात कहीं मिल जाने पर पहले ही नमस्कार अथवा गुडमार्निंग क्यों नहीं करता ? यहाँ निर्माता और निर्देशक ही नहीं, विभागीय कार्याधिकारी और उनके सामान्य सहायक तक, संस्तुति के, इस सीमा तक दास बन गये हैं कि समय-असमय, हर व्यक्ति से अपनी बड़ाई की ही आशा करते हैं। जो व्यक्ति उसके प्रस्तुत कार्य की प्रशंसा नहीं करता, सबसे पहली प्रतिक्रिया उस पर यह होती है कि अवसर आने पर उसे अयोग्य और वर्थलेस, असफल और निकम्मा कहते देर नहीं लगती ! यहाँ सुरा के बिन्दु गंगाजल की तरह प्रतिष्ठा पाते हैं। रुपये पैसे के लेन-देन में ईमानदारी यहाँ मूर्खता मानी जाती है। यही वह पावन-भूमि है, जहाँ के क्षेत्रीय पारखी, स्वर्ण-जयन्ती प्राप्त करनेवाले अमर चित्रों को देखकर, प्रारम्भ में यह कहते हुए लजाते नहीं कि पिक्चर क्या है, बंडल है; एक सप्ताह भी नहीं चलेगा !'

इन सब प्रतिक्रियाओं का परिणाम यह हुआ था कि चन्द्रबिन्दु फूंक-फूंककर क़दम रख रहा था। उसके दो गीतों की रिकार्डिंग हो चुकी थी। उन गीतों के लेखक थे एक साहित्यकार और कवि, जिनका नाम नलिनी-रंजन उपाध्याय था। एक दिन उन्होंने एक आपबीती सुनाते हुए बतलाया, उनका एक गीत जब डायरेक्टर मल्लिक ने स्वीकार कर लिया, तब उन उपाध्यायजी ने एक महत्वाकांक्षा के साथ सोचा था—'मेरा यह गीत जनता बहुत पसन्द करेगी।' किन्तु दूसरे ही दिन मल्लिक साहब ने उस गीत में, किसी से लिखाकर, एक स्टेन्ज़ा और जोड़ दिया।

उपाध्यायजी भले आदमी थे। उन्होंने परिणाम सोचे बिना कहीं कह दिया—"जैसी आपकी इच्छा।"

कुछ दिनों के बाद जब उसकी रिकार्डिंग हो गयी, तब मल्लिक साहब बोले—"वैसे तो इस पिक्चर के सारे गीत आप ही लिखेंगे; लेकिन इस गीत में आपको मेरा नाम भी जोड़ना पड़ेगा।"

उसका इतना कहना था कि उपाध्यायजी स्तब्ध हो उठे; कुछ क्षण रुके और बोले—"मुझे यह बात स्वीकार नहीं है; क्योंकि उसमें अपना एक स्टैन्ज़ा जोड़ने से पूर्व अपने इस गुप्त अभिप्राय का स्पष्टीकरण आपने नहीं किया था।"

पाइप सुलगाते हुए मल्लिक साहब बोले—"इस 'तब' और 'अब' में कोई फ़र्क नहीं पड़ता।"

उपाध्यायजी की आत्मा भीतर-ही-भीतर सुलग उठी थी। फिर भी उन्होंने शिष्टता से उत्तर दिया—"पिक्चर के सारे गीतों के लेखन का अनुबन्ध मुझसे, मेरे नाम से, हुआ है। गीतकार की हैसियत से इस पिक्चर के निर्माण में आपका कोई हाथ न है न रहेगा। ऐसी दशा में क़ायदे से, किसी भी गीत के लेखक के स्थान पर, आपका नाम, जा ही नहीं सकता।"

उनका इतना कहना था कि मल्लिक साहब को ताव आ गया। धुआँ उगलते हुए उनके मुंह से निकल गया—"अच्छी बात है। मैं आपको देख लूंगा। मैं आपको दिखा दूंगा कि पिक्चर में गीत आपका जायगा, लेकिन वह दर्शकों की जबान पर चढ़ेगा नहीं। उसके चित्रांकन में गीत की सारी प्राणमयता मैं नष्ट करके मानूंगा। आपने मुझे समझा क्या है!"

उपाध्यायजी ने बतलाया—पिक्चर सारे देश के सिनेमाघरों में प्रदर्शित हुई थी। वह कई सप्ताह चली भी थी, लेकिन मल्लिक साहब ने उसके चित्रांकन में उसे सचमुच निर्जीव बना दिया था।

उपाध्यायजी ने जब अपने साथ होने वाले इस दुर्व्यवहार की सारी कथा विस्तारपूर्वक उसे सुनायी, तो अंत में उन्होंने इतना और जोड़ दिया था—"मनुष्य के असली स्वरूप का ज्ञान, सच पूछिये तो, मुझे इस फ़िल्म-उद्योग में ही हुआ।"

अब चन्द्रबिन्दु दिन में दस बार यह सोच लेता था कि मैं कहीं ग़लती तो नहीं कर रहा हूँ!

उन दिनों जो चित्र बन रहा था, उसका नाम था—'भूली याद'। उसकी हिरोइन मृगलोचनी तलवार जब स्टूडियो में आती, तो उसका

वातावरण एक चहल-पहल से गूंज उठता था। जिधर से वे निकलतीं, लोग अपना काम छोड़कर द्वार के बाहर आ जाते और आपस में तरह-तरह के प्रासंगिक वार्ता-विनोद होने लगते। कोई उसके शृंगार-प्रसाधन की प्रशंसा करता, कोई उसकी तिरछी चितवन और बाँकपन की। यदि कोई उसे निकट से देख पाता, तो उसके उरोजों के कंगूरों पर आँखें गड़ा देता! फिर मिलने पर उन सहकर्मियों से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना न मानता।

विविध वर्गों के अपने-अपने विभागों में ऐसे भी कुछ लोग थे, जो चन्द्रबिन्दु से हर प्रकार की बातें करते चूकते न थे। एक दिन की बात है, कहीं तोताराम बोला—"तुम्हीं सबसे मज़े में हो; निकट-से-निकट और दूर-से-दूर। खिड़की पर खड़ी होकर जब मृगलोचनी गायेगी और फिर उसके उत्तर में संदीप (नायक) तुम्हारी वाणी के माध्यम से गीत गाता हुआ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा, तब ऐसा नहीं है कि तुम्हारी साधना के तन्तु मृगलोचनी के मन को स्पर्श न करें! तुम तो यार उसके साथ बैठकर चाय पीते हो, बातें भी करते हो। कभी-कभी आँखों में आँखें डालकर, हो सकता है, मुसकराते भी होओ। कहने का तात्पर्य यह कि तुम्हें उसके सम्पर्क में आने का पूर्ण अवसर मिलता है। हम साले पूरे गधे साबित हुए! कोई बिन्चो मेरी तरफ़ आँख ही नहीं उठाती!"

"तुम्हारा ख्याल गलत है तोताराम। उसके साथ बैठक केवल डायरेक्टर की होती है। कभी-कभी निर्माता की भी। यह बात दूसरी है कि कार्य-व्यवहार के संयोग से केमरामैन और सहायक-निदेशक भी कभी-कभी उसे घूरने का अवसर पा जायँ! जिस दिन सम्मिलित रूप से काम करना होता है, उस दिन संदीप भी इन बैठकों में सम्मिलित रहता है। हम ठहरे गायक, हमको वहाँ कौन पूछता है? हमारी उपस्थिति वहाँ अनावश्यक होती है। हाँ, गाने की टेकिंग के समय अगर मैं कभी चला गया तो वहाँ मृगलोचनी से सामान्य भेंट हो जाना स्वाभाविक है। लेकिन ऐसी तो कोई बात नहीं कि उसे देख-देखकर मुझे कोई विशेष प्रेरणा मिलती

हो, या उससे बात करने के लिए मैं लालायित ही रहता होऊँ।"

तोताराम तब चुप रह गया था। ऐसे भी लोग थे, जो प्रायः कहते रहते—"चन्दर बाबू, किसी मौक़े पर यार मेरा परिचय भी करवा दो। भगवान् क़सम, तर जाऊँगा और जिन्दगी भर तुम्हारा अहसान मानूंगा, सो अलग।"

इन लोगों से चन्द्रविन्दु बहुत जल्दी छुट्टी पा लेता था। कभी कह देता—'अच्छा सोचूंगा।' और कभी बनाने के विचार से बोल उठता—'तो फिर रात को आ जाना। आज तो वह हमारे यहाँ आयेगी भी। मगर एक बात है, उसके स्वागत-सत्कार में दस-बीस रुपये गलाने पड़ेंगे!'

यह एक ऐसा विषय था कि उत्तर में लोग अपनी विवशता प्रकट करते हुए कह देते—"अच्छा तो तीसरी-चौथी तारीख को प्रोग्राम बनाना, जब पगार मिल जाय।"

फिर जब वेतन मिल भी जाता, तब या तो उसने रुपये इस मद के लिए बचा लेने का उन्हें अवसर ही न मिलता; या अगर मिलता भी, तो वे घण्टे-दो घण्टे उसके यहाँ जमे रहते। तब अन्त में चन्द्रविन्दु कह देता—'कुछ काम लग गया होगा; इसीलिए नहीं आ सकी।' ऐसे लोगों को मूर्ख बनाने में चन्द्रविन्दु को अब आनन्द मिलने लगा था!

एक दिन कुछ ऐसा हुआ कि मृगलोचनी का जन्म-दिवस आ पड़ा। उसमें चन्द्रविन्दु को भी सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया गया। यह निमन्त्रण उसे अरुण के माध्यम से मिला था। जहाँ अन्य लोग मृगलोचनी के लिए उपहार-स्वरूप तरह-तरह की वस्तुएँ ले गये थे, वहीं चन्द्रविन्दु अपनी एक कविता-पुस्तक ले गया था। उसमें कुछ ऐसे भी गीत थे, जो दूसरे व्यक्ति के नाम से उसकी पिक्चर में आ चुके थे।

मृगलोचनी ने पुस्तक लेकर पहले तो धन्यवाद दिया, फिर किंचित् मुसकराती हुई वह बोली—"सभी उपहारों का महत्व अलग-अलग होता है। आपकी यह भेंट मेरा जीवन भर साथ देगी। इसके उपलक्ष्य में मैं आपको चाहे जितने धन्यवाद दूं, आपका पलड़ा भारी ही रहेगा।"

फिर नैन नचाकर उसने इतना और जोड़ दिया—"है कि नहीं?"

और बस, उस दिन से चन्द्रविन्दु के साथ उसका एक मैत्री का-सा सम्बन्ध स्थापित हो गया था।

अब उस जीवन में ऐसे भी दिन आते थे, जब वह अवकाश की घड़ियों में मृगलोचनी के फ्लैट में बैठकर घण्टों गुज़ार देता। कभी साथ-साथ चाय-पान चलता, कभी भोजन; यहाँ तक कि कभी रमी में भी उसे साथ देना पड़ जाता।

फिर वह दिन भी आ गया, जब मृगलोचनी ने चाय पीते-पीते चन्द्रविन्दु को बतलाया कि मेरे रोल के साथ में एक ऐसी ईरानी लड़की का काम आता है, जो चाकू बेचती हुई मेरे दरवाजे पर आ जाती है। मुझे उसकी चाकू पसन्द नहीं आती, फिर भी वह बार-बार मुझसे खरीद लेने का आग्रह करती है। मैं जब किसी तरह राज़ी नहीं होती, तब वह अन्त में बोल उठती है—"इस तरह तो हम भूखों मर जाएँगे खातून! आज हमारे पास पैसा बिल्कुल चुक गया है, जबकि मेरा नादान बच्चा बीमार है; उसको सर्दी लग गयी है!"

मृगलोचनी कहती जा रही थी—"तब मुझे उस पर दया आ जाती है। मैं उसकी चाकू तो नहीं लेती, लेकिन सहायतार्थ उसे पाँच रुपये दे देती हूँ। लड़की इतनी हसीन है कि मेरे पति उसको रुपये देते हुए देखकर अवसर की ताक में, एक-दम से बहुत प्रसन्न और उन्मत्त हो उठते हैं। यहाँ तक कि मुझसे छिपाकर उसका पीछा भी करते हैं। खैर, स्टोरी तो बहुत दूर तक जाती है। मुख्य बात यह है कि इस लड़की का रोल जिसको दिया गया है, आज ही मैंने सुना कि वह एक दुखिया नारी है। स्वामी ने उसे कई साल से छोड़ रक्खा है!"

फिर चाय के साथ नमकीन काजू को दाँत से दबाती हुई मृगलोचनी बोली—"तुमको मालूम है यह कौन लड़की है? बड़ा प्यारा उसका नाम है।"

चन्द्रविन्दु ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"हाँ, मैंने भी सुना है।

यद्यपि मैं जिस वक्त पहुँचा, उस वक्त वह स्टूडियो से चली गयी थी।"

"कल रिसंहल के लिए शायद बुलायी भी जाय।" मृगलोचनी बोली।

"अरे मैं जानता हूँ उसको।" चन्द्रविन्दु ने कह दिया—"बड़ी तेज़ लड़की थी। उसका एक ज़माना था।"

आश्चर्य के साथ भौंहें उठाकर मृगलोचनी बोली—"अच्छा! तब तो आप उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ जानते होंगे। ज़रा बतलाइये, मुझे ऐसी लड़कियों से बड़ी दिलचस्पी रहती है, जो समाज की सतायी हुई, संत्रस्त, भूखी या लुटी, जीवन की अनंत पीड़ाओं को अपने हृदय के भीतर छिपाये, आहों और आँसुओं का जीवन बिताती हैं।"

चन्द्रविन्दु ने कह दिया—"ओः! आप तो साधारण वार्तालाप में संवाद बोलती हैं।"

प्याले का अंतिम घूंट सिप करती हुई मृगलोचनी बोली—"मज़ाक नहीं चन्दर, ग़रीबी से उठकर धीरे-धीरे पढ़ाती-पढ़ाती, गिरती-पड़ती और उठती-भागती हुई आज मैं जहाँ आ पहुँची हूँ उसकी भी एक कहानी है।"

चन्द्रविन्दु ने देखा, मृगलोचनी निःश्वास ले रही है।

"ओः तब तो जान पड़ता है आप भी कहीं से कुछ दुखी हैं।" चन्द्रविन्दु बोला।

उसका इतना कहना था कि मृगलोचनी के नयन सजल हो उठे। झट से वह उठ खड़ी हुई। अपने भीतर के कक्ष की ओर जाती हुई वह बोली—"मुझे माफ़ कर देना चन्दर, मैं···मैं···!"

तत्काल अन्दर जाती हुई वह पूरी बात भी कह नहीं पायी थी। तब एक सपृक्त उदासीनता के साथ चन्द्रविन्दु अपने फ्लैट में लौट आया था।

अरुण जब नीलकमल को प्लेबैक का चांस देने के सिलसिले में अपने पूरे स्टाफ के साथ उसकी स्वर-परीक्षा कर रहा था, तभी निर्माता

चौधरी और निर्देशक मल्लिक दोनों अकस्मात् आ पहुँचे। उसके संबंध में अंत में उन्हीं में परस्पर मतभेद हो गया। निर्माता का कहना था कि आवाज़ बड़ी प्यारी और स्वीट है। और निर्देशक का मत था कि नहीं, हमारी पिक्चर में ईरानी लड़की के रोल में वह बिलकुल उपयुक्त मोस्ट बिफिटिंग, जान पड़ती है। उसके नक्श जब अभी से इतने प्रभावशाली हैं, तब निर्देशन की कसौटी पर उतरकर, अपने छोटे से रोल में ही वह कमाल पैदा कर देगी। लोग उसी पर नज़र डालने के लिए बार-बार पिक्चर देखने आयेंगे।

उन्होने अरुण बाबू को भी समझाया—"वैसे मैं नीलकमल को प्ले-बैक का चास दे भी सकता हूँ; लेकिन लड़की के हित में तो यही अच्छा है कि वह अभिनेत्री बने।"

पर ये सब बातें परोक्ष में हुई थीं। नीलकमल से तो अरुण ने केवल इतना कह दिया था कि अभी कोई बात निश्चित नहीं हुई। मल्लिक साहब ने दो-एक दिन में तय कर देने का वादा किया है।

परन्तु जब से शांतिबाई ने संयोगबाबू की अस्वस्थता की बात बतलाई थी, तबसे नीलकमल की मानसिक स्थिति कुछ दूसरी हो उठी थी। अरुण के प्रभाव में पड़कर वह चली अवश्य आयी थी, लेकिन उसका मन भीतर से चिन्तित और दुखी बहुत था। उसे स्वामी की वह बात भूलती नहीं थी—'मुझे सब मालूम हो गया है। तुमसे अब इस विषय में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं।'

इस प्रकार नीलकमल की अपनी ही अन्तरात्मा उसे धिक्कारती हुई जान पड़ती थी—'माना कि उस समय उनका कथन एक लांछन ही था, लेकिन इससे क्या हुआ? आखिर को तूने किया तो वही, जिसकी उन्हें आशंका थी, जिस पर उनको आपत्ति थी, जो उनको सहन नहीं हुआ था। व्यक्तित्व के रूप, तेज और आत्मबल के मूल्यांकन में कालव्यापी उलटफेर का महत्व ही क्या है? तब न सही, अब सही!'

स्टूडिओ से जब वह लौट रही थी, तब तक विगत मिलन-यामिनी

को अतीत बने हुए लगभग बीस घण्टे व्यतीत हो चुके थे।

यूं काल के व्यापक आयाम में ये बीस घण्टे बहुत छोटे जान पड़ते हैं; लेकिन इसी अवधि में नीलकमल ने दो-तीन बार तो यह सोचा ही था कि कुछ भी हो, मेरी दृष्टि में नीलकमल मर चुकी! अब इस संसार में ऐसा कोई नहीं रह गया जिससे वह अपने अन्तस की पूरी-पूरी पीड़ा व्यक्त कर सकती। अब उसे अरुण में भी मानवता का उज्ज्वल आलोक प्रतीत नहीं होता था। बारम्बार उसका मत कहता था—'उनकी सारी उदारता और सहृदयता केवल मुझको प्राप्त करने की पाशविक लिप्सा पर आधारित थी। सब कुछ मिलकर वह मुझ फँसाने का एक जाल था!'

कभी-कभी उसे ऐसा भान होता, जैसे मैं सो रही थी कि इतने में साँप ने मेरे सीने में काट खाया!

घर से चलने से पूर्व उसने खाना अवश्य खाया था, लेकिन बड़े बेमन से। कौर जो मुंह में डालने लगती, तो तत्काल कोई उससे कहने लगता—'इन्हीं टुकड़ों के लिये तूने पिछली रात अपना सब कुछ बेचा है!'

कभी-कभी उसकी आँखें दरवाज़े पर टिक जातीं। एक काल्पनिक दृश्य उनकी दृष्टि-कल्पना पर उभर आता और उसे ऐसा जान पड़ता कि यह जो खाना खा रही है, वह नीलकमल नहीं, कोई वेश्या है; और जिसने उसकी नथुनी उतारी है, वह और कोई नहीं, महीनों से तलवे चाट रहा अरुण है।···बड़ी मुश्किल से उसने दो रोटियाँ खायी थीं; ऊपर से गिलास भर पानी पीकर वह उठ आयी थी। उसका भोजन का स्वाद नष्ट हो चुका था। हर कौर में उसे बलात्कारजन्य हिंसा से भरा उत्पीड़न ही भासित हो रहा था।

स्टूडिओ में भी उसकी वही स्थिति थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह अपने आप में खो जाती—'बकरे का वध जीवन में केवल एक बार होता है; कौन जानता है, इस समाज के बीच कब-कब इस प्रकार मेरी लाज का वध होता रहेगा!'

मगर फिर उसी समय कोई उससे कहने लगता—'पगली! वध तो तेरा हो चुका। उसके बाद तो सब खतम हो जाता है!'

इन सब बातों, प्रतिक्रियाजन्य परिकल्पनाओं और मनोभावों के उठते-गिरते और शांत होते विविध प्रकारों के बाद अंत में उसने यही सोच लिया था—'आत्मघात से तो यह फिर भी अच्छा है। इतना कम है कि मैं सब कुछ सहन कर रही हूँ? इसके पीछे मेरा एक उद्देश्य है, एक लक्ष्य! पापा, अम्माँ और सुशीला की जीवन-रक्षा—एक पारिवारिक नाते का पवित्र निर्वाह!···मैं अपने लिए नहीं, उनके लिए जी रही हूँ।'

उसे अरुण पर दया हो आयी—'उन्होंने अपनी पहली भेंट में मुझे लक्ष्यहीन बताया था। काश वे समझ पाते कि यह सब मैंने किस-किसके लिए किया!'

अब उसे ध्यान हो आया—'हाँ, एक बात जरूर है कि अरुण बाबू के माध्यम से अगर कुछ अधिक रुपये मुझे पेशगी मिल जायेंगे, तो मैं वहाँ जा सकूंगी। मुझे जाना ही पड़ेगा वहाँ। बुआजी कहती थीं—'वे आजकल बीमार हैं।'

अब उसको चित्र का दूसरा पहलू कुछ अधिक उज्ज्वल लगने लगा था—'ये रुपये अगर उनकी किसी सेवा में लग जायं, तो मेरा जीवन धन्य हो जाय! तब मुझे कोई परित्यक्ता तो न कहेगा!'

पर कभी-कभी वह घबराहट में पकड़कर, यह सोचकर बहुत उन्मन हो उठती कि कहीं उनकी तबियत ज्यादा न खराब हो गयी हो! फिर उनकी मुद्रा, भाव-भंगिमा के साथ-साथ, क्षोभ की अग्नि उगलते हुए उनके वे शब्द उसे याद हो आये—'बात करना दूर रहा, मैं अब इस घर में तुम्हारी शकल भी नहीं देखना चाहता!'

तब उसने सोच लिया—'अब अगर वे मुझे ऐसा ही कुछ कह लें, तो मुझे कुछ भी बुरा न लगेगा। अब तो मैं कुछ भी सहन कर सकती हूँ! केवल एक बार उन्हें देख पाऊँ, एक बार उनके पैरों पर मत्था रख-कर उन्हें आँसुओं से भिगो लूं! वे अगर लात से ठोकर मारकर सीढ़ियों पर

ढकेल भी देंगे, तो मुझे विश्वास है—परमपिता की करुणामयी आँखें उस दृश्य को सहन न कर पायेंगी। वे जरूर मुझे बुला लेंगे!'

भावनाओं का ज्वार जब सीमान्त तक जा उठा, तो वह अपने आँसू न रोक सकी। विवश होकर उसे स्टूडियो के एकान्त उपवन में थोड़ी देर के लिए जाना ही पड़ा। एकबार अच्छी तरह रोये बिना उसका मन नहीं भरा।

और नियति का व्यंग्य यह था कि यह समय उसे गीत याद करने के लिए दिया गया था। आँसू पोंछकर, अपने को बरबस स्थिर बनाकर, जब वह अरुण के कक्ष में आयी, तो उसने कह दिया—"आज मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं है अरुण। अच्छा हो, आज तुम मेरी स्वर-संगीत-परीक्षा को कल पर स्थगित कर दो।"

अरुण ने प्यार की वाणी में कहा था—"पागल न बनो नीलम! ऐसे अवसर बार-बार नहीं मिलते।"

नीलकमल फूट पड़ी—

"तुमने मुझे बहुत ग़लत समझा अरुण, मैं वास्तव में ऐसी कुछ थी नहीं। जो कुछ हुआ, सब तुम्हारे प्रभाव में पड़कर हुआ।"

नीलकमल कहती जाती थी और रोती जाती थी।

अरुण सब कुछ समझ गया। उसने अत्यन्त गंभीर वाणी में उत्तर दिया—"तब मुझे कहना पड़ेगा—तुमने मुझको ही नहीं, अपने आपको भी समझने में ग़लती की। तुमको पता नहीं कि हमारी आज की जिन्दगी है क्या! आज हममें से कौन है, जो अपने आपको न बेचता हो! अपनी मर्यादा को ही नहीं, अपने अहं को भी। मैं ऐसे कलाकारों और लेखकों को जानता हूँ, जो निर्णायकों के घर जा-जाकर पुरस्कार-प्राप्ति के लिए नाक रगड़ते हैं! मैं ऐसे सम्पादकों को जानता हूँ, जो पूंजीपतियों द्वारा संचालित पत्रों के संपादन में अपने सिद्धान्तों का हनन किया करते है! मैं उन समर्थ साहित्यकारों को भी जानता हूँ, जो आज अखिल-भारतीय आकाशवाणी-केन्द्रों में अपनी पद-मर्यादा के नाम पर उन्हीं

साहित्यिक बन्धुओं का अहित करते नहीं लजाते, जो कभी उनके जीवन-निर्माण में सहयोगी ही नहीं, सहायक भी रहे थे, वे चाहे जिस स्तर के रहे हों। मैं ऐसे कलाकारों को भी जानता हूँ, जो भले ही आज निर्देशकों पर अपनी शान जमाने के लिए उनकी बात न मानते हों और क़दम-क़दम पर बहस करते हों; लेकिन मैं जानता हूँ, जब उन्होंने इस उद्योग में प्रवेश किया था, तब उनकी स्थिति क्या थी! मैं यह भी जानता हूँ कि उनकी नियुक्ति कितने पर हुई थी और अभिनयकला के शिक्षणकाल में उन्हें क्या-क्या नहीं सहना पड़ा था! और इन आँसुओं के माध्यम से जिस पीड़ा को तुम दुहाई दे रही हो, उसकी सगी माँ, उस तथाकथित नैतिकता के मूल्य को भी जानता हूँ! साफ़-साफ़ कह दूंगा, तो मुझे डर है—तुम उसे सहन नहीं कर पाओगी। मैं तुमको ही नहीं, तुम्हारी माँ को भी जानता हूँ।"

नीलकमल अब सहन न कर सकी। बोली—"शर्म करो अरुण!"

"शर्म तो तुमको उस जर्जर नैतिकता पर आनी चाहिये, जिसको अपनी मूर्खता से तुम जीवन का एक हिमालयी आदर्श मानकर, अपने ही हाथों से, गति के वे चरण काट रही हो, जिसके बिना आज जीना ही नहीं, एक पग आगे बढ़ना दुष्कर हो गया है। जिस केलि-क्रीड़ा के दुर्लभ संयोजन से हम अपनी रिक्तता की क्षयशील रुग्णता से मुक्ति पाते हैं, तुम उसे पतन मान बैठी हो! भगवान की जिस अद्भुत सृष्टि-कला को हमें उसकी पावन देन के रूप में स्वीकार करना चाहिये, तुम उसमें कलुष देख-देखकर आँसुओं के बदले स्रष्टा की इस देन पर कीचड़ उछाल रही हो! तुमने अगर अपना कुछ खोया है, तो खोया मैंने भी है। पर मैं न पुण्य को एकाङ्गी मानता हूँ, न पाप को और न उस प्रेम को, जिसके बिना मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ है। और कुछ सुनना चाहती हो मुझसे? जो कुछ हुआ, वह सिर्फ़ इसलिए हुआ कि तुम जियो और खुली आँखों से अनुभव करो कि यह संसार है किस लिए! जाओ, आध घण्टे के अन्दर तैयार होकर आ जाओ। खबरदार जो तुम्हारी आँखों के अन्दर एक

भी आँसू मुझे दिखायी दिया। तुम्हें पता होना चाहिये कि ये आँसू एक ओर अगर पीड़ित मानवता के प्रतीक हैं, तो दूसरी ओर कायरताजन्य दुर्बलता के भी उदाहरण हैं। कहीं से भी दुर्बल मानव को मैं आज इकाई के रूप में भी, सच पूछो तो सम्पूर्ण राष्ट्र की आत्मा पर कलंक का एक धब्बा मानता हूँ। और कुछ? जाओ, फिर से तैयार होकर आओ।"

अरुण का यह प्रवचन सुनकर नीलकमल पहले तो काँप उठी, लेकिन फिर दस ही पांच मिनट में वह उसके जागरूक दृष्टिकोण से मर्माहत हो उठी और सोचने लगी—'इसमें तो कोई संदेह नहीं कि हमारी बहुतेरी पुरानी आस्थाओं ने ही हमारे नवल पथ के विकास को कंटकाकीर्ण बनाया है। यही बात है कि मैं उसके प्रभाव में आ गयी। समय-समय पर उसकी साहयता पर अगर मुझे न मिली होती, तो यह भी संभव है कि आज मेरा अस्तित्व ही न होता!'

फिर धीरे-धीरे सब कुछ उलट-पलट गया। जब वह मिले हुए गीत को याद करके लौटी तो उसके मुख पर उत्साह की एक झलक थी। एक ऐसी दीप्ति, जो हर परिस्थिति में अपने सामने जीवन का मांगलिक रूप ही देखती है।

निदान, अपने पूरे मनोयोग के साथ नीलकमल ने वह गीत गाया।

फिर वह दूसरा दिन भी आ गया, जब उसने ईरानी लड़की के रोल के कान्ट्रैक्ट पर साइन किया, जिसके अनुसार तीन किश्तों में उसे पाँच हजार रुपये मिलने थे; जिसमें पहली किश्त थी एक हजार रुपये की, जिसका वेयरर चेक हस्ताक्षर करते क्षण उसके सामने था।

वैसे तो इन अनुबंध में, संभव था, दो-चार दिन लग भी जाते; पर उसी दिन के बाद स्टूडियो दस दिन के लिए बन्द हो रहा था। संगीत और गायन-विभाग के डायरेक्टर अरुण बाबू अपने दल के साथ गणतन्त्र-दिवस के उपलक्ष्य में भारत-सरकार की संगीत-अकादमी द्वारा आमन्त्रित थे तथा डायरेक्टर मल्लिक एक डिस्ट्रीब्यूटर के आमंत्रण पर पाँच-सात दिन के लिए कलकत्ता जा रहे थे। निर्माता चौधरी ज्ञानचन्द का

विचार था कि छुट्टियों के बाद ही नीलकमल से इस रोल के लिये अनुबन्ध किया जाय; पर डायरेक्टर मल्लिक का कहना था कि इस बम्बई की माया कुछ जानी नहीं जा सकती। नीलकमल इन्डस्ट्री के अन्य व्यक्तियों की निगाह में भी आ गयी है; इसलिए यह भी संभव है कि हम बैठे टापते ही रह जायें और उसका अनुबंध अन्यत्र हो जाय ! अतः अनुबंध तो आज ही हो जाना चाहिये।

बात मल्लिक साहब की सही थी और चौधरी साहब की समझ में आ गयी थी। फलतः नीलकमल से उसी दिन उन्होंने अनुबंध कर लिया था।

फिर सायंकाल नीलकमल जब अपने घर पहुँची, तब तक नयन बाबू का तार आ चुका था, जिसमें लिखा था — भैया के स्वास्थ्य लाभ के लिए तुम्हारी उपस्थिति तुरन्त आवश्यक है।

नयन।

१६

नयन का तार पाकर द्वादसी और सुशीला, दोनों चिंता में पड़ गयी। पहले तो द्वादशी बहुत घबड़ा गयी और कहने लगी—"हे भगवान रक्षा करो! चाहे मुझको बुला लो, लेकिन मेरे दामाद को अच्छा कर दो और उसकी ज़िन्दगी बढ़ा दो। तुम जानते हो, मैं कैसी दुखिया मानवी हूँ! कितने दिनों से मैं तुम्हारी आराधना में लीन रहती आयी हूँ! इतना घिघियाकर, दीन बनकर, तुम्हारे सामने अपने हाथ मैंने कभी नहीं पसारे। माना कि संयोग बाबू ने नीलू की क़दर नहीं की, लेकिन इससे क्या? है तो वह उसका स्वामी ही। फिर मैं उसको दोष भी नहीं दे सकती। नीलू ने कैसे दिन बिताये हैं, मुझे कुछ मालूद नहीं हो सका; लेकिन तुम तो सब जानते हो, तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है। मान लो उससे कभी कोई भूल हो ही गयी हो, संयोग बाबू को उसके संबंध में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। जो भी हो, तुम चाहे मुझको इस दुनिया से उठा लो, लेकिन उसको बचा लो परमपिता!"

भगवान के चित्र के सामने खड़ी होकर द्वादशी यह प्रार्थना करने लगी। सुशीला बोली—"ऐसे समय तुम्हें जाना ही चाहिये दीदी। कुछ भी हो, तुम वहाँ पहुँच जाओगी तो वे सब लोग तुमको बड़े प्यार से अपनायेंगे। स्वामी के सिवाय वहाँ तुम्हारी सास हैं, बड़ी ननद हैं, देवर है; वे सब तुमको कितना चाहते हैं! मगर दीदी, तुम रो क्यों रही हो! जीजाजी अच्छे हो जायेंगे। भगवान चाहेगा तो तुम्हारे पहुँचते-पहुँचते सारे संकट कट जायेंगे।"

नीलकमल की ऐसी स्थिति नहीं थी कि वह कुछ कह सके। उसके

पास इस समय इतने कपड़े भी न थे कि कौन ले जाय और कौन छोड़ जाय ! उनको चुनने और बॉक्स में रखने तथा साथ में शृंगार-प्रसाधन में कुछ और ले जाने की तैयारी करने में, उसे किसी प्रकार देर होने की सम्भावना न थी। पहले तो वह स्तब्ध हो उठी और खिड़की के सामने खड़ी होकर शून्य गगन को देखती रही।···अभी तो उसको चेक भुनाने के लिए बैंक जाना था। अभी न उसके पिता लौटे थे, न अरुण बाबू। दिन और रात की अलग-अलग क्रीम, लिपिस्टिक, नेल-पालिश, हेयर-ऑयल की शीशी, शीशा, कंघा, एक-आध साबुन की टिकियाँ, दो-चार पुरानी किन्तु धुली हुई साड़ियाँ, कुछ थोड़ी किताबें, पानी पीने के लिए एक गिलास और मामूली-सा एक बिस्तर ही तो था; लेकिन अपना यह दैन्य उसको कुछ खल नहीं रहा था। सर्वाधिक पीड़ा उसे इस बात की थी कि अब मेरे पास उनको पाने के लिये ऐसा कोई आकर्षण ही क्या है, जिसकी निधि सँजोकर उनके सामने जाने में मुझे किसी गौरव का अवसर मिले ! मैं तो एक रिक्ता नारी हूँ, परिस्थितियों से ग्रस्त, आत्म-निष्ठाहीन, एकदम बुझी हुई ! जीवन की यह कृत्रिमता कि प्रतीक्षा की वेला में भूखी-प्यासी, उत्साहहीन, उदास, मरी-मरी-सी रहती हुई मैं कितनी टूट गयी हूँ—ऐसा कुछ कहने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है ! क्या मेरी अन्तरात्मा में दुस्साहस की कोई ऐसी कला है कि मैं उनके साथ वंचना करूँ ? नहीं-नहीं, मुझे सब कहना पड़ेगा। मैं छोड़ूंगी नहीं किसी बात को, बिना कहे। मैं यह भी नहीं कहूँगी कि इस बात के उत्तरदायी तुम हो। मैं नहीं मानती कि चेतना रहते हुए कोई मानव प्राणी शुद्ध-शीतल जल के अभाव में सड़क की नाली के किनारे बैठकर दूषित, मलिन और दुर्गन्धपूर्ण मल-मूत्र के ऊपर उतराता बहता हुआ जल पागल की तरह पीने लगता है !

बड़ी देर तक वह मन-ही-मन उस अदृष्ट को कोसती रही, जिसने दो ही दिन के अन्तर से जीवन में इतना उलट-फेर उत्पन्न कर दिया।··· अभी कल की रात में ही जब मैंने अपने को मार डाला, खतम कर दिया, तब आज मुझे यह सूचना मिल रही है कि तुम्हारे स्वामी बीमार हैं, फ़ौरन

चली आओ ! यह नयन और वे मेरी देवीस्वरूपा सास, बात-बात में प्यार उड़ेलने वाली ननद—ये सब-के-सब अब तक कहाँ थे ? वर्षों की इस अवधि में कभी उनको मेरा ध्यान न आया ! और फिर मुझसे आशा की जाती है कि मैं समाजिक मर्यादा का ध्यान रखूं ! ···नहीं नहीं, यह सब पाखण्ड है। एक जाल है, मानवात्मा के वध और विनाश का। महज़ खानापूरी है कि स्वामी जब मृत्युशैया पर पड़े हैं, तब बहू को बुला ही लो, अंतिम समय उनका मुंह तो देख ले !

ऐसे अग्नि-स्फुलिंगों आँधी-पानी और विद्युत्पात से खेलती और जूझती हुई नीलकमल सिसकियाँ लेती हुई रो रही थी। ध्वस्त गौरव द्वादशी उसे समझा रही थी—"बहुत रो न नीलू; ऐसी अवस्था में तुझे सब कुछ भूल जाना चाहिये बेटी। केवल एक कर्तव्य-निष्ठा, केवल एक धर्म साथ जाता है—और सबका सब यहीं पड़ा रह जाता है !"

फिर द्वादशी ने एक ऐसी बात कही, जिसने नीलकमल के मन को छू लिया। वह बोली—"तू तो सदा जिन्दगी से लड़ती रही है और लड़ने-वाले लोग क्या कभी दौड़ते-भागते झाड़-झंखाड़ों में उलझकर गिरते-पड़ते नहीं ? तेरे लिए रोने का अवसर ही कहाँ है ? मेरी प्यारी नीलू बेटी, तुझसे कभी कोई ग़लती नहीं हो सकती। ना, तुझसे कभी कोई पाप हो ही नहीं सकता। ना रो बेटी, मैं तेरी सभी तैयारी अभी कराये देती हूँ। तू जा बैंक से रुपया तो ले आ। ज़रा देख सुशी, अरुणबाबू आये कि नहीं। उनसे भी तो सलाह करनी पड़ेगी। अच्छा, तू पहले तार दे आ सुशी, मेरे पास अभी दो रुपये पड़े हैं।"

सुशीला ने एक काग़ज लेकर पहले नीलकमल के सामने रख दिया, फिर वह उस पर स्वयं लिखने बैठ गयी—"रीचिंग बाई टुमारो मॉनिंग !"

ऊपर संयोग बाबू के स्थान पर नयन का नाम तथा पता लिखा और फिर नीचे नीलकमल का नाम। सुशीला जब तैयार होकर जाने को तत्पर हुई तो नीलकमल बोली—"ज़रा ठहरो सुशीला, चाचाजी को आ जाने दो।"

अरुण के लिए 'चाचाजी' शब्द का प्रयोग करते समय नीलकमल ने

अनुभव किया—जैसे तेज़ाब से भरा हुई शीशी उसने गले के नीचे उतार ली हो। उसे कुछ ऐसा जान पड़ा, जैसे वह अचेत हो जायगी; लेकिन फिर उसने अपने को सँभाल लिया—'मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए क्या नहीं करता ? जो कुछ हुआ, वह मेरे सुखद भविष्य का एक आधार था। हाहाकार से भरी हुई यह ज़िन्दगी जो मैंने काट ली, क्या इसका कोई महत्व नहीं ? मैं जो जीवित बनी रही, यह क्या कुछ कम है ?'

वह अभी यह सोच ही रही थी कि इसी समय एक आदमी द्वार से झाँकते हुए बोला—"श्रीमती नीलकमल को इन्होंने बुलाया है। वे चुर्नी-रोड के होराइज़न-होटल के सत्ताइस नंबर के कमरे में बैठे हुए हैं ! उन्होंने उनकी याद की है, किसी बहुत ज़रूरी काम से, जिनका यह कार्ड है।"

कथन से पूर्व उसने अरुणबाबू का कार्ड उसके सामने पेश कर दिया था।

नियति, भाग्य और होनहार को हम जान भले ही न सकें, लेकिन कभी-कभी प्रतीत यही होता है कि मनुष्य के पुरुषार्थ और प्रयत्न की गति जहाँ विवश, क्षीण और मंद पड़ जाती है, वहीं अदृष्ट अपना खेल प्रारंभ कर देता है। कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि परिस्थितियों के जाल में पड़ा संत्रस्त्र मानव जब उदास, निराश, व्याकुल और सर्वथा असहाय बन जाता है, तभी घटनाक्रम की माया उसे सहारा देकर गिरते-गिरते बचा लेती और कभी-कभी तो उसी प्रकार गले से लगा लेती है, जैसे बहुत दिन की बिछुड़ी हुई कोई माँ हो !

किसी को विदित होना दूर रहा, कोई कल्पना भी न कर सकता था कि दो परस्पर विरोधी व्यक्ति जीवन में फिर कभी मिलेंगे। और मिलेंगे ऐसे धरातल पर कि काल के क्षिप्त कर उनके सारे घाव मिनटों में भर देंगे, कुण्ठाएँ विनष्टप्राय हो जायेंगी और जब वे परस्पर मिलेंगे, तब उनके वैमनस्यात्मक व्यवहार सहज ही आत्मीय संबंधों में परिणत हो जायेंगे।

चन्द्रविन्दु ने जब सुना कि आज ईरानी लड़की के रोल में जिस तरुणी का चुनाव हुआ है, वह वही नीलकमल है, जिसने कभी चप्पलों से मेरा सत्कार किया था; तब उसके मन में एकाएक वात्याचक्र आ गया।

उसको आज एक नया गीत याद करने के लिए दिया गया था। अरुण ने कहा था कि आज तो नहीं, लेकिन कल से इसका रिहर्सल प्रारंभ हो जायगा। कल तुमको तैयार होकर आना चाहिये।

लेकिन चन्द्रविन्दु तो सब काम छोड़कर नीलकमल से मिलना चाहता था; जबकि वह अपने घर लौट गयी थी और उसे मालूम ही न था कि उसका घर कहाँ है! हालाँकि वह यह सोचता था कि सभव है, अरुण-बाबू को उसका पता मालूम हो, लेकिन परिस्थितियों का जाल कुछ इस तरह का था कि अरुणबाबू से वह इस सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं करना चाहता था।

तब और उपाय न देखकर वह निर्माता के उस कार्यालय में पहुँचा जहाँ अनुबन्धों की फ़ाइल सेफ़ में रखी जाती थी। रास्ते में भी वह सोचता जा रहा था—'यह बात मुझे केवल अरुणबाबू से छिपानी है। अन्य लोग अगर वहाँ उपस्थित भी होंगे, तो उनके सामने यह जानने का कोई कारण न होगा कि किस अभिप्राय से यह व्यक्ति नीलकमल का पता पूछ रहा है। यद्यपि उस कक्ष में कैशियर बैठता था और एकाउण्टेन्ट भी। ये दोनों पद ऐसे थे, जहाँ कोई भी व्यक्ति मिल सकता था।

फिर जब वह वहाँ पहुँच ही गया, तब निर्माता के मौसेरेभाई बाबू जगतनारायण बैठे हुए चिउड़ा, गाँठिया-पापड़ी आदि नमकीन चीज़ों की प्लेट सामने रखे हुए चाय पी रहे थे। उनकी टेबिल पर एक बहुत छोटा-सा रेडियो मंद गति से बज रहा था। एकाउण्टेन्ट बाबू लेजर पर दृष्टि गड़ाये हुए किसी हिसाब की टोटलिंग कर रहे थे और कैशियर महाशय चेकबुक सामने रखे हुए चेक्स तैयार कर रहे थे।

चन्द्रविन्दु के प्रवेश करते ही एकाएक सबकी दृष्टि उनपर जा पड़ी। जगत बाबू बोले—"आइये, चन्द्रविन्दु बाबू!"

टाइप करती हुई एक टाइपिस्ट-गर्ल रिबन बदल रही थी। उसने भी एक बार कनखियों से चन्द्रबिन्दु की ओर देखा, फिर आँखें घुमा लीं।

जगत बाबू की टेबिल के आगे तीन सामान्य कुरसियाँ पड़ी हुई थीं। उन्हीं में से एक पर बैठते हुए चन्द्रबिन्दु ने कह दिया—"मैं एक खास काम से आया हूँ।"

जगत बाबू ने चिउड़ा टूंगते हुए उत्तर दिया—"काम की बात बाद में। पहले चाय पीजिये, मैंने उसे अभी छुआ भी नहीं है।"

"इसके लिए धन्यवाद, मगर इस वक्त नहीं।"

जगत बाबू पहले नागपुर में निर्माता की अपनी एक टाकीज में मुख्याधिकारी थे। पहले उन्होंने उत्तर में कह दिया—"ऐसा!" फिर बोले—"ऐसा नहीं होगा, चाय तो आपको पीनी ही पड़ेगी।" फिर उन्होंने उसी समय टेबिल की घण्टी बजा दी। चपरासी आ गया और उन्होने उससे कह दिया—"बाबू को चाय ले आओ और देखो, साथ में भजिया भी।"

तब तक एकाउण्टेन्ट बाबू ने कह दिया—'जबसे आपके गाने की रिकार्डिंग हुई है, तबसे स्टूडियो में उसकी बड़ी चर्चा है। यहाँ लोग आपके सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें किया करते हैं। कई लोगों का कहना है कि आपका गला मुकेश से बहुत मिलता-जुलता है।"

जगत बाबू ने आश्चर्य से कह दिया—"ऐसा! ऐसा हो सकता है।"

चन्द्रबिन्दु जो अब तक गंभीर था, एकाएक मुसकराने लगा। तब तक उसने उत्तर मे कह दिया—"अरे ब्यॉय, मैं सिर्फ़ चाय ही पिऊँगा, भजिया बजिया कुछ नहीं चाहिये मुझे।"

जगत बाबू बोले—"आप चाय ले लीजिये। बाद में आयेगी, तो उसे मैं ले लूंगा। बस!"

टेबिल पर रक्खे हुए रेडियो में पाकिस्तान में रिलीज हुई किसी पिक्चर में सुरैया का गाया हुआ कोई गीत चल रहा था। अन्य बातों की ओर चन्द्रबिन्दु ने कोई ध्यान न देकर धीरे से कह जिया—"आपको मालूम होगा, आज 'भूली याद' पिक्चर में ईरानी लड़की के रोल के लिए

जिस एक्ट्रेस को चांस दिया गया है, उसका नाम क्या है ? मुझे उसकी पब्लिसिटी के संबंध में एक काम सौंपा गया है इसलिए मैं आज ही उससे मिलना चाहता हूं। जरा उसका कान्ट्रैक्ट-फ़ार्म निकालकर पता तो बता दीजिये।"

जगत बाबू ने गाडरेज की अलमारी से एक फ़ायल निकाली, उसे खोला और कहा—"नोट कीजिये।"

इस प्रकार नीलकमल के घर का पूरा पता लेकर चन्द्रबिन्दु ने पहले जेब में रक्खा, फिर चाय पी, फिर जगत बाबू को धन्यवाद देकर वह वहाँ से चल दिया।

'चौधरी'प्रोडक्शन्स' का एकाउण्ट प्रार्थनासमाज के पास देना बैंक में था, जो सायंकाल सात से नौ तक खुला रहता था। नीलकमल को अपना चेक वहीं भुनाना था। अभी पाँच नहीं बज पाये थे। अँधेरी से उसको चरनीरोड की लोकल ट्रेन पकड़नी थी। जब वह गाड़ी पर बैठ गया, उस समय सवा पाँच बज गये थे। चर्नी रोड स्टेशन पर जब वह उतरने लगा, तब उसने सोचा—'नीलकमल के घर जाना तो ठीक होगा नहीं, पास के किसी रेस्तोराँ में बैठकर, उसके मुख्याधिकारी से मिलकर, किसी ब्वॉय को उसके घर भेजा जाय और किसी बहाने उसको वहीं बुलवा लिया जाय, तो कैसा हो ? मगर वह बहाना कौन-सा होना चाहिये ?' सोचता हुआ चन्द्रबिन्दु उस समय अपना सिर खुजलाने लगा था।

अब साढ़े छः का समय हो गया था। उस रेस्तोराँ के अन्दर वह पहुँचा ही था कि उसने देखा—अन्दर काफ़ी चहल-पहल है। सारे केबिन भरे हुए हैं। फिर भी वह मैनेजर के पास जाकर बोला—"मेरा एक ऐसा जरूरी काम है, जिसे आप ही कर सकते हैं। मुझे एक लड़की को बुलवाना है, जो यहाँ गिरगाँव में रहती है। मैं अँधेरी के महानभारत

स्टूडिग्रो से ग्रा रहा हूँ। चौधरी-प्रोडक्शन्स की एक पिक्चर के लिए इसी लड़की को चांस दिया गया है, ग्राज ही। बस उसी से मुझे मिलना है। मेरा ख्याल है, दो रुपये में, टैक्सी से ग्राप ग्रपने ब्वॉय को भेज सकते हैं।"

मैनेजर ने उत्तर दिया—"ग्राप खुद क्यों नहीं चले जाते? हमारे यहाँ तो कोई ग्रादमी खाली है नहीं, इस वक्त।"

चन्द्रविन्दु ने उत्तर दिया—"ग्रच्छा जाने दीजिये। ग्रब दूसरा काम सुनिये। ग्रापके होटल में कोई कमरा खाली है।"

मैनेजर ने उत्तर दिया—"दस रुपये वाला एक कमरा खाली है।"

"जरा देखना चाहता हूँ।"

मैनेजर ने एक ब्वॉय को बुलाकर कह दिया—"साहब को सत्ताइस नम्बरवाला कमरा दिखाग्रो।"

इस ब्वॉय का नाम था बिहारीलाल गुजराँवाला। रेस्तोराँ के हाल से निकलते ही उसने उसका यह नाम पूछ लिया था। हॉल के बाहर होते ग्रौर जीने की पहली सीढ़ी पर क़दम रखते हुए चन्द्रविन्दु ने कह दिया—"तुम तो मुझे बहुत काम के ग्रादमी जान पड़ते हो यार!"

उसे उत्तर दिया—मेरे लायक कोई सेवा?"

"ग्ररे वाह! तक़दीर हो तो ऐसी हो! ग्रच्छा चलो, पहले कमरा दिखाग्रो।"

कमरे के ग्रन्दर जाते-जाते उसने कह दिया—"ठीक है, मुझे पसन्द है। ग्रब एक काम करो, तुम टट्टी जाने के बहाने इस पते पर चले जाग्रो ग्रौर एक लड़की को बुला लाग्रो।" फिर जेब से उसने एक विजिटिंग-कार्ड निकालकर उस ग्रादमी को दे दिया। यह विजिटिंगकार्ड ग्ररुण बाबू का था। कथन के साथ पांच रुपये का एक नोट उस व्यक्ति के हाथ पर रखते हुए उसने कह दिया—"दो रुपये टैक्सी के, तीन रुपये तुम्हारे इनाम के। फौरन जाग्रो। लड़की जब यहाँ ग्रा जाय, तो कहना साहब सत्ताइस नम्बर के कमरे में बैठे हैं।...कहना—बड़ा जरूरी काम है ग्राना ग्रावश्यक है। समझ गये?"

इसके बाद नीचे जाकर उसने मैनेजर से कह दिया—"अच्छी बात है, मैं अपना सामान लेकर अभी आता हूँ।"

चन्द्रविन्दु इसी कोठी के पीछे एक दूसरे होटल में ठहरा हुआ था। पूरा कमरा तो उसे नहीं मिला था, एक अन्य पार्टनर में साथ वह उसमें रहता था। सामान लाने में उसे अधिक देर नहीं लगी।

सत्ताइस नम्बर के कमरे में उसने अपना सामान यथास्थान रक्खा ही था कि चिक का परदा उठा और चन्द्रविन्दु ने देखा—नीलकमल सामने है।

इस परिस्थिति के लिए चन्द्रविन्दु पहले से तैयार था। वह जानता था कि नीलकमल संभव है, मुझे देखते ही चीत्कार कर उठे।

एकाएक चन्द्रविन्दु को सामने पाकर नीलकमल एकदम से घबरा गयी। वह शायद चीख भी पड़ती, पर तभी चन्द्रविन्दु ने धाराप्रवाह बोलना शुरू कर दिया—"दुनिया बदल गयी है नीलकमल, आज तुम मेरी बहन के समान हो, सगी बहन के समान। मैं जानता हूँ तुम पर क्या बीत रही है! मैं यह भी जानता हूँ कि मैं ही वह अपराधी हूँ, जिसने तुम्हारे भविष्य की हत्या की है। पर मुझे जब मालूम हुआ कि भगवान की इस अनोखी रचना ने आज तुमको ऐसा अवसर दिया है कि तुम एक सम्मान-पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकती हो, तब मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, यह मेरा दिल जानता है। माना कि मेरा अपराध अक्षम्य है, लेकिन आज मैं यहां से तुमको जाने तभी दूंगा, जब यह देखूंगा कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया! बस, इसी अभिप्राय से मैंने तुमको यहाँ बुलाया था। मुझे पूरी आशा है कि इस समय तुम मुझको ग़लत नहीं समझोगी।"

नीलकमल सम्भ्रम में पड़ गयी। तुरन्त वह कोई उत्तर न दे सकी।

तब चन्द्रविन्दु ने कह दिया—"तुमको मेरी बातों पर विश्वास न होता हो, तो लाओ, सबसे पहले मैं तुम्हारे पैर छू लूं।"

कथन के साथ उसने अपना हाथ उसके पैरों की ओर बढ़ाया ही था कि नीलकमल ने उत्तर दिया—"बस-बस; इतना ही यथेष्ट है।"

नीलकमल शायद इसके बाद कुछ और भी कहती, पर चन्द्रविन्दु ने देखा—उसकी आँखें डबडबा आयी हैं। आंतरिक वेदना से उसके होंठ हिल रहे हैं। तब वह बोला—"जैसा कि मैंने अभी कहा, मैं सचमुच तुम्हारे सामने बहुत बड़ा अपराधी हूं। इसलिए प्रतिशोध-रूप में मेरी प्रार्थना है कि मेरे लायक कभी कोई सेवा हो तो बिल्कुल भाई समझ कर निःसकोच तुम मुझसे कह सकती हो। तुमको मालूम होना चाहिये कि मेरे अपराधी होने पर तुमने मेरा जो अपमान किया था उसका फल मैंने पा लिया है। उस घटना को कितने वर्ष हो गये! इस अवधि में मैं कहाँ पहुँचता, मेरे भविष्य का निर्माण कितना ऊँचा होता, तुम शायद इसकी कल्पना भी न कर सको!"

फिर उसने एक निःश्वास के साथ इतना और कह दिया—"मेरा विश्वविद्यालय छूट गया। एक अर्धविक्षिप्त की तरह मैंने प्रतिक्रिया के वे दिन काट लिये। आज कितनी परेशानियों के बाद संघर्ष करते करते मैं इस कंपनी में, जिसमें तुम्हारी नियुक्ति हुई है, प्लेवैक-सिंगर के रूप में आ पाया हूँ। कभी अवकाश मिला, तो इस अवधि की आपबीती मैं तुमको सुनाऊँगा और तब, मुझे विश्वास है, तुमको इस बात का पता चल जायगा कि मैंने इस पाप का प्रायश्चित कर लिया है। अब मैं फिर यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो तुम निःसंकोच मुझसे कह सकती हो। जब तक तुम मुझे सेवा करने का अवसर न दोगी, तब तक मेरा प्रायश्चित पूरा न होगा और मेरी इस दुःखी और सन्तप्त आत्मा को किसी प्रकार शांति न मिलेगी।"

अब सात बज रहे थे और नीलकमल को बैंक जाना था, लेकिन इतने में उसने देखा—चन्द्रविन्दु अपने इस कथन के अन्तिमांश में रो पड़ा है!

अन्ततोगत्वा नीलकमल को बोलना ही पड़ा—'खैर! जो कुछ हुआ वह तो लौट सकता नहीं। तुमको शायद मालूम नहीं, तुम्हारे वही मित्र जो मेरे स्वामी हैं, इस समय बहुत अस्वस्थ हैं। उनके भाई का टेलीग्राम आया है और मैं आज ही अहमदाबाद जा रही हूँ।"

चन्द्रविन्दु ने देखा—अब नीलकमल अपने आँसू नहीं रोक पा रही है।

तब फिर वह बोल उठा—"रोओ नहीं नीलकमल, मैं चलूंगा तुम्हारे साथ। मैं संयोग बाबू को तुम्हारे पक्ष में मनाकर मानूंगा। बस यही तो होगा कि वे मुझसे घृणा करने लगे!—कर लें! पर यह ग्रंथि सुलझ जाय, तो आशा है वे बहुत जल्दी स्वस्थ हो जायँगे।"

कहते-कहते वह स्वयं भी आँसू पोंछने लगा।

वह कुछ ऐसी परिस्थिति थी कि दोनों-के-दोनों एक-दूसरे के आँसू पोंछ रहे थे। नीलकमल का सिर चन्द्रविन्दु के वक्ष से लगा हुआ था और चन्द्रविन्दु के हाथ उसके सिर से लेकर ग्रीवा के नीचे पृष्ठ भाग को सहला रहे थे!

अन्त में नीलकमल ने चन्द्रविन्दु के वक्ष पर अपना मुंह रगड़ते हुए सिसकते-सिसकते कह दिया—"तुम मत चलो भैया! उनकी दृष्टि का विकार मुझे तो ग्रस चुका, तुम नाहक उनकी दृष्टि में नीचे गिरोगे!… फिर इतना तो मुझे दृढ़ विश्वास है भैया कि इन पिछले वर्षों में यदि उन के प्रति मेरी निष्ठा अक्षुण्ण बनी रही है, भले ही पैर डगमगाते रहे हों, तो वे मुझे त्याग नहीं सकते!"

अब चन्द्रविन्दु ने अनुभव किया, इतनी मानिनी और सती बहिन के लिए मेरा अपमान करना सर्वथा न्याय-संगत और स्वाभाविक था।

नीलकमल सोच रही थी—'काश ये चन्द्रभैया मुझे दो दिन पूर्व मिल जाते!'

Library Sri Pratap College

१७

बहुत दिनों के बाद आज फिर ऐसा अवसर आ गया कि श्यामबाबू अरुण को ठीक उसी मोड़ पर मिल गये, जो उनके आफ़िस के निकट पड़ता था। अरुण वहाँ एक वादक के घर से लौटता हुआ आ रहा था, जो कई दिनों से बीमार था और श्यामबाबू घर की ओर प्रस्थान कर रहे थे।

भेंट होते ही अरुण ने नीलकमल के अभिनेत्री का चांस पा जाने की बात उन्हें बता दी। उन्होंने इसके लिए बहुत-बहुत आभार स्वीकार किया और कहा—"तुम्हारी यह सहायता मैं जीवन में कभी न भूलूंगी।"

फिर उन्होंने यह भी बतलाया कि बहुत दिनों तक मैं बड़े भ्रम में रहा। तुमको पहचान ही न पाया। उनकी आँखें आँसुओं से डबडबा आयीं और वे रुद्धकण्ठ से बोले—"अगर मेरे कोई पुत्र होता, तो इससे अधिक मेरे लिए क्या कर सकता था? सच पूछो तो जन्म-जन्मान्तर के लिए तुमने मेरे जीवन में घर कर लिया है। मेरा रोम-रोम तुमको रात-दिन आशीर्वाद दिया करता है।"

अरुण अपनी स्थिति के मर्म की कोई भी झलक दिये बिना पुलकित मन से बोल उठा—'शायद आपके इस आशीर्वाद का ही यह फल है कि इस बार गणतन्त्र-दिवस पर मैं भी संगीत-समारोह में भाग लेने के लिए अपनी पार्टी के साथ आमन्त्रित किया गया हूँ। परसों ही इसके उपलक्ष्य में मुझे दिल्ली जाना है।"

यह ऐसा विषय था कि श्यामबाबू उत्साहित हो उठे और उन्होंने ड्रिंक का कार्यक्रम सोचकर कह दिया—"तो फिर आओ, इसके उपलक्ष्य

में हम लोग आज थोड़ा रसपान ही कर लें। फिर कौन जाने, ऐसा दिन आये न आये, कौन जाने रास्ते में पड़े रोड़े की भाँति गति के चरण हमें कहाँ फेंक दें!"

अरुण ने सिगरेट निकालकर श्यामबाबू के समक्ष पेश करते हुए पहले उसे लाइटर से जलाया, फिर अपनी सिगरेट जलाकर धुँआँ फेंकते-फेंकते उत्तर दिया—"मुझे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। बस यही जरा-सा ख्याल होता है कि इस व्यसन को अब और अधिक जारी रखना आपके हितों के साथ अत्याचार करना है! इसके सिवा मुझे यह भी देखना पड़ता है कि कहीं मैं अपने बजट को ठेस तो नहीं पहुँचा रहा हूँ!"

श्यामबाबू ने बार की ओर मुड़ते हुए उत्तर दिया—"बजट का मैंने कभी ख्याल रक्खा भी है! जब जो मन में आया, या सामने कोई माँग आ पड़ी, तब उसे किसी-न-किसी तरह निभा भर दिया है। कभी यह शिकायत नहीं की कि मेरे लिए किसी ने कुछ नहीं किया! इतना क्या कम है कि मैंने जीवन नहीं खोया? गिरते-पड़ते मैं चलता ही रहा। नीलू ने मुझे टूटने नहीं दिया, आपने भी समय-समय पर शक्ति-भर वह सब कुछ किया, जो आप सहज ही कर सकते थे। धीरे-धीरे सब प्रकट हो जाता है अरुण बाबू। आँगन हो कि कमरा, खिड़की हो कि छज्जा, खिलनेवाली धूप घर के कोने-कोने का भेद बतला देती है; हृदय की धड़कनें, आँखों की चितवन, मुंह की चीरन, मुद्रा और भंगिमाएँ सब कुछ बतला देती हैं।

अरुण ने उत्तर दिया—"मगर अब सुशीला का विवाह कर डालिये, डर लगता है, कहीं देर न हो जाय।"

अब बार की सीढ़ियाँ आ गयी थीं। कदम उठाते हुए श्यामलाल बाबू बोले—"मैंने उस वक्त चिन्ता नहीं की अरुण बाबू, जब मैं बिना सब्जी के, पानी से पतली दाल के साथ ही, सूखी रोटी खाकर, बिना दूध पिये, रात को सो जाता था!"

फिर कक्ष की ओर जाकर एक केबिन पर आसन ग्रहण करते हुए बोले—"ब्वॉय! जरा इधर आना।"

अरुण सोच रहा था—'नीलकमल ने उस दिन होटल में कहा था—लाम्रो तुम्हारे चरण चूम लूं; ताकि पाप की आशंका का कोई भी मैल मेरे मन में न रह जाय !'—मुझे आज कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है, जैसे अपने को खोकर ही मैंने उसे पाया; इस प्रकार फिर अपने को लौटा लिया है।'

फिर उसे ध्यान हो आया—'नियुक्ति हो जाने के बाद नीलकमल अब थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो जायगी। पर फिर उसके मन में आया—'लेकिन अब कुछ ही दिनों के बाद, संभव है, वह संकट भी उपस्थित हो जाय !'

ब्वॉय सुरा से भरे हुए गिलास ला रहा था और श्यामबाबू सोच रहे थे—'वैसे तो यह अरुण ऊपर से बड़ा सुहृदय कलाकार जान पड़ता है; लेकिन फिर कभी-कभी मेरे मन का चोर एकाएक जाग उठता है, तो लगता है, यह नीलकमल के साथ; हो सकता है···। लेकिन इसमें मेरा वश ही क्या है ? मनुष्य की प्रकृति को मैं क्या करूँगा ?···नहीं-नहीं, न नीलकमल के लिए ऐसा संभव है और न यह अरुण ही इतना गिर सकता है !'

भजिया टूंगते और सुरा का घूंट कण्ठगत करते हुए श्यामबाबू कह रहे थे—"मालूम नहीं क्यों, हम कभी-कभी बहुत गिर जाते हैं अरुण।"

अरुण देख रहा था—श्यामबाबू अब पूरे फ़ार्म में आ रहे हैं।

तभी श्यामबाबू आगे बढ़ गये और बोले—"ज़िन्दगी में कभी-कभी मेरा भी पैर बुरी तरह फिसल जाता रहा है अरुण; अब तुमसे क्या छिपाऊँ ! लेकिन फिर यही सोचता रहा हूँ कि तिनके, तरह-तरह के पेड़ों के, पत्तियों के, घास-फूस के, धार में बहती हुई डाली के साथ, कभी-कभी हमसे आ ही मिलते, या हमारी देह से लिपट ही जाते हैं। टहनियों के रूप में हमारी बाहें और अँगुलियाँ ही साथ बहते हुए उन्हें समेट लेती हैं। लेकिन कितनी देर को ? बहते-बहते अंत में अपने आप वे सब हमसे अलग हो जाते हैं ! फिर ऐसा भी तो है कि हम टूट जाते हैं ! हमारे बाल टूटते हैं, हमारे दाँत गिरते हैं और एक दिन सीढ़ी से गिर जाने में

हाथ-पैर तक टूट जाते हैं ! हम खुद भी पूरी तरह टूट जाते हैं। मगर पियो-पियो, अरुण बाबू। तमाशे दुनिया के कम न होंगे ··!"

हाथ की अँगुली, एक भौं का कोना और नीचे का होंठ कुछ अधिक फैलाते हुए श्यामबाबू कहे जा रहे थे—"तुमको मालूम नहीं अरुण बाबू, इस नीलकमल की शादी मैंने कितनी तैयारी के साथ की थी। हमारा दामाद कार पर घूमता था।···आगरे में हमने भी अच्छे दिन देखे थे। हमारा दामाद अहमदाबाद के अच्छे नागरिकों में गिना जाता था।··· पियो-पियो अरुण ! अब सोचना क्या है ? ···हाँ, तो मैं कह रहा था कि संयोग बाबू बहुत ठाठ से रहते थे, कई मकान थे उनके पास। रेडियो की दूकान थी—दूकान तो शायद अब भी है; हालाँकि बहुत दिनों से उनका कोई हालचाल नहीं मिला। खैर ! और तो सब ठीक ही है ··।"

फिर एक आह के साथ वे बोले—"अफ़सोस मुझे बस इतना ही है कि या तो अपनी इस नीलू में ही कुछ खोट है—कौन जाने कहीं पैर इधर-उधर पड़ ही गया हो, या फिर संयोग बाबू को ही कोई गलतफ़हमी हो गयी है। रह गयी सुशीला।···अरे ब्वॉय एक पेग और !"

अरुण बाबू बोले—"अब और कोई पेग-वेग नहीं चलेगा दादा। हम लोग बाल-बच्चे वाले आदमी हैं।"

हाथ झटकते हुए श्याम बाबू ने कह दिया—"अरे हटो, बहुत बनो मत मेरे सामने अरुण ! मैं सोते हुए भी आँखें खोले रहता हूँ। मैं अचेत अवस्था में भी सपनों से खेलना नहीं छोड़ता। तुम्हारी फ़िल्म-इन्डस्ट्री में बाल-बच्चेवाले आदमियों का औसत अस्सी-फ़ीसदी से ज्यादा है, मुझे मालूम है। लेकिन बाल बच्चों के रहते हुए भी पतन की ऐसी कौन-सी सीमा है, जिसको पार करना उनके लिए बाकी रह जाता हो ? तुम्हारी बहू प्रियम्वदा एक दिन मेरे यहाँ बैठी हुई कोई ऐसी बात कह रही थी, मैं बाहर से आ रहा था और मैंने ऐसा सुन लिया था, कि मैं ताज्जुब में पड़ गया था ! पहले तुम्हारी नीलकमल के साथ बहुत पटती

थी; लेकिन इधर हमारे आस-पास के रहनेवाले काना-फूसी करते हुए कहा करते हैं—'आजकल नीलकमल के साथ अरुण का बोल-चाल तक बन्द रहता है !' मुझे कुछ मालूम नहीं, मैंने कुछ जानने की कोशिश भी नहीं की; लेकिन कुछ तो ऐसी बात जरूर है कि उसका हँसना बन्द हो गया है अरुण ! एकदम से उन्नति करनेवाला आदमी, तुम्हीं ज़रा सोचो, कितना प्रसन्न रहता है ! आपस के लोगों में बैठकर कितना हँसता-चहकता है, तुम्हारे जैसे उपकारी और सहारा देनेवाले आदमी का कुछ स्वागत-सत्कार भी करता है ! लेकिन मैं देखता हूँ—नीलकमल का अब तुम्हारे घर आना-जाना बन्द हो गया है ! यह क्या बात हुई अरुण ? कभी तुमने सोचा ? तुमको पता नहीं, इधर दो दिनों से रात को मुझे नींद नहीं आ रही है।" अब नाक सिकोड़ते हुए श्यामबाबू कह रहे थे—"कभी-कभी यह आदमी नाम का जीव, कितना क्षुद्र जानकर बन जाता है अरुण !"

थोड़ा रुककर वे फिर बोले—"मगर खैर, पिये जाओ अरुण बाबू ! हम सब लोग ऐसे ही जानवर हैं। तुमको पता नहीं, एक दिन नीलू की माँ तक ने कह दिया था—तुम से तो जानवर भले ! बहुत दिन की बात है।"

ब्वॉय दोनों गिलासों में पेग-पर-पेग ढाल रहा था और अरुण मूक, जड़, स्तब्ध होकर सब सुनता, सब देखता जाता था। अन्त में वह भी एकाएक बर्स्ट हो उठा और बोला—"बस, अब यह बकवास बन्द हो जानी चाहिये दादा। अभी थोड़ी देर पहले आप मेरे उपकारों के गीत गा रहे थे और एकाएक सुरा पीते-पीते इतने बहक गये ! यह भी ख्याल न रहा कि कहने क्या लगे ! ये केवल शंकाएँ हैं, जो सगे-से-सगे बन्धु और प्यारे-से-प्यारे व्यक्ति को अपने से दूर फेंक देती हैं ! शंकाएँ अपनी-अपनी मानवी-अमानवी दुर्बलताओं और कुंठाओं से उत्पन्न ! तुमको क्या पता कि नीलकमल के साथ मेरे कैसे रिलेशंस हैं ! तुमको क्या पता कि अपने छोटे से रोल में उसको कितना ऊँचा उठा देने की तमन्ना मैं अपने दिल में पाले बैठा हूँ !"

"हः हः हः !—ऊँचा उठाने की तमन्ना !" एकाएक इसी समय श्यामबाबू बोले—"दो-चार महीने में सब मालूम हो जायगा अरुण बाबू फ़िल्म-उद्योग में सब कुछ चलता है। सामने कोई नहीं कहता, बल्कि पीठ पीछे पर्दे की आड़ में, आदमी की शक्ल रखने और विवेकशील बनने वाला हर एक इन्टलेक्चुअल अन्त में एनीमल बल्कि बीस्ट ही बनकर रहता है। मगर खैर, पिये जाओ अरुण बाबू, इस दुनिया में सब कुछ चलता है !"

मन्द-मन्द हँसते हुए उन्होंने अपना कथन जारी रक्खा—"लोग मर्यादा की दुहाई देते हैं ! सयोगबाबू की कम मर्यादा थी ? मगर मैंने सुना—उनकी रातें वेश्यालयों में बीतती रही हैं। हमने पहले सोचा था – नीलू वहाँ पहुँचकर स्वर्गीय सुख-सम्पदा का भोग करेगी; लेकिन नीलू के शील, गुण और स्वभाव के साथ वह इतना भी समझौता न कर सका कि ज्यादा नहीं दस-बीस वर्ष तो निभाता। इस दुनियाँ में ऐसे भी लोग हैं, जो बुढ़ापे में भी पत्नी को साथ बैठाकर भोजन करते हैं ! हमने उसके पास एक पत्र भेजा और उसने उत्तर तक न दिया ! लानत भेजता हूँ मैं ऐसी रईसी पर ! मेरी नीलकमल अगर किसी गरीब घर में जाती, तो वह बहुत सुखी होती ! मगर मैंने कहा न कि आदमी टूटता है। नीलकमल के विच्छेद ने मुझे तोड़ डाला है, अरुण बाबू ।···हः हः हः अभी तुम कह रहे थे कि मैं बहक रहा हूँ !"

इसके बाद भी शायद बातें और चलतीं, पर तभी ब्वॉय खाना ले आया। अब रात के पौने आठ बज रहे थे और होटल के हाल में नृत्य-मण्डली प्रवेश कर रही थी। एक वादक वायोलिन के महीन-स्वर निकाल रहा था, दूसरा बैंजो बजाना शुरू कर रहा था।

इसी समय अरुण ने कौर तोड़ते हुए कह दिया था —"आपको शायद पता नहीं कि प्रियम्वदा अपने मायके जानेवाली है।"

उस दिन जब श्याम बाबू अपने घर लौटकर आये, तो प्रीतिलता के स्वामी ने, जो छज्जे पर खड़े-खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, मकान की चाबी उन्हें देते हुए बतलाया —"सब लोग नीलकमल को विदा करने

गये हैं। उसके देवर का तार आया था; क्योंकि उसके स्वामी बीमार हैं।"

तालो लेकर उन्होंने मकान खोला, फिर अन्दर जाकर भीतर से सिटकिनी बन्द कर ली। वे अब पलँग पर लुढ़क गये थे।

ईर्ष्या जब द्वेष का रूप धारण कर लेती है, तब वह नागिन बनकर अपने विरोधी को काट खाती और उसका अस्तित्व मिटाकर ही मानती है।

ईरानी लड़की के रोल में नीलकमल के साथ जो अनुबन्ध कर लिया गया, उसका एक आधार था। स्टिल केमरामैन श्रीयशोवर्धन कपूर ने उसके विविध रूपों और भंगिमाओं में—एक दर्जन फोटोग्राफ्स लिये थे। पिक्चर की यूनिट में जितने भी अधिकारी लोग थे, सबने यह बात एक स्वर से स्वीकार कर ली थी कि 'भूली याद' की प्रमुख नायिका मृगलोचनी तलवार अनुपम सुन्दरी अवश्य हैं, लेकिन जहाँ तक करुणा और सम्मोहक मुस्कान का सम्बन्ध है, नीलकमल कम प्रभावशालिनी नहीं है। अपने छोटे से रोल में ही वह इतना प्रभाव डाल सकती है कि मृगलोचनी को भी मात दे दे!

निर्देशक मल्लिक साहब का कहना था कि यही हमारा अभीष्ट भी है। उसकी दो-चार झाँकियों में हम दर्शकों के सौन्दर्य-बोध को एक बार जगाकर फिर उन्हें अतृप्त छोड़ देना चाहते हैं। इससे हमारे दो उद्देश्य एक साथ सिद्ध हो जायँगे। एक तो मृगलोचनी तलवार पर आधारित क्लाइमेक्स अपने पूर्ण स्तर तक पहुँच जायगा, दूसरे उसकी भावप्रवण स्वाभाविक स्पर्धा को इतना उत्तेजन भी नहीं मिलेगा कि वह प्रकारान्तर से सहनायिका की उत्तेजनात्मक भावनाओं का मोह संवरण न कर सके।

निर्माता चौधरी साहब का कहना था कि नीलकमल के लिए यह एक परीक्षा का अवसर है। यदि वह अपने रोल को अच्छी तरह सँभाल ले गयी, तो हम अगली पिक्चर में उसे प्रमुख नायिका का अवसर देंगे।

स्टिल केमरामैन कपूर साहब का कहना था कि कोई बुरा माने चाहे भला,

पिक्चर के हित में नीलकमल से बढ़कर इस समय कोई अभिनेत्री हमको दिखलाई नहीं पड़ती। इन्डस्ट्री के लिये एक तो यह हमारी नयी खोज मानी जायगी, दूसरे नयी पौध को प्रोत्साहन देने में हमारे साहस की भी चारों ओर प्रशंसा होगी। सच्ची बात तो यह है कि जनप्रिय और सुपरिचित नायिकाओं का ही ध्यान रखकर, हमको किसी भी नवप्रवेशिका अभिनेत्री की प्रतिभा को दबाने का ऐसा कोइ कार्य न करना चाहिये, जो उसके संवर्द्धनशील विकास का मार्ग ही रोक दे।"

समय यद्यपि थोड़ा था, लेकिन ये सब बातें अरुण ही नहीं, चन्द्रविन्दु के कानों में भी जा पहुँची थीं और मृगलोचनी तलवार के लिए तो चिन्ता का कारण बन गयी थीं। चन्द्रविन्दु के माध्यम से उसको इस बात का पता चल गया था कि यह नीलकमल ही संयोगरंजन की परित्यक्ता धर्मपत्नी है। मृगलोचनी के साथ बात करते-करते एक बार चन्द्रविन्दु के मुंह से यह बात निकल भी गयी थी—

"संयोग बाबू को उसके विरुद्ध भड़काने का जघन्य कार्य जिस व्यक्ति ने किया है, मैं उससे परिचित हूँ। अपने अपमान का बदला लेने के लिए ही, एक प्रतिहिंसा के रूप में, उसने संयोग बाबू के मन में एक ग्रन्थि डाल दी थी। वास्तव में वह नैतिक दृष्टि से बहुत पवित्र नारी है। वैसे चाहे मुझे उसकी इस बात पर विश्वास न होता, लेकिन उस व्यक्ति ने सुरापान कर लेने पर यह बात ऐसे ढंग से कही थी कि उस समय उसकी आँखों में आँसू आ गये थे! उस व्यक्ति पर इसकी बड़ी प्रतिक्रिया हुई थी। फलस्वरूप उसको अपना आगरा-निवास त्यागकर कानपुर आ जाना पड़ा था। और यह बात तो शायद तुमको भी मालूम हो कि नीलकमल के अठारह वर्ष आगरा में ही बीते हैं।"

चन्द्रविन्दु उस समय, जब मृगलोचनी तलवार के यहाँ से, उसकी एक प्रतिक्रिया के कारण, एक-ब-एक चला आया था, तब घण्टे भर बाद ही पुनः उसने उसको फोन करके अपने यहाँ बुला लिया था।

इस प्रसंग की ये बातें मृगलोचनी तलवार को उसी से विदित हुई थीं।

१८

अरुण जब अपने घर लौटा, उस समय साढ़ेआठ बज चुके थे। प्रियम्वदा ने बताया कि नीलकमल अपने स्वामी के यहाँ चली गयी।

अरुण एकदम से आश्चर्य में पड़ गया और उसके मुँह से निकल गया—"इतनी जल्दी! उसे अभी जाना न था। आज ही उसको एक जगह काम मिला था, जिसमें उसकी एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। तुमको उसने कुछ बतलाया नहीं?"

प्रियम्वदा बोली—"यह तुम क्या बक रहे हो! उसके देवर का तार आया था कि उसके स्वामी बीमार हैं। ऐसी दशा में वह अपने को रोक ही कैसे सकती थी! नौ बजकर दस मिनट पर गुजरात-मेल से उसे जाना है। सुशीला और उसकी माँ, प्रीतिलता तथा शान्तिबाई—सब उसे भेजने गयी हैं। जल्दी में कोई खास तैयारी तो हो नहीं पायी; प्रीतिलता उसे कुछ साड़ियाँ दे रही थी, मगर उसने एक भी नहीं ली। उसका कहना था कि मैं जैसी हूँ, ठीक हूँ। अपनी किसी हालत को छिपाना मेरे वश में नहीं रह गया। जब से तार मिला था, तब से उसकी आँखें डबडबायी हुई ही बनी रहीं। उसके आँसू बंद ही नहीं हो रहे थे!"

कहते हैं, ऐसी अवस्थाओं में शराबी आदमी सामान्य आवस्था से कहीं अधिक सचेत और जागरूक हो जाता है। सुरा उसकी चेतनता को सुदृढ़ बनाये रखती है।

अरुण ने घड़ी देखते हुए कहा—"उसको विदाई देने के लिए तुमको भी स्टेशन जाना चाहिये था।"

"हूँ, जाना चाहिये था! कैसे जाती भला, भैया को साथ लेकर!

—सूना मकान छोड़कर !"

तब एक निःश्वास के साथ अरुण बोला—"तब तुम्हारी यह ड्यूटी मुझे बजानी पड़ेगी । जाऊँ, शायद भेंट हो ही जाय !"

इतना कहकर अरुण चट वहाँ से चल दिया । जीने की ओर पैर बढ़ाते हुए वह सोचने लगा—'घटनाओं की इस संयोजना में उसी निर्माता का हाथ है । मनुष्य ऐसी दशा में क्या कर सकता है ! अभी उसके पास शृंगार प्रसाधन की पर्याप्त सामग्री ही कहाँ है—अच्छी साड़ियाँ तक तो उसके पास हैं नहीं ! विवाह के समय जो साड़ियाँ मिल गयी थीं, उन्हीं से वह अपना काम चला रही थी । किसी-न-किसी को उसके साथ जाना भी चाहिये था । ये कैसे असभ्य लोग हैं, जो उसे लेने नहीं आये ! तार मात्र भेज देने से उनका कर्तव्य पूरा हो गया !'

चरनीरोड स्टेशन के मार्ग में उसे टैक्सी मिल गयी थी । बाम्बेसेंट्रल तक जाते-जाते वह सोचता रहा—'इतनी जल्दी में तो कुछ हो नहीं सकता । हाँ, एक बात हो सकती है कि चौधरी साहब को मैं फ़ोन कर दूँ और सारी परिस्थिति बतलाकर स्वयं ही उसे भेज आऊँ ।'

पर देर काफ़ी हो गयी थी । चरनीरोड स्टेशन पर नौ बजने में पाँच मिनट शेष थे । किसी तरह जब वह बाम्बेसेंट्रल स्टेशन के गुजरातमेल वाले प्लेटफार्म पर पहुँचा, तब तक गुजरात-मेल रेंगने लगा था । गार्ड के हाथ में हिलती लैनटर्न देखकर तेज़ी से भागता-भागता वह झट से उसी के डब्बे पर चढ़ता हुआ बोला—"प्लीज़ एलाऊ मी, एटलीस्ट फार फर्स्ट स्टाप ।" और अन्दर आकर उसने एक वाक्य में कह दिया—"जीवन और मृत्यु के बीच में एक ऐसी परिस्थिति भी होती है, जब हम क़ानून का मुंह नहीं देखते ।"

चढ़ते-चढ़ते अरुण ने देख लिया था—महिलाओं का जो दल प्लेटफार्म पर खड़ा हुआ था, वह गार्ड के डब्बे से कितने फासले पर है । गार्ड समझ गया था कि यह यात्री वास्तव में किसी अत्यन्त आवश्यक कार्य से ही मेरी शरण में आया है । तब उसने मुसकराते हुए उत्तर दिया—

"इतमीनान से बैठ जाइये।"

अरुण बोला—'जल्दी में मैं टिकट भी नहीं खरीद सका। यहाँ तक कि अपना सामान भी नहीं ला सका; जबकि मुझे अहमदाबाद जाना है।"

गार्ड ने उत्तर दिया—"खैर कोई बात नहीं। आपका टिकट बनवा दिया जायगा।"

अरुण ने उसे धन्यवाद देते हुए कहा—"आपकी इस कृपा का मैं सदा स्मरण रक्खूंगा।"

वह जब गार्ड के डब्बे पर चढ़ रहा था, तब द्वादशी ने उसे देख लिया था।

अगले स्टेशन पर गार्ड के डब्बे से उतरते हुए अरुण ने उसकी ओर उन्मुख होकर इतना और कह दिया—"बड़ी कृपा होगी, यदि आप टी० टी० आई० को सेकण्ड क्लास के डब्बे में भेज दें। मेरा नाम अरुण है।"

फिर जब वह उसके डब्बे में पहुँचा तो नीलकमल बोली—चलो, "तुमसे भेंट हो गयी, मुझे तो बिल्कुल आशा न थी।"

अरुण ने धीरे-से उत्तर दिया—"जिन परिस्थितियों में तुम एकाएक ससुराल जा रही हो, उनको देखते हुए मैं रुक ही कैसे सकता था! इस अवसर पर एक बात तुम्हें आवश्यक रूप से बता देना मैं बहुत उचित समझता हूँ। जीवन के बहुतेरे रहस्यात्मक तथ्य नैतिकता की दृष्टि से चाहे जितने गर्हित समझे जायँ, लेकिन जीवन सौख्य के मंगलकारी रूप की सर्जना में उन सबका अपना एक विशेष महत्व होता है। जो कुछ हुआ, अब उसको भूल जाने में ही तुम्हारा गौरव है। अगर भावुकतावश तुमने अपने स्वामी को इन परिस्थितियों का परिचय दे दिया, तो यह तुम्हारी बहुत बड़ी मूर्खता होगी। गोपनीय प्रसंगों को अपने आत्मीय-से-आत्मीय व्यक्ति से छिपाने में कोई बुराई नहीं है; क्योंकि सबसे बड़ा सत्य है—जीवन का मांगलीकरण। मनुष्य उसी के लिए जीवन के सारे विषाद को पीता रहता है। मूलतः कोई आदमी बेईमान नहीं होता। ये केवल परिस्थितियाँ हैं, जिनके वात्याचक्र में पड़कर मनुष्य सब-कुछ करता है, सब कुछ

सहता है। आज प्रश्न यह नहीं है कि हमारी विजय में पतन के कितने काले हाथ हैं; क्योंकि हमारा अंतिम लक्ष्य सामूहिक रूप से जीवन की विजय है, व्यक्ति की नहीं। ध्यान से देखो, तो तुम्हें मालूम होगा कि जीवन अपने आप में ही एक रहस्य है, अपने आप में ही एक संगुप्त नियोजन। इसलिए सारी प्रतिक्रियाओं को ताक़ में रखकर तुम्हें सदा प्रसन्न रहना है। मानसिक आघातों और मानवीय दुर्बलताओं को कह डालने में उतना गौरव नहीं, जितना उनको पी जाने में!"

स्तम्भित हो उठी नीलकमल—रोज़ बरतते-बरतते जैसे कोई टी·सेट टूट जाय, वैसी-ही टूट गयी-सी नीलकमल बोली—"अच्छा हुआ कि तुमने यह सब बिलकुल ठीक समय पर बता दिया। यद्यपि मेरे अन्दर यह संघर्ष परसों रात से बराबर चल रहा है। पर तुम मुझको क्या समझते हो, जिस पर सब कुछ बीता है और जिसे आगे भी मालूम नहीं क्या-क्या भोगना है! किन्तु इस अवसर पर एक बात मुझे भी तुमसे पूछनी है—घटनाओं के इस तारतम्य में क्या सचमुच तुम्हारे नियोजन का ही हाथ रहा है? या ऐसा कुछ है कि मेरी ही भाँति तुमने भी स्वयं अपने को छला है?"

अरुण तब मुसकराता हुआ बोला—"यह मत पूछो नीलम! मैं अपने को नहीं जानता था। शायद जान भी न पाता, अगर तुम मेरे जीवन में न आतीं। सोचता हूँ, हो सकता है कि मैंने भी प्रतिक्रियावश अपने जीवन को समाप्त कर दिया होता। एक तुम थीं कि मैं अपनी कला में जादूगर बन गया। एक तुम हो कि मैं अपने लक्ष्य को पा गया। अब अगर मैं मर भी जाऊँ तो मुझे कोई दुःख न होगा!"

गाड़ी हिल रही थी। नीलकमल का उलझा-उलझा मन भी भविष्य की कल्पना में हिलने लगता था। पिछली रातें मनोमंथन में बीती थीं। कतिपय पीड़ाओं और उनके उद्वेलनों का स्थान अब उस प्रकार की शांति ने ले लिया था, जो प्रायश्चित्त की अवधि समाप्त कर लेने के अनन्तर, किसी कारागारवासी को, फाटक से बाहर हो जाने पर, स्वाभाविक रूप से मिलती है।

धीरे-धीरे उसकी आंखें झपकने लगीं। बर्थ पर लेटने का स्थान तो था नहीं, अपनी सीट के पृष्ठभाग से लगकर उसके नयनोत्पल मुंद गये। अरुण भी अपनी प्रियम्वदा और सुरेश के ध्यान में लीन हो गया।··· 'सीने से चिपकाये वह उसे दूध पिला रही होगी।···द्वादशी भाभी ने बता दिया होगा कि वे नीलू के साथ चले गये।'

अहमदाबाद स्टेशन पर बड़ी भीड़ थी। जब गुजरात-मेल प्लेटफार्म पर जा पहुँचा, तब अरुण ने नीलकमल से कहा—"उठो, नीलम, अब तुम अहमदाबाद में हो।"

नीलकमल एक दम से चौंककर उठ बैठी। फिर दोनों प्लेटफार्म पर आ गये और कुली सामान सिर पर लादकर चल दिया।

इतने में नयन एक सेवक के साथ सामने आ पहुँचा। भाभी के पैर छूते हुए जब उसने दुबारा उसके मुख की ओर दृष्टि डाली, तब तक रूमाल नीलकमल की आँखों पर आ चुका था।

घर पहुँचने पर सास-ननद ने नीलकमल को बड़े प्यार से ग्रहण किया। सुभद्रादेवी ने उसे गले से लगाया, सिर पर हाथ फेरा और आशीर्वाद देते हुए कहा—"मैं जानती थी, तू जरूर आ मिलेगी। अब मुझे विश्वास हो गया कि भैया की तबियत बहुत जल्दी सुधर जायगी। तेरी साधना कभी बेकार नहीं जा सकती।"

नीलकमल जब शान्तिज्योति के चरण छू रही थी, तब उसने बतलाया—"भाभी आ रही हैं, यह समाचार पाकर बहुत दिनों के बाद भैया कुछ प्रसन्न दिखलाई पड़े और उन्हें नींद भी आयी।"

नयन ने अरुण का पूरा स्वागत-सत्कार किया। अरुण ने स्वयं ही अपना परिचय देते हुए कह दिया था—"मैं एक वाक्य में केवल इतना कह सकता हूँ कि मैं पारिवारिक सदस्य न होते हुए भी कुछ उस प्रकार का व्यक्ति हूँ, जो जब 'वक्त पड़ा तब कोई नहीं' कथन का एक 'कोई' मात्र

रहता है। मैंने नीलकमल के सुख-दुख को इन्हीं आँखों से देखा है। उसने मेरी कला-साधना में सहायता पहुँचायी है और मैंने उसके जीवन के डगमगाते पदों को स्थैर्य प्रदान करने में।"

फिर वह पवन घड़ी भी आ गयी, जब संयोग बाबू ने लेटे-लेटे उठकर शान्तिज्योति की ओर उन्मुख होकर कहा—"अरे ज़रा उसको यहीं भेज दो न दीदी! शायद वह नींद बुला ही दे! शायद वह आते-आते मेरे मन की अशान्ति दूर कर दे! कितने दिन हो गये, मेरी ये आँखें दो बूंद आँसुओं के लिए तरसती रही हैं।" फिर उठते हुए बोले—जाओ-जाओ दीदी, अब उसे भेज ही दो यहाँ। तार पाकर चली आयी है, मेरी मान रक्षा के लिए इतना बहुत है।"

फिर वह क्षण भी आ गया, जब नीलकमल अपने स्वामी के सामने थी।

धीरे-धीरे आगे पग बढ़ाती हुई जब वह संयोगबाबू के सामने पहुँची तो बिना कुछ कहे उसने उनके चरणों पर अपना मत्था टेक दिया।

सिर पर हाथ रखकर संयोगबाबू बोले—"बस-बस, इतना बहुत है रानी।"

जब वह नीलकमल के सिर को उठाने लगा, तो एकदम से चौंकते हुए बोला—"अरे! तुमने तो मेरे पैर तक आँसुओं से भिगो दिये!"

नीलकमल कुछ बोली नहीं। उसने देखा—जिसके एक शब्दमात्र से, जिसकी एक तिरछी चितवन और चढ़ती हुई भौं से—घर का सारा वातावरण कम्पित हो उठता था, स्वयं उसी का कण्ठ भर आया है! पत्थर मोम बनकर पिघल उठा है!

तब उसने पूछा—"अब तुम्हारी तबियत कैसी है?"

संयोगरंजन ने मुसकराते हुए धोती से अपने आँसू पोंछ लिये। फिर उत्तर में एक निःश्वास के साथ, धीरे-धीरे, बहुत धीरे उसने कह दिया—"अब तबियत बिलकुल ठीक हो गयी रानी। मैं सब कुछ समझ गया। जीवन ने मुझे सब कुछ बता दिया; यहाँ तक कि मेरा अनुभव

Library Sri Pratap College

स्वयं बोल उठा है—न तुम अपराधी हो, न मैं अपराधी हूँ; क्योंकि हम सब-के-सब अपराधी हैं। कम-से-कम इस मामले में तो सच्चे हैं कि अपने प्रति अपराधी नहीं हैं।'' और इतना कहते-कहते उसने अपनी तकिया के नीचे से एक पत्र निकालकर नीलकमल के सामने उपस्थित करते हुए कह दिया—"लो, पहले इसको पढ़लो। बाकी इसके बाद।''

नीलकमल पत्र खोलकर पढ़ने लगी।

बम्बई

ता० २२-१-६०

प्रिय संयोग बाबू,

आपके आदेशानुसार मैंने आपको पत्र लिखना बन्द कर रक्खा है; पर बहुत बार जैसे आपने मेरी इच्छा के विरुद्ध अपनी मनमानी की है, वैसे ही आज—केवल आज—मैं आपकी आज्ञा का तिरस्कार पत्र लिख रही हूँ।

चन्द्रविन्दु खोसला आपके पुराने परिचित हैं, यद्यपि मुझसे उनका परिचय अभी नया ही है। उनसे मेरी घनिष्ठता है और इसलिए मैंने वे सब राज पा लिये हैं, जिनसे आप अब तक वंचित हैं। उनमें सबसे प्रमुख यह है कि आपकी परित्यक्ता पत्नी नीलकमल किसी प्रकार कलंकिनी नहीं है जैसा कि आपने समझ रक्खा है। स्वयं चन्द्रविन्दु ने यह भेद मुझे बताया है कि नीलकमल को प्राप्त न कर सकने की प्रतिक्रिया में ही उसने आपकी मति पलटी है।

और, आप क्षमा करेंगे, मैं कहती हूँ कि यदि वह कलंकिनी भी हो तो आप ही कौन दूध के धोये हैं? इस क्षण मैं आपको उन पुरानी रातों के पल-पल का स्मरण दिलाना चाहती हूँ, जिनमें—प्रतिक्रिया में पड़कर—आपने निषेध के सारे बंधनों को फूंक मारकर उड़ा दिया था!

जिस कम्पनी में मैं काम कर रही हूँ, उसी में परिस्थिति की मारी नीलकमल भी साइड-हीरोइन के लिए चुन ली गयी है। वे निस्संदेह मुझसे अधिक सुन्दर, स्वस्थ और प्रतिभाशालिनी हैं। ऐसी स्थिति में उनका यहाँ रहना मेरे फ़िल्मी-जीवन को समाप्त कर डालेगा, यह

निश्चित है।

जिसमें पूज्य बाबूजी की अन्तिम आकांक्षा एक बार पूर्ण होकर फिर उजड़ न जाय, जिसमें आपके चरणों की रज के आशीर्वाद से सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच गयी आपकी सेविका—और अवसर पर आपके आदेश पर अंकशायिनी भी—टूटकर बिखर न जाय; और इस सबसे अधिक जिसमें भ्रम के दावानल में दग्ध हो रही आपकी ज़िन्दगी तथा आपके उपवन की वह पालित मयूरी नीलकमल—दोनों राख बनकर उड़ न जायें, इसलिए आप शीघ्रातिशीघ्र नीलकमल को यहाँ से बुला लें।

मुझे विश्वास है, वह और सब कुछ कर सकती है; पर आपका आदेश पाकर फिर रुक नहीं सकती।

यदि मेरी इस प्रार्थना पर भी आपने, पिछली प्रार्थनाओं की तरह, ध्यान न दिया, तो आप चाहे क्रोध में आकर पीपल-पात से थरथराकर मुझे मार भी बैठें, पर मैं आपके इस आदेश का, कि 'जब तक मैं ही न बुलाऊँ, तब तक मेरी चेतना के सामने तुम पड़ना नहीं' सौ बार उल्लंघन करके अहमदाबाद आ पहुँचूंगी।

बार-बार पद-वन्दना।

आशीर्वाद की अभिलाषिणी सेविका—

मृगलोचनी

पत्र पढ़कर उसने लिफ़ाफ़े को उलटकर देखा, तो उसमें लगी मुहर देखकर ज्ञात हुआ कि कल सायंकाल की डाक से ही वह यहाँ आया है!

इतने में अरुण ने एक ट्रंक लाकर नयनरंजन से कह दिया—"जल्दी में नीलकमल का यह ट्रंक जाने कैसे स्टेशन पर ही छूट गया था; बात यह है कि जब आप सब लोग आ गये, तो मेरा भी ध्यान बँट गया था। बड़ी ग़नीमत हुई कि इस पर नीलकमल का नाम लिखा था, नहीं तो यह किसी तरह मिलता ही नहीं। कोई उपाय न देखकर अधिकारी उसे बम्बई वापस

भेज रहे थे, तब तक मैं पहुँच गया।"

इस कथन के साथ वह सोच रहा था—'जो कुछ उसने मुझे दिया है, उसका प्रतिदान तो कुछ हो नहीं सकता! संयोग था कि एक अवधि विशेष के लिए भगवान ने मुझे यह अवसर दे दिया! लेकिन यह अच्छा नहीं लगता कि अपनी मंजिल पूरी करती हुई नीलकमल अब इस अवस्था में भी कोई हीनभाव मन में लाये। और यह भी भगवान की उस रचना की ही देन है कि मेरी पर्स में सौ-सौ के पांच नोट पड़े रह गये थे!'

नीलकमल ने जब वह ट्रंक खोला, तो देखा, शृंगार-प्रसाधन सामग्री के साथ लगभग बीस साड़ियों के सेट रखे हुए हैं।

इतने में शान्तिज्योति आ पहुंची और बोली—"तुम्हारा यह ट्रंक वहीं स्टेशन पर रह गया था! कमाल करती हो भाभी!"

नीलकमल ने शान्तिज्योति को तो कोई उत्तर न दिया, पर वह मन-ही-मन सोच रही थी—"पाप कर चुकने के बाद अब ये अरुणबाबू भागे-भागे फिरते हैं। अपने आपको क्षमा नहीं कर पाते! उसी की यह प्रतिक्रिया है।'

अन्दर से आयी झनझनाहट की आवाज़ सुनकर भाग-दौड़ कर रहे नयन ने लगभग चीखकर पूछा—"क्या हुआ?"

शान्तिज्योति ने उत्तर दिया—"चीखो मत। भीखू के हाथ से गिरकर टी-सेट टूट गया है। मैं दूसरी चाय अभी भिजवाती हूँ।"

तब जैसे बड़े विश्वास के साथ नयन बोल उठा—"तो क्या हुआ! नया टी-सेट निकाल लो न!"

और उसके इस कथन की अन्तर्ध्वनि का उद्घोष, अंतरिक्ष में मंडराकर विलीन होते-होते, नीलकमल के मन-प्राण पर उतरकर बोल उठा—

'तो क्या हुआ? नयी आस्थाएँ बना लो न!'

डॉक्टर ने टेम्परेचर लेकर थर्मामीटर जो देखा, तो उसको नीलकमल के हाथ में देते हुए बोला—"आप कृपा करके इसको धो लीजिये।" और फिर कुरसी पर बैठते हुए बोला—"अब आप परवल को बालू में भुनवाइये और नमक और काली मिर्च डालकर प्रेम से खाइये। वैसे आप ग्लूकोज़ के बिस्किट्स और लइया भी ले सकते हैं; लेकिन अच्छा यही होगा कि इस वक्त परवल लें और शाम को बिस्किट्-लइया वगैरह। मुसम्मी का रस और दूध तो आप लेते ही है।"

नीलकमल ने थर्मामीटर धोकर, नली में डालकर, टोपी से बन्द करके डॉक्टर साहब को दे दिया और पूछा—"इस समय तो बुखार है नहीं, कि है?"

डॉक्टर साहब बुद्धिरंजन बाबू के जमाने से इस घर के फेमिली-डॉक्टर थे और घर की परिस्थितियों से परिचित भी थे। बल्कि बहू को बुला लेने के लिए उन्होंने कई बार जोर देकर कहा भी था। अभी जब उन्होंने इस कक्ष में प्रवेश किया था, तो नीलकमल को देखकर चौंकते हुए कहा था—"ओः आप आ गयीं! यह आपने बहुत अच्छा किया। बहुत समझदारी की आपने।"

अतः नीलकमल की बात का उत्तर देते हुए वे बोले—"वैसे हम लोगों में एक तबक़ा ऐसा भी है, जिसका कहना है कि नाइन्टी-नाइन टेम्परेचर इज नो टेम्परेचर। मगर हम तो नाइनटीएट-प्वाइण्ट-फोर पर बिलीव करते हैं। स्वस्थ आदमी के शरीर में, हम मानते हैं कि, इतनी गर्मी आवश्यक है। कल इनका टेम्परेचर था···कहाँ है चार्ट? जरा देना बहू जी।"

संयोगबाबू ने उस ताक़ की ओर संकेत कर दिया, जिसमें चार्ट रक्खा था। नीलकमल ने उसको उठाकर डॉक्टर साहब को दे दिया।

तब डॉक्टर साहब बोले—"हाँ, कल इनका टेम्परेचर था नाइनटी-नाइन प्वाइण्ट-सिक्स। और आज इनका टेम्परेचर है नाइण्टीनाइन-प्वाइण्ट फ़ाइव। इस हिसाब से सम्भव है, टेम्परेचर कल सुबह या आज शाम

तक ही, नाइनटीएट पर ग्रा जाय। ग्रापके ग्राने की ग्राशा मात्र ने इनकी सेहत में यह सहायता पहुंचायी है।"

जिस समय डॉक्टर साहब यह बात कह रहे थे, उस समय संयोग बाबू नीलकमल की ग्रोर देख रहे थे।

"ग्रच्छा, तो ग्रब मैं चलूं।"—डॉक्टर साहब बोले। फिर नीलकमल की ग्रोर उन्मुख होकर उन्होंने कह दिया—"एक बार चार बजे टेम्परेचर लीजियेगा, दूसरी बार रात में ग्राठ बजे। कोई खास बात हो तो मुझे फोन पर सूचना दे दीजियेगा, वैसे टेम्परेचर बढ़ना नहीं चाहिये। ग्रनो-पान का तो ग्राप ध्यान रक्खेंगी ही।"

कथन के साथ डॉक्टर साहब चल दिये। भीखू ने उनकी ग्रटैंची ले ली थी। उसके बाद जब वह लौटकर ग्राया, तो बोला—"वह साहब जो बम्बई से ग्राये हैं, जाने के लिए कह रहे हैं।"

नीलकमल तो कुछ बोली नहीं, संयोग ने कह दिया—"उनको यहीं लिवा लाग्रो।"

नीलकमल ने ग्रब नयी साड़ी धारण कर ली थी। सैण्डिल नये पहिन लिये थे, यहाँ तक कि उसका ब्लाउज़ भी नया था। उसके मन में ग्राया—'जिस व्यक्ति के साथ मैं ग्रायी हूँ, उसी के यहाँ ग्राने से पूर्व मैं भीतर चली जाऊँ, इसका कुछ ग्रर्थ होता है। इसलिए उत्तम तो यही होगा कि मैं यहीं बैठी रहूँ।'

तत्काल उठकर उसने रेडियो ग्रॉन कर दिया। ग्रब साढ़े नौ का समय हो रहा था। न्यूज का कार्य-क्रम समाप्त हो चुका था ग्रौर फ़िल्मी-संगीत चालू हो गया था। सामने की खिड़की खुली हुई थी, जिसके सीखचों के बाहर खिले हुए लाल-लाल पुष्प टहनियों के साथ झूम रहे थे। नीलकमल बोली—"तुम बैठे-बैठे कहीं थक न जाग्रो! लेट जाग्रो न!"

संयोग ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"ग्रब मुझे कोई थकान-वकान न ग्रायेगी।"

कथन के साथ उसके मुख पर प्रसन्नता की एक दीप्ति झलक उठी।

फिर उसने कह दिया—"तुम आ गयी हो न, इसलिए मेरी थकावट का कोई सवाल ही नहीं उठता !"

नीलकमल ने लोम-लोम में एक सिहरन का अनुभव किया। उसे ऐसा जान पड़ा कि ब्लाउज़ के पृष्ठ भागवाले चुटपुटिया बटन जैसे चटकना चाहते हों ! तब उसने हँसते-हँसते कह दिया—"तुम यह मुंहदेखी बात करना कब से सीख गये ! पहले तो ऐसी कोई बात तुम्हारे मुंह से कभी निकलती न थी।"

उसने स्वामी के चेहरे की ओर देखा तो उसे प्रतीत हुआ—पलकों के नीचे का जो भाग पहले त्वचा के ही रंग का गोरा-गोरा था, उसमें कुछ कालिमा आ गयी है।

"और भी बहुत कुछ सीख गया हूं।" संयोग ने मुसकराते हुए कह दिया—"मिस तलवार की चिट्ठी में मेरा पूरा जीवनवृत्त आ गया है। अब तुमसे कुछ छिपा तो रह नहीं गया। लेकिन मैं बिलकुल हृदय की बात कह रहा हूं, तुमसे नीलू। तुमको देखकर मुझे थकान आ नहीं सकती !"

नीलकमल एकाएक यह कहती-कहती उठकर चल दी—"जाऊँ पहले तुम्हारे लिए परवल पका लूं।"

अंदर जाती हुई वह सोच रही थी—'मैं रंगभूमि से भाग नहीं रही हूँ। अरुण के जाने से पूर्व मैं आ जाऊँगी।'

इतने में नयन बाबू के साथ अरुण ने प्रवेशकर नमस्कार करते हुए कह दिया—"हम राजपथ के राही हैं, हमारे मिलने का कोई महत्व नहीं है। फिर भी मैंने सोचा कि जब जाना ही है, तो चलते-चलते आपके दर्शनों का लाभ तो प्राप्त ही करता जाऊँ।"

संयोग बाबू ने देखा—व्यक्तित्व बड़ा भव्य है और मिलनवार्ता की भूमिका में तो एक कवि की-सी मर्मवाणी जान पड़ती है।

तब उन्होंने किंचित् मुसकराते हुए कह दिया—"बैठिये-बैठिये।"

नयन ने उसका परिचय देते हुए कहा—"आप हमारे देश के एक यशस्वी गायक अरुण बाबू हैं; और गायक ही नहीं, आप बम्बई की एक

फिल्म-कम्पनी में म्यूजिक-डायरेक्टर भी हैं।"

संयोग ने हाथ जोड़ते हुए कह दिया—"वेरी ग्लैड टु मीट यू। अभी आपने कहा था—हम पथ के राही हैं। अरे भाई, पथ के राही तो हम सभी हैं।"

तब अरुण ने कुछ गंभीर होकर उत्तर दिया—"और पथ के राही जब बिछुड़ते हैं, तब प्राय: मिलते नहीं।"

संयोग हर एक वाक्य को बहुत धीरे-धीरे बोलता था, क्योंकि अधिक बोलना उसके लिए मना था। उसने अत्यन्त मन्द स्वर में कहा—"लेकिन हम उन बेशरम पथिकों में से हैं, जो बार-बार मिलते हैं। कभी प्रसगवश और कभी पछताकर। मिलन की प्रत्येक वेला हमारे लिए सदा एक नया मोड़ और नया जीवन लेकर आती है।"

अरुण ने उत्तर में कह दिया—"अभी आपने अपने लिए जिस शब्द का प्रयोग किया है, उसमें आपकी आत्मा का स्वर एक वेदना प्रगट करता है; एक ऐसी पीड़ा, जिसमें कसक बोलती है। लेकिन अब मुझे आशा है कि आपका यह स्वर बदलेगा और एक दिन आयेगा, जब आप यह अनुभव करेंगे कि हम तीर्थयात्री हैं, जिनका सदा साथ रहना अवश्यम्भावी है।"

संयोगबाबू कुछ और आगे खिसककर तख्पर रखी दो तकियों के सहारे उढ़क गये और एकाएक उनकी आँखों के पलक विनत हो उठे।

इतने में नयन ने कह दिया—"जान पड़ता है, भैया बात करते-करते कुछ थक गये हैं।"

तब अरुण ने कुरसी से उठते हुए कह दिया—"हमको इसी गाड़ी से बम्बई लौट जाना और फिर वहाँ से दिल्ली प्रस्थान करना है। अब समय बहुत कम रह गया है।"

और बस, इस कथन के साथ वह जब बाहर की ओर जाने लगा, तो नयन ने कह दिया—"आप बैठक में चलिये। मैं अभी आया।"

तभी नीलकमल वहाँ आ पहुँची। अरुण बोला—"तो अब मैं चलूं नीलम?"

नीलकमल ने बहुत संयम के साथ सँभलते हुए उत्तर दिया—"अच्छी बात है। चाची और सुरेश के जीवन-सौख्य के नाम पर···अब आशा है, तुम मुझे सदा के लिए भूल जाओगे।"

'चेष्टा करूँगा नीलम! लेकिन ऐसा नहीं है कि भूली याद फिर कभी आती न हो। खैर, यह एक अलग बात है। भगवान करे, तुम कब उस लक्ष्य को प्राप्त कर लो, जिसके स्खलन की पीड़ा में कभी-कभी आत्मघात करने की भी बात सोचने लगती थीं!"

उसी क्षण नीलकमल ने दोनों हाथ जोड़ते हुए आर्द्रकण्ठ से कह दिया—"बस-बस अरुण, इतना बहुत है।"

अन्त में जब अरुण बाहर की ओर चलने लगा तो नीलकमल ने आँगन की ओर मुड़ते-मुड़ते इतना और जोड़ दिया—"अम्माँ का ध्यान रखियेगा!"

कड़ाही में गरम होने को रखी हुई बालू अब उस सीमा तक आ चुकी थी, जिसमें उसको परवल भूनने थे।

नयन बैठक में आकर कह रहा था —"चलिये, गाड़ी तैयार है।"

अरुण फाटक पर आकर जब गाड़ी में बैठा, तो नयन से हाथ जोड़ते हुए बोला—"भाई सहाब से मेरा बहुत-बहुत नमस्कार कहियेगा। मुझे उनसे और भी दो'एक बातें करनी थीं; मगर खैर। अब मैं बम्बई पहुँचने पर ही उनके सम्बन्ध में लिखूंगा।"

गाड़ी चल पड़ी थी और अरुण सोच रहा था—'क्योंकि मुझे नीलकमल का अनुबन्ध वापस करवाना है, जो इस समय संभव नहीं था।'

नीलकमल स्वामी के पास आकर उन्हें परवल खिलाती हुई सोच रही थी—'बापू ने कहा था—गुप्त हो या स्पष्ट, प्रेम की स्वतंत्र सत्ता में मेरा विश्वास नहीं है।'

• ●

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

बृहद् हिंदी ग्रंथ-सूची : संपादक : यशपाल महाजन तथा कृष्णा महाजन ३६.००
(हिंदी वाङ्मय के ग्रंथों तथा ग्रंथकारों की विस्तृत नामावली)

···दूखन लागे नैन : भगवतीप्रसाद वाजपेयी (उपन्यास) ५.५०
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने इस पुस्तक की २,००० प्रतियां खरीदी हैं)

टूटा टी-सेट : भगवतीप्रसाद वाजपेयी (उपन्यास) ४.००

शैलाधीश : शत्रुघ्नलाल शुक्ल (ऐतिहासिक उपन्यास) ५.००

भुवन विजयम् : उमाशंकर (ऐतिहासिक उपन्यास) ६.००

नीर भर आये बदरा : उमाशंकर (उपन्यास) ४.००

जब सूरज ने आंखें खोलीं : कमल शुक्ल (उपन्यास) ५.५०

साहित्यक निबंध मणि : पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ५.००

भारतीय ग्रन्थ निकेतन

१३३ लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-६